रसीदी टिकट

पराग प्रकाशन, दिल्ली-३२

अमृता अपने निजी कक्ष में १९७६

अमृता प्रीतम की आत्मकथा

मूल्य पचीस रुपये / द्वितीय संस्करण १९७८ / आवरण इमरोज़ /
अनुवादक बटुकेश्वर भटनागर / प्रकाशक पराग प्रकाशन ३/११४ कर्ण
गली, विश्वासनगर शाहदरा, दिल्ली ३२ / मुद्रक रूपाभ प्रिंटर्स दिल्ली ३२

RASHIDI TICKET (*Amrita Pritam's autobiography*) Rs 25 00

इमरोज़ को
और अपने दोना बच्चो—
कंदला और नवराज को

एक दिन खुशवन्तसिंह ने बातों-बातों में कहा, 'तेरी जीवनी का क्या है बस एक आध हादसा। लिखने लगो तो रसीदी टिकट की पीठ पर लिखी जाए।

रसीदी टिकट शायद इसलिए कहा कि बाकी टिकटों का साइज बदलता रहता है पर रसीदी टिकट का वही छोटा-सा रहता है।

ठीक ही कहा था—जो कुछ घटा, मन की तहों में घटा, और वह सब नज्मों और नावलों के हवाले हो गया। फिर बाकी क्या रहा?

फिर भी कुछ पंक्तियां लिख रही हूं—कुछ ऐसे जैसे जिंदगी के लेखे जोखे के कागजों पर एक छोटा सा रसीदी टिकट लगा रही हूं—नज्मों और नॉवलों के लेखे जोखे की कच्ची रसीद को पक्की रसीद करने के लिए।

अमृता प्रीतम

क्या यह कयामत का दिन है ?

ज़िन्दगी के कई वे पल जो वक्त की कोख से जन्म और वक्त की कब्र में गिर गए आज मेरे सामने खड़े हैं

यह सब कब्रें कैसे खुल गयीं ? और यह सब पल जीते जागते कब्रों में से कैसे निकल आए ?

यह जरूर कयामत का दिन है

रसीदी टिकट

यह १९१८ की कब्र में से निकला हुआ एक पल है—मेरे अस्तित्व से भी एक बरस पहले का। आज पहली बार देख रही हूं पहले सिर्फ सुना था।

मेरे मां बाप दोनों पचखंड धमोड़ के स्कूल में पढ़ाते थे। वहां के मुखिया बाबू तेजासिंहजी की बेटियां उनके विद्यार्थियों में थीं। उन बच्चियों का एक दिन न जाने क्या सूझी दोनों ने मिलकर गुरुद्वारे में कीर्तन किया प्रार्थना की और प्रार्थना के अंत में कह दिया, दो जहानों के मालिक! हमारे मास्टरजी के घर एक बच्ची बख्श दो।

भरी सभा में पिताजी ने प्रार्थना के ये शब्द सुने तो उन्हें मेरी होने वाली मां पर गुस्सा आ गया। उन्होंने समझा कि उन बच्चियों ने उसकी रजामंदी से यह प्रार्थना की है। पर मां को कुछ मालूम नहीं था। उन्हीं बच्चियों ने ही बाद में बताया कि अगर हम राज बीबी से पूछतीं तो वह शायद पुत्र की कामना करती—पर वे अपने मास्टरजी के घर लड़की चाहती हैं अपनी ही तरह एक लड़की।

यह पल अभी तक उसी तरह चुप है—कुदरत के भेद को होठों में बंद करके हौले से मुसकराता पर कहता कुछ नहीं। उन बच्चियों ने यह प्रार्थना क्यों की? उनके किस विश्वास ने सुन ली? मुझे कुछ नहीं मालूम। पर यह सच है कि साल के अंदर राज बीबी 'राज मां' बन गयी।

और उससे भी दस बरस पहले—

समय की कब्र में सोया हुआ एक वह पल जाग उठा है जब बीस बरस की राज बीबी ने गुजरांवाला में साधुओं के एक डेरे में माथा टेका था और उसकी नजर कुछ उतने ही बरस के एक 'नंद' नाम के साधु पर जा पड़ी थी।

साधु नंद साहूकारों का लड़का था। जब छह महीने का था तब मां लक्ष्मी' मर गयी थी। उसकी नानी ने उसे अपनी गोद में डाल लिया था और अनाज फटकने वाली एक औरत के दूध पर पाल लिया था। नंद के चार बड़े भाई थे और एक बहन—पर भाइयों में से दो मर गए एक भाई 'गोपालसिंह' घर गृहस्थी छोड़कर शराबी हो गया और एक 'हाकिमसिंह' साधुओं के डेरे जाकर बैठ गया। नंद का सारा स्नेह अपनी बहन हाकी से हो गया था।

बहन बड़ी थी बेहद खूबसूरत। जब ब्याह हुआ तब अपने पति बेलासिंह को देखकर उसने एक जिद पकड़ ली कि उससे उसका कोई संबंध नहीं। गौने पर ससुराल जाने की जगह उसने अपने मायके में एक तहखाना खुदवा लिया और चालीसा खींच लिया। गरूआ बाना पहन लिया। रात को कच्चे चने पानी में भिगो देती और दिन में खा लेती। नंद ने भी बहन की रीस में गेरुए वस्त्र पहन लिये। पर बहन बहुत दिन जीवित नहीं रही। उसकी मृत्यु से नंद को लगा कि संसार से सच्चा वैराग्य उसे अब हुआ है। अपने साहूकार नाना सरदार अमरसिंह

मचदेव म मिली हुई भारी जायदाद का त्यागकर वह सन्त दयालजी के डेरे म जा बठा। सस्कृत सीखी व्रजभाषा सीखी हिम्मत सीखी और डेर म 'बालका साधु' कहलाने लगा। बहन जब जीवित थी मामा मामी न कहीं अमृतसर म नद की सगाई कर दी थी, नद न वह सगाई छोड़ दी और बरागी होकर कविताए लिखन लगा।

राज बीबी गाव भागा जिला गुजरात की थी—अदला-बदली म ब्याही हुई। जिससे ब्याह हुआ था, वह फौज म भरती होकर गया था, फिर उसकी कोई खबर नही आयी। उदास और निराश वह गुजरावाला के एक छोटे स स्कूल म पढाती थी। स्कूल जाने से पहले अपनी भाभी के साथ दयालजी के डेरे म माथा टेक आया करती थी। भाई मर गया था, भाभी विधवा थी। पर अब दोना अकेली और उदास एक स्कूल म पढाती थी एक साथ रहती थीं। एक दिन जब दोना दयालजी के डेरे आयी, जोर से मह बरसन लगा। दयालजी न मेह का समय बिताने के लिए अपने 'बालका साधु' से कविता सुनाने के लिए कहा। वह सदा आखें मूदकर कविता सुना करते थे। उस दिन जब आखें खोली तो देखा—उनके नद की आखें राज बीबी के मुह की तरफ भटक रही हैं। कुछ दिना बाद उन्होने राज बीबी की व्यथा सुनी और नद से कहा, नद बेटा ! जोग तुम्हारे लिए नहा है। यह भगवे वस्त्र त्याग दो और गहस्थ आश्रम म पर रखो।'

यही राज बीबी मेरी मा बनी और नद साधु मेरे पिता। नद ने जब गृहस्थ आश्रम स्वीकार किया, अपना नाम करतारसिह रख लिया। कविता लिखते थे, इसलिए एक उपनाम भी—पीयूष ! दस वष बाद जब मेरा जन्म हुआ, उन्होंने पीयूष शब्द का पजाबी म उल्था करके मेरा नाम अमत रख दिया और अपना उपनाम हितकारी' रख लिया।

फकीरी और अमीरी दोना मेरे पिता के स्वभाव मे थीं। मा बताया करती थी—एक बार उनका एक गुरु भाई (सन्त दयालजी का एक और चेला), सन्त हरनामसिह कहने लगे कि उसका बडा भाई ब्याह करवाना चाहता है। अच्छी भली सगाई होते होते रह गयी, क्योकि उसके पास रहन के लिए अपना मकान नहीं है। पिताजी के पास अभी भी अपने नाना की जायदाद म से एक मकान बचा हुआ था कहने लगे "अगर इतनी सी बात के पीछे उसका ब्याह नही होता तो मैं अपना मकान उनके नाम लिख देता हू"—और अपना एकमात्र मकान उसके नाम लिख दिया। फिर सारी उम्र किराए के मकानो म रहे अपना मकान नही बना सके पर मैंने उनके चेहरे पर कोई शिकन कभी नही देखी।

पर मैंने उनके चेहरे पर एक बहुत बडी पीडा की रेखा देखी—मैं कोई दस ग्यारह बरस की थी मा मर गयी। वह जीवन से फिर विरक्त हो गये। पर मैं उनके लिए एक बहुत बडा बन्धन थी। मोह और वैराग्य दोनो उन्हें एक दूसरे से

विपरीत दिशा म खीचत थ। कई पल ऐसे भी आते थे—मैं बिलख उठती, मरी समझ म नही आता था मैं उन्ह स्वीकार थी या अस्वीकार

अपना अस्तित्व—एक ही समय म, चाहा और अनचाहा लगता था

काफिये रदीफ का हिसाब समझाकर मर पिता न चाहा था मैं लिख। लिखती रही—मेरा खयाल है पिता की नजर म जितनी भी अनचाही थी, वह भी चाही बनन के लिए।

आज आधी सदी क बाद सोचती हू—जसे फकीरी और अमीरी दोना एक ही समय म, मेरे स्वभाव म हैं और यह स्वभाव, अपने नैन नक्श की तरह मुझे पिता से मिला है शायद उनकी नजर भी मेरी नजर म शामिल है—कभी यही पता नही लगता कि मैं अपनी नजर म स्वीकार हू या नही—शायद इसीलिए सारी उम्र लिखती रही कि मेरी नजर म जो कुछ मेरा अनचाहा है वह सारा मेरा चाहा बन जाए

जस तब भी दुनिया के बार मे नही सोचती थी—सोचती थी कि पिता मरे साथ खुश हो आज भी दुनिया के बार मे नही सोचती—सिफ सोचती हू कि अपना आप मेरे साथ खुश हो

पिता से कभी झूठ नही बोला अपने आप से भी नही बोल सकती

यह एक वह पल है—

जब घर म तो नही, पर रसोई म नानी का राज होता था। सबसे पहला विद्रोह मैंने उसके राज मे किया था। देखा करती थी कि रसोई की एक परछत्ती पर तीन गिलास अन्य बरतना स हटाए हुए सदा एक कोने मे पडे रहत थे। ये गिलास सिफ तब परछत्ती स उतारे जाते थ जब पिताजी के मुसलमान दोस्त आते थे और उन्ह चाय या लस्सी पिलानी होती थी और उसके बाद माज-धोकर फिर वही रख दिए जाते थे।

सो उन तीन गिलासा के साथ मैं भी एक चौथे गिलास की तरह रिल मिल गयी और हम चारो नानी से लड पड। वे गिलास भी बाकी बरतना को नही छू सकते थे मैंने भी जिद पकडली कि मैं और किसी बरतन मे न पानी पीऊगी, न दूध चाय। नानी उन गिलासो को खाली रख सकती थी लेकिन मुझे भूखा या प्यासा नही रख सकती थी सो बात पिताजी तक पहुच गयी। पिताजी का इससे पहले पता नही था कि कुछ गिलास इस तरह अलग रखे जाते हैं। उन्ह मालूम हुआ तो मरा विद्रोह सफल हो गया। फिर न कोई बरतन हिन्दू रहा न मुसलमान।

उस पल न नानी जानती थी न मैं कि बडे होकर जिन्दगी के कई बरस जिस से मैं इश्क करूगी वह उसी मजहब का होगा जिस मजहब के लोगा के लिए घर

के बरतन भी अलग रख दिए जाते थे। होनी का मुह अभी देखा नही था, पर सोचती हू उस पल कौन जाने उसकी ही परछाइ थी जो बचपन मे देखी थी

परछाइया बहुत बडी हकीकत होती हैं।

चहर भी हकीकत होते हैं। पर कितनी देर ? परछाइया, जितनी देर तक आप चाहें चाह तो सारी उम्र। बरस आते हैं गुजर जाते हैं रुकते नहीं। पर कई परछाइया, जहा कभी रुकती हैं, वही रुकी रहती हैं

यू तो हर परछाइ किसी काया की परछाइ होती है काया की मोहताज। पर कइ परछाइ ऐसी भी होती हैं जो इस नियम के बाहर होती हैं, काया से भी स्वतत्र।

और यू भी होता है कि हर परछाईं न जाने कहा से और किस काया से टूटकर, तुम्हार पास आ जाती है और तुम उस परछाइ को लेकर दुनिया मे घूमते रहते हो और खोजते रहते हो कि यह जिस काया से टूटी है वह कौन-सी है ? गलतफहमिया का क्या है ? हो जाती हैं। तुम यह परछाईं गरो के गले से लगाकर भी देखते हो, न जाने उसी के माप की हो ! नहीं होती, न सही। तुम फिर उसे—अधरे से को—पकडकर, वहा स चल देते हो

मेरे पास भी एक परछाइ थी।

नाम से क्या होता है, उसका एक नाम भी रख लिया था—राजन ! घर म एक नियम था कि सोने से पहले कीतन सोहिले[1] का पाठ करना होता था, इसके सबध म पिताजी का विश्वास था कि जस जसे इस पढते जाते हो तुम्हारे गिद एक किला बनता जाता है और पाठ के समाप्त होते ही तुम सारी रात एक किले की सुरक्षा मे रहत हा और फिर सारी रात बाहर से किसी की मजाल नही होती कि वह उस किले म प्रवेश कर सके। तुम हर प्रकार की चिन्ता से मुक्त होकर सारी रात सो सकते हो।

यह पाठ सोते समय करना होता था। आखें नीद से भरी होती थी, इतनी कि नीद के गलबे म यह अधूरा भी रह सकता था। सो, इस सबध मे उनका कहना था कि अतिम पक्ति तक इस पूरा करना ही है। अगर अतिम पक्तियां छूट जाए तो किलेबदी म कोई कोर-कसर रह जाती है, इसलिए वह पूरी रक्षा नही कर सकता। सो अतिम पक्ति तक यह पाठ करना होता था।

बहुत बच्ची थी। चिन्ता हुई कि इस पाठ के बाद मेरे गिद किला बन जाएगा तो फिर राजन मेरे सपने मे किस तरह आएगा ? मैं किले के अदर होऊगी, वह किले के बाहर रह जाएगा सो, सोचा कि पाठ कठस्थ है अपनी

---

१ गुरु ग्रथ का एक अश विशेष।

चारपाई पर बैठकर धीरे धीरे करना है मैं याद से इसकी कुछ पंक्तियां छोड़ दिया करूंगी, जिला पूरी तरह बंद नहीं होगा, और वह उस खुली जगह से होकर आ जायगा

पर पिताजी ने इस नियम का रूप बदल दिया। इसकी जगह सब अपनी-अपनी चारपाई पर बैठकर अपना-अपना पाठ करें उन्होंने यह नियम बना दिया कि मैं अपनी चारपाई पर बैठकर ऊंचे स्वर में पाठ करूंगी और सब अपनी अपनी चारपाई पर बैठे उसे सुनेंगे। यह शायद इसलिए कि दूर रिश्ते में एक लड़का और एक छोटी बच्ची पिताजी के पास ही रहते और पलते थे, और उस छोटी बच्ची को यह पाठ याद नहीं होता था।

सो पाठ की कोई भी पंक्ति छोड़ी नहीं जा सकती थी। एक दो बार छोड़ने की कोशिश की, पर पिताजी ने भूल की शोध करवाकर वे पंक्तियां भी पढ़वा दीं। फिर बहुत सोचकर यह युक्ति निकाली कि 'कीतन सोहिले' का पाठ करने से पहले मैं राजन को ध्यान करके उसे अपने पास बुला लिया करूं ताकि वह किले की दीवारों के निर्माण होने से पहले ही किले के अंदर आ जाया करे।

तब दस बरस की थी आज चालीस बरस के बाद उस बात को सोचती हूं तो लगता है जिस भी अस्तित्व के लिए यह लगन थी वह वृथा नहीं गयी। मेरे गिर्द सुरक्षात्मक किले बने भी हैं और टूटे भी, पर उसका अस्तित्व किसी न किसी रूप में सदा मेरे साथ रहा है—कभी मनुष्य के रूप में, कभी कलम की सूरत में और कभी ईश्वर की जात की तरह एक से अनेक होते हुए—किसी किताब के पन्नों में से भी उभरता है और किसी कनवस में से भी निकलकर बाहर उतर आता है। और धुएं की लकीर में से जिन्न के प्रकट होने की तरह यह कभी किसी गीत के स्वरों से भी निकल आता है किसी फूल की खिलती हुई पंखुड़ी में से भी और समुद्र के पानियों में हिलते हुए चांद के साये से भी। और घोर एकाकीपन के समय यह नदियों को चीरकर भी मिला है—मेरे शरीर की नाड़ियों में बहते हुए लहू की नदियों को चीरकर, और इसके अस्तित्व के साथ उपरामता का जर्द रंग भी सुर्ख हो जाता है।

यह—अब हाड़ मांस की दिखाई देने वाली काया से लेकर, रंग और सुगंध में से गुजरता विचारों और सपनों की उस सीमा तक व्यापक हो गया है जहां किसी राह चलते की छोटी सी परछाईं भी उसका, अस्तित्व मालूम होती है और आंखों में पानी भर आता है। मेरे लिए निराकार कुछ भी नहीं है। हर वस्तु का अस्तित्व हाड़ मांस की तरह है जिसे हाथ से छू सकती हूं जिसका अहसास मेरे शरीर में से गुजर सकता है।

छुटपन में जब हरगोबिन्दजी या गुरु गोबिन्दसिंह का सपना आता था

तो मैं उनके घोड़े को, या बाज को, या गले में पड़ी हुई तलवार को सदा हाथ से छूकर देखती थी, दूर से प्रणाम करके नहीं। उसी तरह फूलों और पत्तियों की टहनियां मैं बाहों में भर लेती थी। अब भी—किसी से गले मिलने की तरह। सारा शरीर सिहर उठता है और उनकी कसाहट से मेरा सांस तेज हो जाता है।

बहुत बरसों की बात है—एक बार कोई पास बैठा हुआ था। उसकी जेब में जो रूमाल था वह मैला था। उसे रूमाल की जरूरत पड़ी तो नया रूमाल देकर उसका मैला रूमाल ले लिया। पास रख लिया। वह बहुत बरस तक मेरे पास रहा। जब कभी उस रूमाल पर हाथ पड़ जाता था माथे की नसें कस जाती थीं।

कुछ बीज न जाने कैसे होते हैं कि एक बार लहू-मांस में उग जाएं तो फिर चाहे कैसी आंधियां आएं कैसा ही सूखा पड़ जाए उनके पत्ते झड़ जाएं टहनियां टूट जाएं, पर वे जड़ों से नहीं उखड़ते।

एक 'किमी जेहते का तमव्वुर,' और दूसरा 'अक्षरों का अदब'—ऐसे ही बीज थे जो बाल अवस्था में मेरे अंदर उग गए। फिर विश्वास टूटे, और ऐसे टूटे कि, सोचती हूं इन दोनों पेड़ों को जड़ों से उखड़ जाना चाहिए था। कभी लगता भी है कि इनका नाम निशान तक नहीं रहा पर मन की सूखी मिट्टी में से फिर इनकी कोंपलें निकल आती हैं, टहनियां बन जाती हैं, उन पर बौर आ जाता है और मेरे सांसों में उनकी सुगन्ध आने लगती है।

इन जादुई पेड़ों का एक बीज मैंने अपने हाथों से बोया था पर दूसरा मेरे पिता ने। किसी किताब का पृष्ठ धरती पर पड़ा हो तो वह उसे अदब से उठा लेते थे। अगर भूल से मेरा पैर पृष्ठ पर आ जाता तो वह नाराज होते थे। सो अक्षरों का अदब मेरे मन में गहरा पैठ गया, और साथ ही उनका जिनके हाथ में कलम होता है। देखती भी थी गुरबानी के प्रकांड विद्वान् भाई वीरसिंहजी पिताजी के मित्र थे। वह जब कभी आते, घर की दहलीज भी अदब से भर जाती। पिताजी के गुरु, संस्कृत के विद्वान् दयालजी का चित्र सदा पिताजी के सिरहाने की ओर लगा रहता था। उस ओर पांव करने की मनाही थी। सो, बड़ी हुई तो अपने समय के लेखकों के लिए भी मेरे पास अदब ही था। परन्तु अपने समकालीन लेखकों से जितने उदास अनुभव भुगते हुए हैं हैरान हूं कि अक्षरों और कलमों के अदब का जादुई पेड़ जड़ से क्यों सूख नहीं गया?

लेकिन सोचती हूं, क्या मेरे समकालीन केवल वही हैं जिनसे वास्ता पड़ा? दूरी और काल की सीमा से परे भी कोई हैं, जितने ही काजानजाकिस निकोलाई मेरे इन अक्षरों और कलमों के अदब वाले पेड़ों को सींचा है। फिर यह पेड़ भी अगर हरा रह गया है तो हैरान क्या हूं?

३१ जुलाई, १९३०

कोई ग्यारह बरस की थी जब अचानक एक दिन मा बीमार हो गयी। बीमारी कोई मुश्किल से एक सप्ताह रही होगी जब मैंने देखा कि मा की चारपाई के इद गिद बठे हुए सभी के मुह घबराए हुए थे।

'मेरी बिन्ना कहा है ?' कहते हैं एक बार मरी मा ने पूछा था और जब मेरी मा की सहेली प्रीतम कौर मेरा हाथ पकडकर मुझे मा के पास ले गयी तो मा को होश नही था।

'तू ईश्वर का नाम ले, री ! कौन जाने उसके मन मे दया आ जाए। बच्चा का कहा वह नही टालता 'मेरी मा की सहेली, मेरी मौसी, ने मुझसे कहा।

मा की चारपाई के पास खडे हुए मेरे पर पत्थर के हो गए। मुझे कई वर्षों से ईश्वर से ध्यान जोडने की आदत थी और अब जब एक सवाल भी सामने था ध्यान जोडना कठिन नही था। मैंने न जाने कितनी दर अपना ध्यान जाडे रखा और ईश्वर से कहा— मेरी मा को मत मारना।'

मा की चारपाई से अब मा की पीडा से कराहती हुई आवाज नही आ रही थी, पर इद गिद बठे हुए लोगा म एक खलबली सी पड गयी थी। मुझे लगता रहा— 'बेकार ही सब घबरा रहे हैं अब मा का पीडा नही हो रही है। मैंने ईश्वर से अपनी बात कह दी है—वह बच्चा का कहा नही टालता।

और फिर मा की चीखो की आवाज नही आयी पर सारे घर की चीखें निकल गयी। मेरी मा मर गयी थी। उस दिन मेरे मन म राप उबल पडा— 'ईश्वर किसी की नही सुनता, बच्चो की भी नही।'

यह वह दिन था जिसके बाद मैंने अपना वर्षों का नियम छोड दिया। पिता जी की आज्ञा बडी कठोर होती थी पर मेरी जिद ने उनकी कठोरता से टक्कर ले ली

ईश्वर कोई नही होता।'
ऐसे नहीं कहते।'
क्या ?
वह नाराज हो जाता है।
ता हो जाए ! मैं जानती हू ईश्वर कोई नही है।
तू कस जानती है ?'

'अगर वह होता तो मेरी बात न सुनता ?'

तूने उससे क्या कहा था ?'

'मैंने उससे कहा था, मेरी मा को मत मरना।'

'तूने उसे कभी देखा है ? वह दिखाई थोड़े ही देता है।'

पर उसे सुनाई भी नहीं देता ?'

पूजा पाठ के लिए पिताजी की आज्ञा अपनी जगह पर अड़ी हुई थी और मेरी ज़िद अपनी जगह। कभी उनका गुस्सा ज्यादा ही उबल पड़ता और वह मुझे पालथी लगवाकर बिठा देते—'दस मिनट आखें मीचकर ईश्वर का चिंतन कर !'

बाहर जब शारीरिक तौर पर मेरी बचकानी उम्र उनके पितृ-अधिकार से टक्कर न ले सकती तब मैं आलथी पालथी मारकर बैठ जाती आखें मींच लेती, पर अपनी हार को अपने मन का रोष बना लेती—'अब आखें मीचकर अगर मैं ईश्वर का चिंतन न करूं तो पिताजी मेरा क्या कर लेंगे ? जिस ईश्वर ने मेरी वह बात नहीं सुनी, अब मैं उससे कोई बात नहीं करूंगी। उसके रूप का भी चिंतन नहीं करूंगी। अब मैं आखें मीचकर अपने राजन का चिंतन करूंगी। वह मेरे साथ सपने में खेलता है मेरे गीत सुनता है वह कागज़ लेकर मेरी तसवीर बनाता है—बस, उसी का ध्यान करूंगी उसी का।

ये वे दिन थे जिनके बाद मैंने कई दिन नहीं कई महीने नहीं, कई बरस दो सपनों में गुज़ार दिए। रोज रात को मेरे पास आना इन सपनों का नियम बन गया। गर्मी जाए, जाड़ा जाए इन्होंने कभी नागा नहीं किया।

एक सपना था कि एक बहुत बड़ा किला है और लोग मुझे उसमें बंद कर देते हैं। बाहर पहरा होता है। भीतर कोई दरवाज़ा नहीं मिलता। मैं किले की दीवारों को उंगलियों से टटोलती रहती हूं पर पत्थर की दीवारों का कोई हिस्सा भी नहीं पिघलता।

सारा किला टटोल-टटोलकर जब कोई दरवाज़ा नहीं मिलता तो मैं सारा ज़ोर लगाकर उड़ने की कोशिश करने लगती हूं।

मेरी बाहों का इतना ज़ोर लगता है इतना ज़ोर लगता है कि मेरा सांस चढ़ जाता है।

फिर मैं देखती हूं मेरे पैर धरती से ऊपर उठने लगते हैं। मैं ऊपर होती जाती हूं और ऊपर, और फिर किले की दीवार से भी ऊपर हो जाती हूं।

सामने आसमान आ जाता है। ऊपर से मैं नीचे निगाह डालती हूं। किले का पहरा देने वाले घबराए हुए हैं—गुस्से में बांहें हिलाते हुए पर मुझ तक किसी का हाथ नहीं पहुंच सकता।

और दूसरा सपना था कि लोगों की एक भीड़ मेरे पीछे है। मैं पूरी ताकत लगाकर दौड़ती हूं। लोग मेरे पीछे दौड़ते हैं। फासला कम होता जाता है और मेरी घबराहट बढ़ती जाती है। मैं और जोर से दौड़ती हूं, और जोर से, और सामने दरिया आ जाता है।

मेरे पीछे आने वाली लोगों की भीड़ में खुशी बिखर जाती है—अब आगे कहां जाएगी? आगे कोई रास्ता नहीं है आगे दरिया बहता है।

और मैं दरिया पर चलने लगती हूं। पानी बहता रहता है पर जैसे उसमें धरती जैसा सहारा आ जाता है। धरती तो पैरों के नीचे लगती है। यह पानी नरम लगता है और मैं चलती जाती हूं।

सारी भीड़ किनारे पर रुक जाती है। कोई पानी में पैर नहीं डाल सकता। अगर कोई डालता है तो डूब जाता है। और किनारे पर खड़े हुए लोग घूरकर देखते हैं, किचकिचिया भरते हैं पर किसी का हाथ मुझ तक नहीं पहुंच पाता।

मेरा सोलहवां साल

सोलहवां साल आया—एक अजनबी की तरह। पास आकर भी एक दूरी पर खड़ा रहा। मैं कभी चुपचाप उसकी ओर देख लेती, वह कभी मुसकराकर मेरी ओर देख लेता।

घर में पिताजी के सिवाय कोई नहीं था—वह भी लेखक जो सारी रात जागते थे लिखते थे और सारे दिन सोते थे। मां जीवित होती तो शायद सोलहवां साल और तरह से आता—परिचितों की तरह सहेलियां दोस्तों की तरह सगे संबंधियों की तरह पर मां की गैरहाजिरी के कारण जिंदगी में से बहुत कुछ गैरहाजिर हो गया था। आस पास के अच्छे बुरे प्रभावों से बचाने के लिए पिता को इसमें ही सुरक्षा समझ में आयी थी कि मेरा कोई परिचित न हो न स्कूल की कोई लड़की न पड़ोस का कोई लड़का। सोलहवां बरस भी इसी गिनती में शामिल था और मेरा खयाल है इसीलिए वह सीधी तरह घर का दरवाजा खटखटाकर नहीं आया था चोरों की तरह आया था।

वह कभी किसी रात मेरे सिरहाने की खुली खिड़की में से होकर चुपचाप मेरे सपनों में आ जाता या कभी दिन के समय जब मेरे पिता को सोए हुए देखता तो वह घर की दीवार फांदकर आ जाता और मेरे कमरे के कान में लगे हुए छोटे से शीशे में आकर बैठ जाता।

ऐसा भी था। जिनमें किसी मनचले या उच्छृंखल के आचरण से महिमा का समाधि भंग हो जाती थी। यह दूसरे प्रकार की पुस्तकें ऐसी थी जिन्हें पढ़ते समय उनकी किसी पंक्ति में से निकलकर अचानक मेरा सोलहवां बरस मेरे सामने आ खड़ा होता था। लगता था यह सोलहवां बरस भी जैसे किसी अप्सरा का रूप था जो मेरे सीधे-सादे बचपन की समाधि भंग करने के लिए कभी अचानक मेरे सामने आ खड़ा होता था

कहते हैं ऋषियों की समाधि भंग करने के लिए जो अप्सराएं आती थी उसमें राजा इन्द्र की साजिश होती थी। मेरा सोलहवां साल भी अवश्य ही ईश्वर की साजिश रहा होगा क्योंकि इसने मेरे बचपन की समाधि तोड़ दी थी। मैं कविताएं लिखने लगी थी। और हर कविता मुझे वर्जित इच्छा की तरह लगती थी। किसी ऋषि की समाधि टूट जाए तो भटकने का शाप उसके पीछे पड़ जाता है—'सोचों का शाप मेरे पीछे पड़ गया

पर सोलहवें वर्ष से मेरा स्वाभाविक संबंध नहीं था—चोरी का रिश्ता था। इसलिए वह भी मेरी तरह मेरे पिता के आगे सहम जाता था, और मेरे पास से परे हटकर किसी दरवाज़े के पीछे जाकर खड़ा हो जाता था और उसे छिपाए रखने के लिए मैं एक क्षण जो मन मर्जी की कविता लिखती थी दूसरे क्षण फाड़ देती थी और पिता के सामने फिर सीधी सादी और आज्ञाकारी बच्ची बन जाती थी।

मेरे पिता को मेरे कविता लिखने पर आपत्ति नहीं थी—बल्कि काफ़िये रदीफ़ की बात मुझे मेरे पिता ने सिखायी थी केवल उनका आग्रह था कि मैं धार्मिक कविताएं लिखूं। और मैं आज्ञाकारी बच्ची की तरह वही दकियानूसी कविताएं लिख देती थी (उम्र के सोलहवें साल में हर विश्वास पारम्परिक होता है, और इसीलिए दकियानूसी भी)।

इस तरह सोलहवां वर्ष आया और चला गया। प्रत्यक्ष रूप में कोई घटना नहीं घटी। वास्तव में यह वर्ष आयु की सड़क पर लगा हुआ खतरे का चिह्न होता है (कि बीते वर्षों की सपाट सड़क खत्म हो गयी है आगे ऊंची नीची और भयानक मोड़ों वाली सड़क शुरू होनी है और अब माता पिता के कहने से लेकर स्कूल की पुस्तकें कंठ करने उपदेश को सुनने मानने, और सामाजिक व्यवस्था को आदर-सहित स्वीकार करने के भोले भाले विश्वास के सामने हर समय एक प्रश्न-वाक्य आ खड़ा होगा)। इस वर्ष जाना पहचाना सब कुछ शरीर के वस्त्रों की तरह तंग हो जाता है हाथ ज़िंदगी की प्यास से खुश्क हो जाते हैं आकाश के तारे जिन्हें सप्त ऋषियों के आकार में देखकर दूर से प्रणाम

करना होता था पास जाकर छू लेने को जी करता है इद गिद और दूर पास की हवा मे इतनी मनाहिया और इतने इनकार होते हैं और इतना विरोध, कि सासो म आग सुलग उठती है

जिस हद तक यह सब औरो के साथ होता है मेरे साथ उससे तिगुना हुआ। (एक, आस पास की मध्य श्रेणी का फीका और रस्मी रहन-सहन, दूसरे, मा के न होने के कारण हर समय मनाहियो का सिलसिला, और तीसरे पिता के धार्मिक अगुआ होने की हैसियत म मुझ पर भी अत्यन्त सयमी होकर रहने की पाबन्दी) इसलिए सोलहवें वष से मेरा परिचय उस असफल प्रेम के समान था जिसकी कसक सदा के लिए कही पडी रह जाती है और शायद इसीलिए वह सोलहवा वष भी अब मेरी ज़िन्दगी के हर वष म कही न कही शामिल है

इसके रोष का पूरा रूप मैंने उसके बाद कई बार देखा। १९४७ मे देश के विभाजन के समय भी देखा। सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक मूल्य काच के बरतनो की भाति टूट गए थे और उनकी किरचें लोगो के परो मे बिछी हुई थी। य किरचें मेरे परो म भी चुभी थी और मेरे माथे म भी। ज़िन्दगी का मुह देखने की भटकन मे मैंने उसी तपिश के साथ कविताए लिखी जिस तपिश के साथ कोई सोलहवें वष म अपने प्रिय का मुख देखने के लिए लिखता है। और इसी तरह फिर पडोसी देशो के आक्रमण के समय, वियतनाम की लम्बी यातना के समय चेकोस्लावाकिया की विवशता के समय

मेरा खयाल है जब तक आखो म कोई हसीन तसव्वुर कायम रहता है और उस तसव्वुर की राह म जो कुछ भी गलत है उसके लिए रोष कायम रहता है, तब तक मनुष्य का सोलहवा वष भी कायम रहता है (खुदा की जाति की तरह हर सूरत म)।

हसीन तसव्वुर एक महबूब के मुह का हो या धरती के मुह का इससे फक नही पडता। यह मन के सोलहवें वष के साथ मन के तसव्वुर का रिश्ता है। और मेरा यह रिश्ता अभी तक कायम है

खुदा की जिस साजिश ने यह सोलहवा वष किसी अप्सरा की तरह भेजकर मेरे बचपन की समाधि भग की थी, उस साजिश की मैं ऋणी हू क्योकि उस साजिश का सबध केवल एक वष से नही था, मेरी सारी उम्र से है।

मेरा हर चिन्तन अब भी कुछ कुछ समय बाद मेरे सीधे सादे दिनो की समाधि भग करता रहता है (सब्र सतोष से ज़िन्दगी के गलत मूल्यो के साथ की हुई सुलह उस समाधि की तरह होती है जिसम आयु अकारथ चली जाती है) और मैं खुश हू मैंने समाधि के चन का वरदान नही पाया भटकन की बेचनी का शाप पाया है और मेरा सोलहवा वष आज भी मेरे हर वष म शामिल है सिफ अब इसका मुह अजनबी नही रहा सबसे अधिक पहचान वाला हो गया है। और

अब इसे चोरी से दीवारें फादकर आने की जरूरत नहीं रही, यह हर विरोध को खुले दरवाजे पछाड़कर आता है—केवल बाहरी विरोध को नहीं, मेरी आयु के पचासवें वर्ष के विरोध को भी पछाड़कर—और उसके सब लक्षण अब भी उसी प्रकार हैं—जब भी इर्द गिर्द का सब-कुछ तन के कपड़ों की भांति रूह को तंग लगता है, होंठ जिन्दगी की प्यास से खुश्क हो जाते हैं आकाश के तारों को हाथ से छूने को जी करता है, और कोई अन्याय, चाहे दुनिया में किसी से, और कहीं भी हो उसके विरुद्ध मेरी सांसों में आग सुलग उठती है

एक साया

एक सांवला-सा साया था जो बचपन से ही मेरे साथ चलने लगा। फिर धीरे धीरे जाना कि इसमें बहुत कुछ मिला हुआ है—अपने महबूब का चेहरा भी, और अपना भी जिसकी मुझे अभी केवल तमन्ना थी मुझसे कहीं अधिक सयाना, गंभीर और तगड़ा—और इसके अलावा अपने देश और हर देश के मनुष्य का स्वतन्त्र चेहरा भी

जो लिखती रही—इस हड्डियों के ढांचे को रक्त और मांस देने की चाह में लिखती रही, इसी के सांवले रंग में रोशनी का रंग भरने की तमन्ना में

यह एक प्रकार से खुदा को धरती पर उतार लेने की तमन्ना थी। शायद इसीलिए यह साया एक चेहरे तक सीमित नहीं रहा, जहां भी कहीं सुन्दरता का कण है, वहां तक व्यापक हो गया।

यह वही 'मैं' है जिसके लिए लिखा था—बहुत समकालीन है, केवल यह 'मैं' मेरा समकालीन नहीं

यह एक दर्द था पंछी के गीत की तरह। एक पल हवा में, दूसरे पल कहीं भी नहीं। किसी कान ने सुन लिया, ठीक है। नहीं सुना, तब भी ठीक है। किसी के कान पर न कोई हक था, न दावा।

बहुत बच्ची थी जब हैरान हुई कि मेरे चारों ओर कितनी ही आवाजें हैं जो गालियां बन गयी हैं। कितने ही नामों के झंडे थे, और घंडे थे जिनमें वे झंडे गड़े हुए थे उन्होंने समझा कि मुझे भी वहां अपने नाम का कोई घंडा गाड़ना है। कहना चाहा—दास्तां तुम्हारे घंडे और तुम्हारे घंडे तुम्हें मुबारक, मुझे कुछ नहीं चाहिए गलतफहमी में न पड़ो।

देखा—कुछ कहना सुनना संभव नहीं है। समझा—कि बड़ी बात है, कभी तो संभव होगा, पर अपनी भाषा के साहित्यकारों के हाथों यह कभी संभव नहीं

हुआ —न आज से तीस बरस पहले, न अब।

यह मेरा पहला दु खान्त था, पर नहीं जानती थी कि उम्र जितना लम्बा होगा।

कुछ बुजुर्ग चेहरे थे—गुरबख्शसिंहजी, धनीराम चातिक प्रिंसिपल तेजासिंह —जो प्यार से शायद रहम से मुसकराए थे। पर इनमें से दो चेहरे बहुत जल्दी बिछुड़ गए—और गुरबख्शसिंहजी जो कुछ साहित्य में घटता था, उससे बहुत जल्दी विरक्त हो गए शायद निर्लिप्त।

मन की तहों में सबसे पहला दर्द जिसके चेहरे की रोशनी में देखा वह उस मजहब का था जिसके लोगों के लिए घर के बरतन भी अलग कर दिए जाते थे।

यही वह चेहरा था जो मेरे अन्दर के इन्सान को इतना विशाल कर गया कि हिन्दुस्तान के बटवारे के समय बटवारे के हाथों तबाह होकर भी दोनों मजहबों के जुल्म बिना किसी रियायत या द्वेष के लिख सकी। यह चेहरा न देखा होता तो पिंजर नॉवेल की तकदीर न जाने क्या होती।

बीस इक्कीस बरस की थी जब कल्पना किया हुआ चेहरा इस धरती पर देखा था (इस मिलन को बहुत वर्ष बाद मैंने विस्तारपूर्वक आखिरी खत में लिखा था)। यह शी की भांति रोज आग में नहाने वाली हालत थी—यहां तक कि १९५७ में जब अकादमी का पुरस्कार मिला फोन पर खबर सुनते हुए सिर से पैर तक मैं ताप में तप गयी—खुदाया! ये सुनेहड़े[1] मैंने किसी इनाम के लिए तो नहीं लिखे थे, जिसके लिए लिखे थे उसने पढ़े नहीं, अब सारी दुनिया भी पढ़ ले तो मुझे क्या

उस दिन शाम पड़े एक प्रेस रिपोर्टर आया फोटोग्राफर साथ था। वह जब तसवीर लेने लगा उसने कागज-कलम से वह समय पकड़ना चाहा जो किसी कविता के लिखने का होता है। मैंने सामने मेज पर कागज रखा और हाथ में कलम लेकर कागज पर कोई कविता लिखने की जगह—एक अचेत-सी दशा में उसका नाम लिखने लगी जिसके लिए ये सुनेहड़े लिखे थे—साहिर, साहिर, साहिर साहिर सारा कागज भर गया।

प्रेस के लोग चले गए तो अकेले बैठे हुए मुझे चेतना सी आयी—सवेरे समाचारपत्र में चित्र होगा तो मेज के कागज पर यह साहिर-साहिर की आवृत्ति होगी ओ खुदाया!

मजनू के लिए लैला पुकारने वाली हालत मैंने उस दिन अपने तन पर झेली।

---

१ सुनेहड़े (सदेसे) काव्य पुस्तक का शीर्षक।

यह बात और है कि कैमरा का फोकस मेरे हाथ पर था कागज पर नहीं, इसलिए दूसरे दिन के समाचारपत्र में कागज पर कुछ भी नहीं पढ़ा जा सकता था। (कुछ भी नहीं पढ़ा जा सकता था इस बात को तसल्ली होने के बाद एक पीढ़ा भी इसमें सम्मिलित हो गयी—'कागज खाली दिखाई देता है, पर ईश्वर जानता है वह खाली नहीं था')।

साहिर को मैंने थोड़ा-सा अमृत' उपन्यास में चित्रित किया। फिर 'एक थी अनीता' में और फिर 'दिल्ली की गलियां' में सागर के रूप में।

कविताएं बड़े लिखो थी, सुनहड़े' सबसे लम्बी कविता, 'धूप शीर्षक की सब कविताएं और एक अन्तिम कविता आग की बात' लिखकर लगा कि अब चौदह बरस का वनवास भुगतकर स्वतन्त्र हो गयी हूं।

पर बीते हुए बरस—शरीर पर पहने हुए कपड़ों की तरह नहीं होते, ये शरीर के तिल बन जाते हैं। मुंह से चाहे कुछ नहीं कहते, शरीर पर चुपचाप पड़े रहते हैं। बहुत वर्षों बाद—बरगारिमा के दक्षिण में वार्ना के एक होटल में ठहरी हुई थी जहां एक ओर समुद्र था दूसरी ओर जंगल और तीसरी ओर पहाड़। वहां एक रात ऐसा लगा जैसे समुद्र की ओर से एक नाव आयी, और उसमें से कोई उतरकर खिड़की की ओर से मेरे होटल के कमरे में आ गया।

चेतनता और अचेतनता परस्पर मिल सी गयी। उस रात कविता लिखी थी —'तेरी याद बहुत देर से जलावतन थी'

मेरे अकेलेपन का अभिशाप इमरोज ने सोखा है। पर उससे मिलने से पहले एक और प्यारी घटना मेरे साथ घटी थी—एक बहुत ही पाक दिल इंसान की दोस्ती मुझे मिली थी।

सज्जाद हैदर से परिचय तब हुआ था जब अभी देश का विभाजन नहीं हुआ था। अपने समकालीनों में किसी एक से भी ऐसी मुलाकात नहीं हुई जो उलझनों और गलतफहमियों से रहित होकर हुई हो। दोनों हाथों से तल्खियां बांटने वाली सब मुलाकातों में केवल सज्जाद की एक मुलाकात थी जो पहली थी और जिसके साथ दोस्ती लफ्ज आंखों के आगे झिलमिला जाता था।

लाहौर में थी तो अक्सर मुलाकात होती थी। किसी मुलाकात के होंठों पर कोई शोख हर्फ कभी नहीं आया। वह मिलने आता था तो एक अदब उसके साथ ही सीढ़ियों पर चढ़ता था। फिर बहुत जल्दी ही फ़िक्रों के गुच्छे हो गए सारे-सारे दिन कर्फ्यू लगा रहता पर कर्फ्यू खुलता तो वह घड़ी पल के लिए जरूर आता। उन्हीं दिनों २३ अप्रैल आयी—यह मेरी बच्ची का जन्मदिन था। शहर के अग्नि और हत्याकांड के वातावरण में जन्मदिन मनाने का होश नहीं था। शाम को दरवाजे पर खटका हुआ—सज्जाद मेरी बच्ची के पहले जन्मदिन का

नाम को लेकर आज मुझसे मजाक किया है फिर कभी न करना। तुम्हें नहीं मालूम कि मेरा मुहब्बत में उसके लिए परस्तिश भी शामिल है।

उसकी हसीन रूह की एक और घटना याद आ रही है। हम कनाट प्लेस से घर आए थे स्कूटर में। स्कूटर वाले ने कुछ ज्यादा ही पैसे मांगे मैं उससे पैसे के बारे में कुछ कह रही थी कि सज्जाद ने जल्दी से जितने पैसे उसने मांगे थे उतने उसे थमा दिए और उसके जाने के बाद मुझसे कहने लगा, ये जितने भी लोग पाकिस्तान से उजड़कर आए हैं मुझे लगता है मैं सबका कुछ न कुछ देनदार हूं।

काश, इस मनुष्य की रूह से सारी दुनिया की राजनीति, अगर बहुत नहीं तो थोड़ा-सा ही सौन्दर्य मांग लेती।

फिर राजनीतियों के कर्म कि दोनों देशों में चिट्ठी-पत्री बन्द हो गयी। जिन वर्षों में मैं बड़ी कठिन स्थिति से गुजर रही थी, बड़ी अकेली थी, सज्जाद का खत भी मेरे पास नहीं था (उन दिनों कई महीने तक एक साइकेट्रिस्ट के इलाज में रही थी उसके कहने पर उसके लिए जो अपनी परेशानियां और सपने लिखे थे, वही फिर काला गुलाब किताब में छपे थे)।

फिर इमरोज मेरी जिन्दगी में आया। दोनों देशों में कुछ समय के लिए चिट्ठी-पत्री भी खुली। फिर मैंने और इमरोज ने सज्जाद को खत लिखा। जवाब में उसका जो खत इमरोज के नाम आया, दुनिया के सब इतिहास उसे सलाम कर सकते हैं। लिखा था— मेरे दोस्त! मैंने तुम्हें देखा नहीं है पर ऐसी की आंखों से देख लिया है। और आज दुनिया के इतिहास में जो नहीं हुआ, वह हुआ है। मैं तुम्हारा रकीब तुम्हें सलाम भेजता हूं।

साहिर से भी मेरी और इमरोज की मुलाकात हुई थी। पहली मुलाकात में वह उदास था—हम तीनों ने एक ही मेज पर जो कुछ पिया, उसके खाली गिलास हमारे जाने के बाद भी कुछ देर तक उसकी मेज पर पड़े रहे। उस रात को उसने नज्म लिखी थी— मेरे साथी खाली जाम तुम आबाद घरों के वासी हम हैं आवारा बदनाम' और यह नज्म उसने सुने रात के कोई ग्यारह बजे फोन पर सुनाई और बताया कि वह बारी-बारी से तीन गिलासों में ह्विस्की डालकर पी रहा है। पर बम्बई में दूसरी मुलाकात के समय इमरोज को बुखार चढ़ा हुआ था उसने उसी वक्त अपना डाक्टर भेज दिया था उसके इलाज के लिए।

सज्जाद के बारे में जो कुछ मन में था निस्संकोच कलम की नोक पर आ गया है—अपने पाक रूप में, पर राजनीतिक हालतों का तकाजा है कि उसका जिक्र भी मेरी जबान पर नहीं आना चाहिए। पिछले दिनों जब रेडियो और टेलीविजन के लिए कुछ संस्मरण प्रस्तुत करते हुए मैंने फैज नदीम और सज्जाद का कुछ बार नाम लिया तो पाकिस्तान के कुछ अखबारों ने उसके अर्थ तोड़-

मरोडकर मेरे साथ अपने लोगों को भी कुसूरवार समझा था कि मैं और पाकिस्तान के कुछ इंटलैक्चुअल्ज़ हिंदुस्तान के बटवारे को मन से कबूल नहीं करते और पाकिस्तान के अस्तित्व से दुखी हैं—और हमारी रूह भटक रही है आदि-आदि इसका असर यह हुआ कि सज्जाद ने मुझे लिखा कि मैं रेडियो टेलीविजन पर किसी तरह भी उसका नाम न लिया करूं। आज अपनी गहरी उदासी में यही कह सकती हूं— दोस्त ! तुम्हारा नाम फिर होठों पर आया है क्योंकि इसके बिना मेरी यादें अधूरी हैं—पर खुदा करे तुम्हारा किसी तरह का कोई अनिष्ट न हो और तुम्हारी पाक दोस्ती को राजनीति की गर्म हवा न छुए।

उस समय के अखबारों के जवाब में दिल्ली रेडियो के एक्सटर्नल सर्विसेज डिवीजन ने एक बातचीत करवाई जिसमें मैं थी जामिया मिलिया के प्रिंसिपल साहब और एक लेक्चरर थे—हमें पाकिस्तान के अस्तित्व से कोई शिकायत नहीं है—शिकायत सिर्फ यह है कि हमारे दोनों मुल्कों में दोस्ताना रवैया क्यों नहीं है। यह कोई आधा घंटे की बातचीत थी जिसमें हम तीनों ने भाग लेकर इस मुद्दे को स्पष्ट किया था। मालूम नहीं इसका असर उन अखबारों पर कुछ हुआ या नहीं, पर हम सबने सुखद महसूस किया, पर यह पता नहीं कि इसके बाद सज्जाद ने कुछ सुखद महसूस किया या नहीं। आज फिर यह दोहरा रही हूं केवल इसलिए कि सज्जाद के मुल्क की राजनीति मुझे खैरख्वाह ही समझे—और कुछ नहीं।

खामोशी का एक दायरा

लौटकर कई मील पीछे देखूं तो देश के विभाजन से पहले के वे दिन सामने आते हैं जब अचानक लाहौर की हवा रोमांचक अफवाहों से तल्ख हो गयी थी। जिंदगी में एक ही घटना घटी थी—ब्याह हुआ था चार साल की उम्र में जो सगाई हुई थी वह सोलह साल की उम्र होते-होते परवान चढ़ी। बहुत एकसार चल रही जिंदगी की तरह। पर साहित्यिक क्षेत्रों में बहुत ही रोमांचक कहानियां पल गयी। मालूम हुआ—पंजाबी कविता में जिस कवि का नाम उस समय मान के साथ लिया जाता था उसने मुझ पर कई कविताएं लिखी हैं।

यह उस समय के प्रसिद्ध कवि मोहनसिंह का नाम था। पर जिन समागमों में भी मैंने मोहनसिंहजी को देखा उनमें साधारण-सी मुलाकात हुई इससे ज्यादा कुछ नहीं। शायद उनका स्वभाव ही संजीदा और गंभीर था इसलिए। मुझे उनसे कोई शिकवा नहीं था, पर इर्द-गिर्द फैलने वाली कहानियों से मैं खुश

नहीं थी। मेरे मन में उनके लिए, अपने से बड़े कवि होने के नाते, एक आदर भाव था पर इसके सिवाय कुछ नहीं था। मेरा मन अपने ही भीतर से उठती हुई परछाइं से घिरा हुआ था, इसलिए इर्द गिर्द की कहानियां केवल यह डर जगाती थीं कि मैं एक गलतफहमी का केन्द्र बन रही हूं पर मोहनसिंहजी का शिष्टाचार ऐसा था कि उनको लेकर कोई शिकवा नहीं कर सकती थी।

फिर एक दिन संध्या समय मोहनसिंहजी मिलने के लिए आए। उनके साथ शायद डाक्टर दीवानसिंह थे, या कोई और अब मुझे याद नहीं है और मालूम हुआ कि अपने दिन में उन्होंने एक कविता लिखी 'जायदाद', जिसका भाव था—वह दरवाजे में खामोश खड़ी थी, एक जायदाद की तरह, एक मालिक की मिल्कियत की तरह

मेरे लिए—यह मेरे मन के बहुत कठिन दिन थे। कविता की स्पष्टता मुझे बेचैन कर रही थी—कि एक अच्छे भले आदमी को मेरी खामोशी गलतफहमी में डाल रही है। पर यह पता नहीं लग रहा था कि खामोशी को मैं किस तरह तोड़ूं। मेरे सामने मोहनसिंहजी ने अपनी खामोशी कभी नहीं तोड़ी। इस खामोशी की एक अपनी आबरू थी जो कायम थी।

और फिर एक दिन मोहनसिंह आए। उनके साथ फारसी के विद्वान् कपूरसिंह थे। मेरा संकोच उसी प्रकार था, जिसमें आदर भी सम्मिलित था, पर शायद कुछ रूखापन भी, कि अचानक कपूरसिंहजी ने कहा, "मोहनसिंह! डोन्ट मिसअंडरस्टैंड हर शी डज़ रौंट लव यू" तो चिरकाल की जमी हुई खामोशी कुछ पिघल गयी। उस दिन मैं साहस करके कह सकी "मोहनसिंहजी, मैं आपकी दोस्त हूं आपका आदर करती हूं। आप और क्या चाहते हैं?" बड़े संकोच भरे शब्दों में मैंने केवल इतना कहा और मेरे विचार में यह काफी था।

मोहनसिंहजी ने कुछ नहीं कहा, केवल बाद में एक छोटी सी कविता लिखी, जिसमें वही शब्द दोहराए मैं आपकी दोस्त हूं, मैं आपकी मित्र हूं आप और क्या चाहते हैं?" और आगे की पंक्तियों में उदासी से लिखा—"मैं और क्या चाहूंगा'

कुछ कहानियां-सी फिर भी साहित्य में चलती रहीं—कई मौखिक कई कुछ लोगों की रचनाओं में संकेतों में, पर मोहनसिंहजी की ओर से ऐसी कोई रचना नहीं आयी जो मुझे दुखा जाती। इसलिए मेरी ओर से भी आज तक उनके आदर में कभी कोई अन्तर नहीं आया।

एक साधारण-सी घटना और भी घटी थी। लाहौर रेडियो के एक अफसर थे जिन्हें शायद साहित्य से कुछ लगाव था। एक बार मेरे एक ब्राडकास्ट के बाद अचानक बोले, 'अगर मैंने आज से कुछ बरस पहले आपको देखा होता तो या

तो मैं मुसलमान से सिख हो गया होता या आप सिख से मुसलमान हो गयी होती।

ये शब्द अचानक हवा में उभरे और अचानक हवा में लीन हो गए। मेरा खयाल है—यह एक क्षण का जखम था जिसका न कोई पहला क्षण इससे जुड़ता था न कोई आगे का क्षण। फिर उस दिन के बाद उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा। पर मैं आज तक नहीं जानती कि उस समय के वातावरण में उनके किसी भी एहसास की बात कैसे बिखर गयी शायद किसी के आगे स्वयं उन्हीं की जबानी और न जाने किन शब्दों में कि बाद में इसका बहुत तोड़ा मरोड़ा हुआ जिक्र भी पढ़ा। कई बार लगता है—कई पंजाबी लेखकों के पास लिखने के लिए कोई गंभीर विषय नहीं होता वे स्वयं ही कुछ अफवाहें फैलाते हैं स्वयं ही उनको अपनी मर्जी से जिधर चाहे मोड़ते हैं और फिर उन्हें लिख लिखकर उनमें लज्जत लेते हैं

हो वर्षों बाद जब मैंने दिल्ली रेडियो में नौकरी की तो वहां एक पंडित सत्यदेव शर्मा हुआ करते थे जो लाहौर रेडियो पर भी स्टाफ आर्टिस्ट थे और अब दिल्ली रेडियो पर भी स्टाफ आर्टिस्ट थे। उन्होंने हिंदी में एक कहानी लिखी—टवेन्टी सिक्स मेन एण्ड ए गर्ल। कहानी का शीर्षक उन्होंने गोर्की की कहानी से ही लिया पर लिखा उस पुरानी घटना को और कहानी लिखकर मुझे सुनाई। बड़े साफ दिल के आदमी थे। उन्होंने बताया लाहौर रेडियो पर तुम्हें नहीं मालूम कि कितने लोग तुममें दिलचस्पी लेते थे खासकर वह आदमी भी। और हम सब स्टाफ के लोग महीनों तक एक फिक्र के साथ देखते रहे कि आगे क्या होगा पर कुछ हुआ नहीं।

शर्माजी शायद यह कहानी कभी भी न लिखते पर मुझे देखकर उन्हें बरसों पुराना वह इंतजार याद आ गया जिसमें वह कुछ होने की संभावना से चिंतित रहे थे। कहानी में स्टाफ के छोटे छोटे लोगों के कानों का जिक्र था जो कुछ उड़ती हुई सुनने के लिए दीवारों से लगे रहते थे कुछ सुनाई नहीं देता था तो हैरान बैठ जाते थे कि शायद कुछ हो ही चुका है पर कानों तक नहीं पहुंच रहा है

शर्माजी साधारण से लेखक थे पर मेरा खयाल है वह कहानी उनकी सबसे अच्छी कहानी थी। उन्होंने एक तनाव के वातावरण को पकड़ने की कोशिश की थी पर अपनी ओर से पंजाबी लेखकों की तरह जबरदस्ती कोई नतीजा नहीं निकाला था। कहानी में एक ईमानदाराना सादगी थी।

नफरत का एक दायरा

बात यह भी छोटी सी है पर एक बहुत बड़े नफरत के दायरे में घिरी हुई। यह भी मेरी साहित्यिक जिन्दगी के आरंभिक दिनों की बात है, लाहौर की। पंजाबी के एक कवि थे जिनसे कभी भेंट नहीं हुई थी। पता लगता रहता था कि वह मेरे विरुद्ध बहुत बोलते हैं। मैंने उन्हें कभी देखा नहीं था इसलिए चकित हुआ करती थी कि उन्हें मेरी जात से बैर की और किस बात की दुश्मनी है।

फिर देश के विभाजन से कुछ समय पहले की बात है कि एक बार मुझे कुछ बुखार हो गया और एक साप्ताहिक के संपादक हाल पूछने के लिए आए। उनके साथ एक कोई और व्यक्ति भी था जिसे मैंने कभी पहले नहीं देखा था। उन्होंने नाम बताकर परिचय कराया तो मैं चौंक सी गयी। यह वही थे जिन्हें मेरे अस्तित्व से ही नफरत थी। हैरान थी कि आज यह मेरा हाल पूछने क्यों आए?

दो तीन दिन बाद उसी साप्ताहिक में उनकी एक कविता पढ़ी, जिसके नीचे वही तारीख पड़ी हुई थी जिस तारीख को वह मिलने के लिए आए थे। और यह कविता अजीबोगरीब प्रेम की कविता थी। ऐसा प्रतीत हुआ—जैसे नफरत के लिए कोई कारण नहीं था, उसी तरह इस जज्बे के लिए भी कोई कारण नहीं था।

और फिर वह कुछेक बार घर आए। हैरान होकर पूछा कि यह अचानक मेहरबानी क्यों? पर कुछ भी पकड़ में नहीं आया। यह मानती हूं कि उनकी किसी बात में कोई शोखी नहीं थी लेकिन एक कठोरता सी जरूर थी कि सब लोग घटिया हैं, मैं किसी से न मिला करूं यहां तक कि लाहौर रेडियो के लिए मैं जब साहित्य की समालोचना लिखा करती थी वह आग्रह किया करते थे कि अमुक का नाम मत लिखना, अमुक की प्रशंसा मत करना अमुक की पुस्तक का उल्लेख मत करना।

इस साहित्यिक परिचय से जब सांस घुटने लगा तो मैं खीझ उठी। पर यह तल्खी अभी जबान पर आयी ही थी कि देश का बटवारा हो गया और मैं उनके परिचय से मुक्त हो गयी। फिर कुछ वर्ष बाद सुना कि उनके विचार में हिन्दुस्तान का बटवारा इसीलिए हुआ क्योंकि मैंने उनकी दोस्ती नहीं चाही। और उनके विचार में हजारों मासूम लोगों का कत्ल भी इसीलिए हुआ। खैर हिन्दुस्तान के विभाजन का और मासूम लोगों के कत्ल का यह जो मुझ पर इल्जाम था इस बारे मनोविज्ञान का विशेषज्ञ भले ही समझ सके मैं नहीं समझ सकती। और देखने में आया कि अब वह फिर मेरे विरुद्ध बोलते थे और मेरे विरुद्ध कविताएं लिखते थे। यह नफरत मानो एक गोल दायरा थी जिसका आखिरी सिरा फिर पहले सिरे से जुड़ना ही था

पुराने इतिहासों के भीषण अत्याचारी काड हम लोगों ने भले ही पढ़े हुए थे, पर फिर तब भी हमारे देश के बटवारे के समय जो कुछ हुआ किसी की कल्पना में भी उस जैसा खूनी काड नहीं आ सकता।

दु खों की कहानियां कह कहकर लोग थक गए थे, पर ये कहानियां उम्र से पहले खत्म होने वाली नहीं थी। मैंने लाशें देखी थी, लाशों जैसे लोग देखे थे और जब लाहौर से आकर देहरादून में पनाह ली तब नौकरी की और दिल्ली में रहने के लिए जगह की तलाश में दिल्ली आयी और जब वापसी का सफर कर रही थी तो चलती हुई गाडी में नींद आखों के पास नहीं फटक रही थी

गाडी के बाहर घोर अंधेरा समय के इतिहास के समान था। हवा इस तरह साय साय कर रही थी जैसे इतिहास के पहलू में बैठकर रो रही हो। बाहर ऊंचे ऊंचे पेड दु खों की तरह उगे हुए थे। कई जगह पेड नहीं होते थे, केवल एक वीरानी होती थी, और इस वीरानी के टीले ऐसे प्रतीत होते थे जैसे टीले नहीं, कब्रें हों।

वारिस शाह की पंक्तियां मेरे जेहन में घूम रही थीं— भला मोए ते बिछडे कौन मेले [1] और मुझे लगा वारिस शाह कितना बडा कवि था, वह हीर के दु ख को गा सका। आज पंजाब की एक बेटी नहीं लाखों बेटियां रो रही हैं आज इनके दु ख को कौन गाएगा ? और मुझे वारिस शाह के सिवाय और कोई ऐसा नहीं लगा जिसे संबोधन करके मैं यह बात कहती।

उस रात चलती हुई गाडी में हिलते और कांपते कलम से एक कविता लिखी—

अज्ज आक्खां वारिस शाह नूं किते कबरां विच्चों बोल
ते अज्ज किताबे इश्क दा कोई अगला वरका खोल ।
इक्क रोई सी धी पंजाब दी तूं लिख लिख मारे बैन
अज्ज लक्खां धीयां रोंदियां तैनूं वारिस शाह नूं कहन
उठ दर्दमंदां दिया दर्दिया ! उठ तक्क अपणा पंजाब

---

१ जो मर चुके हैं जो बिछुड चुके हैं उनसे कौन मिलन कराए ?

अज्ज बेल्ले लाशा विच्छिया त लहू दी भरी चिनाव [1]

कुछ समय बाद यह कविता छपी, पाकिस्तान भी पहुची और कुछ देर बाद जब पाकिस्तान म फज अहमद फज की किताब छपी, उसकी प्रस्तावना म अहमद नदीम कासमी न लिखा कि यह कविता उन्होने जब पढी थी जब वह जेल म थे। जेल से बाहर आकर भी देखा कि लोग इस कविता को जेबो मे रखते हैं, निकालकर पढते हैं और रोते हैं

फिर १९७२ म लदन गयी, तो वहा बी० बी० सी० के एक कमरे म किसी ने पाकिस्तान की शायरा सहाब किजलबाश से मुलाकात करवायी। सहाब के पहले शब्द थे— अरे, यह अमता हैं जिन्होन वह कविता लिखी थी वारिस शाह इनसे तो गले मिलेंगे '

वहा ही एक शाम सुरिन्दर कोछड के घर पर महफिल थी जहा सहाब थी, और पाकिस्तान के और साहित्यिक थे—साकी फारूकी, फहमीदा रयाज और उदास नस्लें का लेखक अब्दुल्ला हुसन, और साथ ही पाकिस्तान के मशहूर गवय थे नजाकत अली सलामत अली। रात कविताओ से भरी हुई थी पर जब नजाकत अली से कुछ गाने के लिए कहा गया, तो उनके पास साज नही थे कहने लगे—'हमने आज तक बिना साज के कभी नही गाया।' पर साथ ही बोले— 'जिसन वारिस शाह कविता लिखी है आज उसके लिए बिना साज के भी गाएगे। और वह रात नजाकत अली की सुरीली आवाज म भीग गयी

अब १९७५ म जब पाकिस्तान के मुलतान शहर से एक साहित्यिक मशकूर साबरी उस के मौके पर दिल्ली आए तो उन्होने बताया कि पिछले कई बरसो से वह मुलतान मे जश्ने वारिस शाह' मनाते हैं जिसम लोक गीतो का लोक नत्य का और लोक कला का प्रदशन भी होता है, और मुशायरा भी और यह जश्न भरी उस नज्म वारिस शाह' से शुरू किया जाता है। वह सौ गुणा अस्सी फुट की स्टेज पर सेट लगाते हैं जहा राझे का वन भी होता है हीर का मुकाम भी और यह नज्म करीब पचीस मिनट गायी जाती है। स्टेज पर घुप्प अधेरा करके एक रोशनी से धुआ दिखाते हैं फिर वारिस शाह कब्र म से उठता है पाकिस्तान के मशहूर गवय एक एक कडी गाते हैं और उन्ही के मुताबिक स्टेज के दृश्य बदलते

---

१ आज वारिस शाह से कहती हू अपनी कब्र मे से बोलो
और इश्क की किताब का कोई नया पृष्ठ खोलो
पजाब की एक बेटी रोयी थी तून लम्बी दास्तान लिखी
आज लाखा बटिया रो रही हैं वारिस शाह तुम स कह रही हैं
ए दरदमदा के दोस्त ! अपन पजाब को देखो
वन लाशा से अटे पडे हैं चिनाब लहू से भर गया है

जाते हैं और जब नज्म का आखिरी हिस्सा आता है तो ऐसी गूंज पैदा करते है जैसे सारी कायनात में मुहब्बत और खलूस जाग पड़ा हो।

पर यही कविता थी, जब लिखी थी तब अपने पंजाब में कई पत्र पत्रिकाएं मेरे लिए तोहमतों से भर गयी थीं। सिक्खों को यह आपत्ति थी कि यह कविता वारिस शाह को संबोधन क्यों की गुरु नानक को संबोधन करके लिखनी चाहिए थी। और कम्युनिस्ट कहते थे कि मैंने लेनिन या स्टालिन का संबोधन करके क्यों नहीं लिखी। यहां तक कि इस कविता के विरुद्ध कई कविताएं लिखी गयीं

सिर्फ औरत

बचपन की पनपती उम्र में न जाने किस घड़ी, एक कल्पना भी शरीर का अंग बन जाती है और पनपने लगती है

और अपना मन अपने आप ही जादू बुनने लगता है

दुनिया को सिरजने वाली ईश्वर की शक्ति का मुट्ठीभर भाग, शायद हर इन्सान के हिस्से में आता है पता नहीं, पर मेरे हिस्से में जरूर आया था

और इसमें से—मैंने एक मर्द की परछाईं गढ़ी थी।

और उस परछाईं को अंग के संग लेकर—आयु के बरस पार करने लगी थी

हो सकता है—यह जिसे मैंने शक्ति कहा है—अपने सहज रूप में शक्ति नहीं है, पर कुछ उस प्रकार की ताकत है जो बड़े खतरे के समय उस साधारण से व्यक्ति में भी आ जाती है जो समस्त नाशकारी शक्तियों को सामने देखकर अपना अंतिम साधन भी अपने अंगों में जगा लेता है

और मैं थी चाहे बच्ची-सी और यह भय सा विरासत में पाया था कि दुनिया के भयानक जंगल में से मैं अकेली नहीं गुजर सकती। और शायद इसी भय में से अपने साथ के लिए मर्द के मुंह की कल्पना करना—मेरी कल्पना का अंतिम साधन था

पर इस मर्द शब्द के मेरे अर्थ कहीं भी पढ़े सुने या पहचाने हुए अर्थ नहीं थे। अंतर में कहीं जानती अवश्य थी पर अपने आपको भी बता सकने की सामर्थ्य मुझमें नहीं थी। केवल एक विश्वास-सा था—कि देखूंगी तो पहचान लूंगी।

पर दूर मीलो तक कहीं भी कुछ दिखायी नहीं देता था।

और इस प्रकार वर्षों के कई अडतीस मील गुजर गए।

मैंने जब उसे पहली बार देखा तो मुझसे भी पहले मेरे मन ने उसे पहचान लिया। उस समय मेरी आयु कोई अडतालीस वर्ष थी

यह कल्पना इतने वर्ष जीवित रही और इसके अर्थ भी जीवित रहे—इस पर चकित हो सकती हूं पर हूं नहीं, क्योंकि जान लिया है कि यह मेरे 'मैं' की परिभाषा थी—थी भी, और है भी।

मैं उन वर्षों में नहीं मिटी इसलिए वह भी नहीं मिटी

यह नहीं कि कल्पना से शिकवा नहीं किया, उस आयु की कई कविताएं निरी शिकवा ही हैं जैसे

'लक्ख तेरे अम्बारां विच्चों, दस्स की लब्भा सानूं
इक्को तंद प्यार दी लब्भी, ओह वी तंद इकहरी'[1]

पर यह इकहरा तार वर्षों के बीतने पर भी क्षीण नहीं हुआ। उसी तरह मुझे अपने में लपेटे हुए मेरी उम्र के साथ चलता रहा

इन वर्षों की राह में दो बड़ी घटनाएं हुईं। एक—जिन्हें मेरे दुख-सुख से जन्म से ही सबंध था पर माता पिता उनके हाथों हुई। और दूसरी मेरे अपने हाथों। यह एक—मेरी चार वर्ष की आयु में मेरी सगाई के रूप में और मेरी सोलह सतरह वर्ष की आयु में मेरे विवाह के रूप में थी। और दूसरी—जो मेरे अपने हाथों हुई—यह मेरी बीस इक्कीस वर्ष की आयु में मेरी एक मुहब्बत की सूरत में थी।

पर कल्पना, जो मेरे अंगों की भांति मेरे शरीर का भाग थी, वह मेरे शरीर में निर्लेप होकर बैठी रही

उसे कई वर्ष समाज ने भी समझाया और कई वर्ष मैंने स्वयं भी पर उसने पलकें नहीं झपकायीं। वह कई वर्षों के पार—उस वीरानगी की ओर देखती रही, जहां कुछ भी नजर नहीं आता था

और जब उसने पलकें झपकायीं तब मेरी आयु को अडतीसवां वर्ष लगा हुआ था

और तब मैंने जाना कि क्या उसे, उससे कुछ अलग, या आधा या लगभग-सा कुछ भी नहीं चाहिए था।

---

१ तेरे लाखों अम्बारों में से बतला हमें क्या मिला
प्यार का एक ही तार मिला, वह भी इकहरा

यू तो—मेरे भीतर की औरत सदा मेरे भीतर के लेखक से दूसरे स्थान पर रही है कई बार यहा तक कि मैं अपने भीतर की औरत का अपने आपको ध्यान दिलाती रही हू। सिर्फ लेखक' का रूप सदा इतना उजागर होता है कि मेरी अपनी आखो को भी अपनी पहचान उसी म मिलती है ।

पर जिन्दगी म तीन समय ऐसे आए हैं—मैंने अपने अन्दर की 'सिर्फ औरत को जी भरकर देखा है। उसका रूप इतना भरा पूरा था कि मेरे अन्दर के लेखक का अस्तित्व मेरे ध्यान से विस्मृत हो गया। वहा, उस समय कोई थोडी-सी भी खाली जगह नही थी, जो उसकी याद दिलाती। यह याद केवल अब कर सकती हू—वर्षों की दूरी पर खडे होकर।

पहला समय तब देखा था जब मेरी आयु पचीस वर्ष की थी। मेरे कोई बच्चा नही था और मुझे प्राय रात को एक बच्चे का स्वप्न आया करता था। एक छोटा सा चेहरा—बडे तराशे हुए नक्श सीधा टकुर टुकुर मेरी ओर देखता हुआ। और कई बार यही स्वप्न देखने के कारण मुझे उस बच्चे के चेहरे की पक्की पहचान हो गयी थी। स्वप्न म वह मुझसे बात भी करता था, रोज एक ही बात और मुझे उसकी आवाज की पूरी पहचान हो गयी थी। स्वप्न मे मैं पौधा म पानी दे रही होती थी—और अचानक एक गमले मे फूल खिलने की जगह एक बच्चे का चेहरा खिल उठता था

मैं चौंककर पूछती थी— तू कहा था ? मैं तुझे ढूढती रही '

और वह चेहरा हस पडता था— मैं यही था छिपा हुआ था।

और मैं जल्दी स गमले म से बच्चे को उठा लेती थी।

जब मैं जाग जाती थी मैं वैसी की वैसी ही होती थी—सूनी, वीरान और अकेली। एक सिर्फ औरत —जो अगर मा नही बन सकती थी तो जीना नही चाहती थी।

दूसरी बार ऐसा ही समय मैंने तब देखा था जब एक दिन साहिर आया था तो उसे हल्का-सा बुखार चढा हुआ था। उसके गले म दर्द था—मास खिचा खिचा था। उस दिन उसके गले और छाती पर मैंने विक्स मली थी। कितनी ही देर मलती रही थी—और तब लगा था इसी तरह परो पर खडे खडे मैं पारा स उगलिया स और हथेली से उसकी छाती को हौले हौले मलते हुए सारी उम्र गुजार सकती हू। मेरे अन्दर की 'सिर्फ औरत' को उस समय दुनिया के किसी कागज-कलम की आवश्यकता नही थी।

और तीसरी बार यह सिर्फ औरत मैंने तब देखी थी जब अपने स्टूडियो म बठे हुए इमरोज ने अपना पतला सा ब्रुश अपने कागज के ऊपर स उठाकर उसे एक बार लाल रग मे डुबाया था और फिर उठाकर उस ब्रुश स मेरे माथे पर बिंदी लगा दी थी

मेरे भीतर की 'इस सिफ औरत' की सिफ लेखक' से कोई अदावत नहीं। उसने आप ही उसके पीछे उसकी ओट म खड़े होना स्वीकार कर लिया है—अपने बदन को उसकी आखा से चुराते हुए और शायद अपनी आखा स भी। और जब तक तीन बार—उसने अगली जगह पर आना चाहा था मेरे भीतर की 'सिफ लेखक' ने पीछे हटकर उसके लिए जगह खाली कर दी थी।

सिफ लेखक का रूप मेरे अग के सग रहता है—विचारा म भी, सपनो म भी—और इस तरह उसकी और मेरी सूरत एक ही हो गयी है। पर सिफ औरत का रूप मैंने केवल तीन बार देखा है—वह एक वास्तविकता है—पर आखा से उसे केवल तीन बार दखा है। इसलिए कई बार हैरान सी हो जाती हू वह कैसा था ? क्या मैंने सचमुच देखा था ?

एक क़ब्र

अठारह सौ सत्तावन के गदर के सबध म मुझे कुछ मालूम नही है। पर यह शब्द 'गदर' दादी अम्मा से सुनी हुई किसी कहानी की तरह मेरे भीतर कही अटका हुआ था

यह शब्द किसी जीवित वस्तु की तरह भी था, और मरी हुई चीज की तरह भी

कभी कई तरह की आवाजें इसम से आती हुई सुनी थी—न जाने किन की पर इसानी आवाजें—एक दूसर से टूटती हुई, एक दूसर को खोजती हुई तलवारा की तरह खनकती हुई भी घावों की तरह रिसती हुई भी

कई रग भी इस शब्द म स लहू की तरह बहत थे

पर फिर भी लगता था कि यह शब्द कब का मर चुका है केवल मेरे विचार कभी इस पर चीटियो की तरह चढ जाते हैं

इस गदर की केवल एक निशानी मैंने अपनी आखो से देखी थी—जिस घराने म ब्याह हुआ यह निशानी उस घराने म पिछली पीढी स चली आ रही थी। यह एक कालीन था जो दिल्ली के लूटे जाने के समय इस घराने के एक सरदार ने लूटा था। किसी जमाने म इसके न जाने कसे रग थ, पर जब मैंने देखा यह केवल रगो का और रेशम का एक खडहर-सा था। घर का दादा सस इस कालीन पर सोता था। तब यह घराना लाहौर म रहता था। फिर उन्नीस सौ सतालीस मे जब हिन्दू मुसलमानो का तबादला हुआ, यह घराना दिल्ली आ गया। लाहौर के

भरे घर को छोड़कर जब सब दिल्ली आने लगे तब घर के मुखिया दादा ने आने से इनकार कर दिया। उसका खयाल था यह अफरातफरी थोड़े दिनों की है, सरकारें लोगों के घर नहीं छीन सकतीं इसलिए वह वहीं रहेगा और भरे घर की रखवाली करेगा। पर जब हालत बहुत बिगड़ गयी तो मिलिटरी ने उसे ट्रक में बिठाकर वहां से दिल्ली भेज दिया। बिस्तर के नाम पर केवल वही कालीन था जो अपने साथ वह ला सका और कुछ नहीं। भरा हुआ घर छोड़ने का दुःख, और रास्ते का कष्ट, उससे बहुत दिन सहन न हो सका दिल्ली पहुंचकर वह बहुत थोड़े दिन जीवित रहा। जिस समय उसकी मृत्यु हुई वही कालीन उसके नीचे बिछा हुआ था। उसके बाद वह कालीन किसी गरीब गुरबे को दे दिया गया। एक बात उस समय सबकी जबान पर थी— दिल्ली के गदर में यह कालीन हमने दिल्ली में लूटा था आज दिल्ली से लूटी हुई चीज एक सदी के बाद दिल्ली को वापस लौटा दी

लूट भी शायद एक कर्ज होती है जो कभी न कभी लौटानी पड़ती है

कभी एक भयानक सा विचार आता कि मुझे भी किसी का कुछ लौटाना है—मालूम नहीं क्या मालूम नहीं किसे और मालूम नहीं कब

कभी कंघी से बाल संवारते हुए कंघी बालों में अटक जाती थी—विचार अटकावों की तरह आ जाते थे—मेरी मां की मां ने और उसकी मां की मां ने, हर औरत की मां ने न जाने किस गदर में समाज से यह सोलह सिंगार लूटे थे, और यह हार सिंगार पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं पर समाज का यह कर्ज उतारना है न जाने कब न जाने किस तरह मुझे भी और न जाने और कितनी औरतों को भी

और किसी का पता नहीं पर लगता था मैं बहुत कर्जदार हूं

हिंदुस्तान के विभाजन से पहले भी कई बार ऐसा लगा करता था। एक बार इसी कसक से एक कविता लिखी थी— हमसफर अब साथ तेरा दूर जा रहा है पर इस दूरी का संबंध किसी बाहरी घटना से जुड़ा हुआ नहीं था, यह फासला सिर्फ भीतर का था

यही भीतर का फासला १९६० में धरती को फाड़कर बाहर आ गया था। यह धरती के फटने का समय मेरे शरीर की हड्डियों को चटका देने वाला समय था। छाती का ईमान कहता था मैं अपने खाविंद को उसका हक नहीं दे रही हूं उसकी छाया मैंने गदर के माल की तरह चुरायी हुई है उसे लौटाना है लौटाना है

उसके लिए दोनों हालतें दुःखदायी थीं—जो फासला विचारों की रंग रंग में था वह भी दुःखदायी था और जो फासला सामाजिक रूप में पड़ना था वह भी। दोनों में से एक चुनाव सामने था—पर पहली हालत के मुकाबले में

दूसरी हालत म इमान जरूर बहुत ज्यादा जुडा हुआ था। इसलिए दूसरी हालत चुनी। दोनो का एक दूसरे से कोई शिकवा नही था, एक यह गभीर दोस्ताना फैसला था जिसम किसी की भी जबान पर किसी के भी व्यक्तित्व का छोटा करने वाले शब्द क आने का प्रश्न नही था। जो कुछ एक दूसर से पाया था उससे इनकार नही था। जो नही पाया था, उसके लिए कोई गिला नही था। सिफ जो 'अनपाया था यह दूरी उसी का तकाजा थी उसी की जरूरत। मेरा खयाल है—दोनो के लिए एक समान आवश्यक।

अपन-अपने भाग का दद बाटकर ले लिया। चेहरे मे इतने सुखरू थ सच्चे थे कि इस दद से उन्ह मुह छिपान की आवश्यकता नही थी। यह दद भी आखो और हाठो की तरह चेहरो का एक भाग था—या तिल की तरह था, या मस्से की तरह। इसे परवान करना था किया। अपने अगो की भाति। और इसे अपने अस्तित्व का एक हिस्सा मानकर।

कानून को अजनबी समझकर कुछ नही कहा—न उससे कुछ पूछा, न उसे कुछ बताया। जब साथ चुना था तब बहुत अनजान थे इसलिए कानून का आसरा लिया था पर जब साथ छूटा तब दोनों के अन्दर की सच्चाई दोनो के लिए कानून स कही अधिक तगडी हो चुकी थी

जानती हू—उसके बाद क वर्षों ने जो इन्साफ मेरे साथ किया है, वह मुझ से बिछुडे मेरे हमसफर के साथ नही किया। मुझे उसके बाद के वर्षों म इमरोज की हसीनतर दोस्ती मिल गयी पर उसे केवल अकेलापन मिला। उसे कुछ भी देते समय जिन्दगी के हाथ कजूस हो गए।

हम अब भी दोस्त की तरह मिलते हैं, पर जानती हू इतनी-सी चीज अकेलेपन को नही भर सकती। अकेलेपन का शाप जिस भी अच्छे मनुष्य ने झेला है उसक आगे सिजद मे सिर झुक जाता है।

पर झुके हुए सिर मे भी एक मान है—सिर स भी ऊचा, कि जिस सुरक्षा का मैंने मोल नहीं दिया था और जो सामाजिक स्थान और घर घराने की आवरू मैंने जिन्दगी के गदर म ऐसे ही रास्ता चलते हासिल कर ली थी, वह लौटा सकी हू—एक कज था उतार सकी हू।

जो अक्सर होता है वह मेरे साथ नही हुआ। अकसर कहानी के वे पात्र वर या विरोध के दाग कहानी को लगाते हैं, जिनका कहानी से निकट सबध होता है। और दूर-पार के लोगो मे स बहुत-से निर्लिप्त रहते हैं पर कुछ ऐसे होते है जो कुछ थोडा सा दद बटा लेते हैं।

पर मेरी कहानी से जिन्होंने बरसो विरोध रखा है वे कहानी के दूर पार के भी कुछ नही लगते थ—वे कुछ मेरे समकालीन लेखक थे कुछ वे रास्ता चलत दुख दकर जान वाले जिन्हे मेर मन की तो क्या, सूरत की भी पहचान नही थी

और थ कुछ पजाबी अखबार (मेरे एक समकालीन ने मुझसे अलग हुए मेरे खाविन्द के आगे यहा तक समापन जताया था कि यदि वह एक बार कागज पर हस्ताक्षर कर दें तो वह कई बरस तक मुझे कचहरियो की खाक छनवाता रहेगा) पर जो इस कहानी के धागो म बुने हुए थे वे सदा चुपचाप अपने हिस्से की चीखो और पीडाओ को झेलते रहे। बरसो के बाद भी कहीं भेंट हो जाती तो आखें अदब से भर जाती। इन्हीं आखो के बारे म आज भी विश्वास से कह सकती हू, इनमे पानी या आसू झलके हैं या अदब, इन्हे और किसी तीसरी चीज से वास्ता नही है।

मेरे और मुझसे अलग हुए मेरे साथी के रिश्ते की, मैंने देखा एक देविन्दर ने कुछ थाह पा ली थी। उसने जब मुझ पर 'कलम का भेद' पुस्तक लिखी और वह छपकर आयी, तो मैं उसका 'समपण देखकर चकित हुई थी— किसी मन के और घर के उस दरवाजे के नाम जो अमृता के लिए कभी बन्द नही हुआ' —और वह बडे आदर से यह किताब मेरे उस साथी को देने गया था जिससे मैं अलग हो चुकी थी।

अलग होने का अर्थ यह नही था कि 'सलाम तक न पहुचे'। बच्चो की किसी जरूरत के समय या मेरे इनकमटैक्स के किसी झमेले के समय, या यू ही कुछ दिनों बाद मैं भी फोन कर लेती थी, वह भी। इस सादगी और स्वाभाविकता को बाहर के लोगो म अगर कोई समझ सका तो वह आस्ट्रेलिया की एक लेखिका बेटी कालिस है जो अपने पति से तलाक लेकर फिर हर कठिनाई के समय उसी से दोस्तो की भाति सलाह लेती है और उसके तलाक किए हुए पति की दूसरी पत्नी जब भी अपने पति के स्वभाव से कभी परेशान होती है तो वह बेटी को फोन कर उससे मिलती है दोनों साथ काफी पीने जाती हैं और वह बेटी से सलाह लेती है कि अपने पति के स्वभाव से वह कैसे निबाह कर सकती है।

ये सादगिया भी शायद खुद जिये बिना समझ की पकड म नही आती।

१९५९ की एक रात—एक भयानक पल

पिताजी जब तक जीवित थे सुनाया करते थे कि जिन्दगी की पहली भयानक हैरानी उन्हे उस समय हुई थी जब एक बार परदेश जाते समय उन्होने अपने नाना की सम्पत्ति म मिला गहनो और अशर्फियो से भरा हुआ एक ट्रक अपने शहर गुजरावाला की एक पूजनीय भक्त महिला कहलाने वाली स्त्री के पास धरोहर के रूप म रखा था, और जिसने बाद म केवल यही कहा था— कैसा ट्रक ?

और १९५९ में अपने पिता के चेहरे की कल्पना करके जब मैं कह रही थी, 'आपके गुजरात्रा की एक भक्तिन होती थी न, उसकी गुरु गद्दी पर बठन वाली एक भक्तिन मैंने भी देखी है। मैंने उसके पास विश्वास से भरा हुआ एक टुकड़ा अमानत के तौर पर रखा था और अब वह कह रही है—बरसा विश्वास ?"

यह बड़ा भयानक पत्र था। अंधेरा बादलों की तरह घिरता आ रहा था, उदासी बूंद बूंद बरस रही थी पर बादल खुलते नहीं थे। उस भले से चेहरे वाली लड़की को कई बरस प्यार किया था। बीत हुए दिन बादलों के नित बदलते रूप की तरह आंखों के आगे कई रूप धारण करने लगे। सोचने लगी—यह मेघ माया ऐसी बातों के लिए तो नहीं बनी थी

शरीर में से जैसे कोई चुभी हुई सूइया निकालता है, एक एक याद को लेकर एक एक कहानी लिखी—'काले अक्षर', 'कर्मों वाली', 'केले का छिलका। और एक थी अनीता' उपन्यास में शांति बीबी का पात्र। पर उस 'शांति बीबी' ने जो-जो कुछ किया था,उसका जोर खत्म नहीं होता था। १९७० में फिर एक लम्बी कहानी लिखी—'दो औरतें (नम्बर पांच)' और उस कहानी की मिस वी' में लगा, वह बहुत हद तक समा गयी थी।

वह छोटी-सी बच्ची थी जब परिचित हुई थी। (उसके परिचय का पूरा विवरण दो औरतें (नम्बर पांच)' कहानी में है) उसके विवाह के समय, मेरे पास जो पाकिस्तान के बचे खुचे दो-तीन गहने थे वे दे दिए थे। उनका गम नहीं था, सिर्फ यह था—कि अंधेरा जब हंसता था, तो वे गहने भी बहुत जोर से हंसते थे—फिर समय बीतने पर ध्यान से देखा तो लगा—गहने नहीं, टूटे हुए विश्वास के टुकड़े थे, जो अंधेरे में चमकते थे और हंसते थे

उसकी मासूम-सी दिखनवाली बातों को मैंने रेशमी धागों के समान गले से लगाया था, शिवजी ने सांपों को गले में डाला था, पर रेशमी धागे समझकर नहीं। सोचा करती थी, मैं शिवजी नहीं हूं फिर शिवजी ने मुझे अपनी तकदीर क्या दी ?

मैं धीमी से धीमी गंध भी सूंघ सकती हूं, पर झूठ की तेज से तेज गंध सूंघने की मुझमें शक्ति नहीं थी।

यह शक्ति मेरे पिता में भी नहीं थी। छुटपन में आंखों से देखा था—उन्होंने सियालकोट के एक आदमी को पढ़ाया लिखाया फिर अपने पास नौकरी दी। पर एक बार उसने पिताजी के एक पत्र की ऊपर की लिखत फाड़कर हस्ताक्षर वाले स्थान से ऊपर के खाली स्थान में एक नयी लिखत लिख ली कि उन्होंने इतने हजार रुपया (पूरी रकम अब मुझे याद नहीं है) उससे उधार लिया है और कचहरी में दावा कर दिया। मैं उस व्यक्ति को मामाजी पुकारा करती थी। बहुत छोटी थी पर उस समय अपने पिता के चेहरे पर जो दुःख भरी हैरानी

देखी थी वही फिर १९५९ म मैंने अपने चेहरे पर देखी।

हैरान थी—घटनाओं की शक्लें कैसे मिल जाती हैं? इस लड़की को पढ़ाई के लिए किताबें दी थीं, फीसें दी थीं, बिलकुल उसी तरह जैसे मेरे पिता ने एक रिश्तेदार बच्चे को पास रखकर पढ़ाया था। फिर आखिरी उम्र में जब वह जिला हजारीबाग चले गए, कुछ एकड़ जमीन खरीदकर एक बगीचा लगाने का उन्हें चाव था, उस लड़के को साथ ले गए थे। सब कुछ उस बगीचे के नक्शों की लकीरों में रह गया और मियादी बुखार से उनकी जिंदगी खत्म हो गयी। उनकी खरीदी हुई जमीन के बारे में कुछ समय तक पत्र आते रहे, फिर लम्बी खामोशी छा गयी। सोच भी नहीं सकती थी—पर पता लगा कि उस लड़के ने गैर कानूनी तौर से वह जमीन बेच दी थी और सारी रकम जेब में डालकर चुप्पी साध ली थी। उसके बारे में और इसके बारे में सिर्फ एक ही फिकरा बचा रह गया—यह सोच भी नहीं सकती थी, यह सोच भी नहीं सकती थी।

यह १९५९ का वही पल है जब मैंने उस लड़की को अंतिम बार देखा था, और आकाश से एक तारा टूटते हुए देखा था, वह विश्वास का तारा था।

१९६०

यह बरस मेरी जिंदगी का सबसे उदास बरस था, जिंदगी के कलेंडर में फटे हुए पृष्ठ की तरह। मन ने घर की दहलीज के बाहर पाँव रख लिया था, पर सामने कोई रास्ता नहीं था इसलिए घबराकर काँपने लगा।

साहिर को बम्बई फोन करने के लिए फोन के पास गयी थी कि अजीब संजोग हुआ था कि उस दिन के 'ब्लिट्ज' में तसवीर भी थी और खबर भी कि साहिर को जिंदगी की एक नयी मुहब्बत मिल गयी है। हाथ फोन के डायल से कुछ इंच दूर शून्य में खड़े रह गए।

उन्हीं दिनों मैंने अपने मन की दशा को आस्कर वाइल्ड के इन शब्दों में पहचाना था—मैंने मर जाने का विचार किया। ऐसे भीषण विचार में जब जरा कुछ कमी हुई तो मैंने जीने के लिए अपना मन पक्का कर लिया। पर सोचा, उदासी को मैं अपना एक शाही लिबास बना लूँगा, और हर समय पहने रहूँगी, जिस दहलीज के अंदर पाँव रखूँगी, वह घर वैराग्य का स्थान बन जायेगा। मेरे दोस्तों के पाँव मेरी उदासी के साथ-साथ चला करेंगे। लोगों ने मुझे सलाह दी कि यह सब कुछ जो दुखदायी है मैं भूल जाऊँ। मैं जानता हूँ इस तरह करना बिलकुल घातक है। इसका अर्थ है कि चाँद सूरज की सुंदरता सवेरे की पहली

किरनों का संगीत, गहरी रात की खामोशी, पत्ता में से छनती हुई मह की बूंदें, घास पर फिसलती हुई ओस, यह सब कुछ मेरे लिए कड़वा हो जाएगा अपने अनुभव से इनकारी होना ऐसा है जैसे अपनी जिंदगी के होठों में कोई हमेशा के लिए मुठ भर ले यह अपनी रूह से इनकारी होना है

इमरोज से दोस्ती थी पर अनेक प्रकार की दुविधाओं में से गुजरती हुई। जिंदगी की सब से उत्तम कविताएं मैंने इस वक्त लिखीं। उन दिनों का एक अजीब सपना मुझे एक एक अक्षर याद है—

गाड़ी में सफर कर रही थी। सामने की सीट पर एक बुजुर्ग चेहरा था, बड़ा नम-सा और चमकता हुआ।

लम्बे सफर में मैं किताबों के पन्ने पलटती रही, और फिर मेरी खामोश किताबों ने उस बुजुर्ग को बातों में लगा लिया। उसने मुझसे पूछा, 'तुमने कभी काला गुलाब देखा है ?'

'काला गुलाब ?—नहीं तो।'

'थोड़ी देर में यहां एक स्टेशन आएगा वहां से एक रास्ता एक छोटे-से गांव को जाता है। उस गांव में गुलाब के फूलों का एक बाग है, उस बाग में थोड़े-से लाल रंग के गुलाब हैं बाकी सारा बाग काले गुलाब के फूलों से भरा हुआ है।'

'सच ?'

'तुम्हें मैं विश्वास के काबिल जान पड़ता हूं या नहीं ?'

मैंने तो अविश्वास की कोई बात नहीं कही।

'तुम वह बाग देखना चाहोगी ?'

'मैं यही सोच रही थी—अगर मैं वह बाग देख सकूं'

उसकी एक कहानी भी है'

क्या ?'

अगर तुम उसे देखने चलो तो मैं वहां पर ही वह कहानी सुनाऊंगा।'

मैं चलूंगी।'

और फिर एक स्टेशन पर मैं और वह बुजुर्ग आदमी उतर गए। एक लम्बा कच्चा रास्ता पकड़ लिया। वहां कोई सवारी नहीं जाती थी—और फिर सचमुच हम एक बाग में पहुंच गए।

इतना बड़ा और चमकदार गुलाब मैंने जिंदगी में कभी नहीं देखा था। गुलाब की पत्तियों पर से आंख फिसल फिसल पड़ती थी। बहुत बड़ा बाग था—एक छोटे-से हिस्से में लाल रंग के गुलाब थे और एक छोटे हिस्से में सफेद दूधिया रंग के। बाकी सारा बाग, मीलों में फैला हुआ, काले गुलाबों से भरा हुआ था।

इसकी कहानी ?'

'कहते हैं एक औरत थी। उसने बड़े सच्चे मन से किसी से मुहब्बत की। एक बार उसके प्रेमी ने उसके बालों में लाल गुलाब का फूल अटका दिया। तब औरत ने मुहब्बत के बड़े प्यारे गीत लिखे।

वह मुहब्बत परवान नहीं चढ़ी। उस औरत ने अपनी जिंदगी समाज के गलत मूल्यों पर न्योछावर कर दी। एक असह्य पीड़ा उसके दिल में घर कर गयी और वह सारी उम्र अपने कलम को उस पीड़ा में डुबोकर गीत लिखती रही।

आत्म-वेदना एक वह दृष्टि प्रदान करती है, जिससे कोई परायी पीड़ा को देख सकता है। उसने अपनी पीड़ा में समूची मानवता की पीड़ा को मिला लिया और फिर ऐसे गीत लिखे जिनमें केवल उसकी नहीं, जगत की पीड़ा थी।

फिर ?'

जब वह औरत मर गयी, उसे इस धरती में दफना दिया गया। उसकी कब्र पर न जाने किस तरह गुलाब के तीन फूल उग आए। एक फूल लाल रंग का था, एक काले रंग का और एक सफेद रंग का।

अजीब बात है !'

और फिर वे फूल अपने आप ही बढ़ते गए। न किसी ने पानी दिया, न किसी ने देखभाल की। और धीरे धीरे वहां एक फूलों का बाग बन गया।

अब तुमने अपनी आंखों से देख लिया है एक हिस्से में लाल रंग के गुलाब हैं एक हिस्से में सफेद रंग के और बाकी सारे हिस्से में काले रंग के।'

लोग क्या कहते हैं ?

लोग कहते हैं उस औरत ने जो मुहब्बत के गीत लिखे वे लाल रंग के गुलाब बन गए हैं जो दर्द भरे गीत लिखे वे गुलाब काले रंग के हो गए हैं— और जो उसने मानव प्रेम के गीत लिखे वे सफेद गुलाब के फूल बन गए हैं।'

सिर से पैर तक मुझे एक कंपन आया, और मैंने उस बुजुर्ग से पूछा आपका नाम क्या है ?'

मेरा नाम ?—मेरा नाम समय।'

समय ! आप मेरी कहानी ही मुझे सुना रहे हैं ?'

समय की मुस्कराहट और मेरे अपने कंपन के कारण मेरी आंख खुल गयी।

और उन्हीं दिनों लिखा—

> दुर्घटना यह नहीं होती कि रात की कटोरी को कोई जिंदगी के शहद से भर न सके और वास्तविकता के होंठ कभी उस शहद को चख न सकें—
>
> दुर्घटना यह होती है जब रात की कटोरी पर से चंद्रमा की कलई उतर जाए और उस कटोरी में पड़ी हुई कल्पना कंसली हो जाए।

दु खान्त यह नहीं होता कि आपकी किस्मत से आपके साजन का नाम पता न पढा जाए और आपकी उम्र की चिट्ठी सदा चलती रहे।

दु खान्त यह होता है कि आप अपने प्रिय को अपनी उम्र की सारी चिट्ठी लिख लें और फिर आपके पास से आपके प्रिय का नाम पता खो जाए

दु खान्त यह नहीं होता कि जिन्दगी के लंबे डगर पर समाज के बंधन अपने काटे बिखेरते रहें, और आपके पैरों में से सारी उम्र लहू बहता रहे।

दु खान्त यह होता है कि आप लहू लुहान पैरों से एक उस जगह पर खडे हो जाए जिसके आगे कोई रास्ता आपको बुलावा न दे।

दु खान्त यह नहीं होता कि आप अपने इश्क के ठिठुरते शरीर के लिए सारी उम्र गीतों के परहन सीते रहे।

दु खान्त यह होता है कि इन पैरहनों को सीने के लिए आपके पास विचारों का धागा चुक जाए और आपकी कलम-सूई का छेद टूट जाए

उस वर्ष के अंत में मैं एक साइकेट्रिस्ट के इलाज में भी रही अपने आप को जानने के लिए और उसके कहने के अनुसार हर रोज के अपने विचारों और स्वप्नों को कागज पर लिखा करती थी। उन्हीं दिनों के अजीबो गरीब सपनों में से जो डाक्टर के पढ़ने के लिए लिखे थे, कुछ ये हैं—

१

किसी बहुत ऊंची इमारत के शिखर पर मैं अकेले खडे होकर अपने हाथ में लिये हुए कलम से बातें कर रही थी—'तुम मेरा साथ दोगे?—कितने समय मेरा साथ दोगे?

अचानक किसी ने कसकर मेरा हाथ पकड लिया।

'तुम छलावा हो, मेरा हाथ छोड दो।' मैंने कहा, और जोर से अपना हाथ छुडाकर उस इमारत की सीढिया उतरने लगी।

मैं बडी तेजी से उतर रही थी पर सीढिया खत्म होने में नहीं आती थी। मेरा सांस तेज होता जा रहा था, डर रही थी कि अभी पीछे से आकर वह छलावा मुझे पकड लेगा।

आखिर सीढिया खत्म हो गयीं पर नीचे उतरकर देखा, सब ओर बाग ही बाग थे और जमीन का चप्पा चप्पा लोगों से भरा हुआ था। ये बाग भी उसी इमारत का हिस्सा थे और वहां लोगों का मेला लगा हुआ था। किसी तरफ लोग

नाटक खेल रहे थे, और किसी तरफ कोई मच हो रहा था।

न जाने कहा से मेरी पुरानी साइकिल मुझे मिल गयी और मैं उस पर चढ़कर बाहर जाने का रास्ता खोजने लगी। बागों के किनारे किनारे साइकिल चलाते हुए मैं जिस तरफ भी जाती थी वहा आगे पत्थर की दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नहीं मिलता था। मैं फिर किसी और तरफ साइकिल मोड लेती थी, पर वहा भी अंत में एक दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नही मिलता था—इसी घबराहट में मेरी आंख खुल गयी।

२

सफेद संगमरमर का एक बुत मेरे सामने पड़ा हुआ था। मैं उसकी ओर देखती रही देखती रही और फिर मैंने उससे कहा— मैं तुम्हारा क्या करूंगी! न तुम बोलते हो और न सांस लेते हो। आज मैं तुम्हें तोड़ दूंगी—तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर दूंगी—तुमने मेरी सारी उम्र गंवा दी है—मेरा तसव्वुर तुम मेरे आदर्श' और जब मैंने उस बुत को जोर से पर फेंका, तो मैं अपने ही जोर के कारण जाग गयी।

३

मैंने देखा मेरे पास एक लड़की खड़ी हुई है। कोई बीस बरस की होगी। पतली लंबी, और उसका एक एक नक्श जैसे किसी ने बड़ी मेहनत से गढ़ा हो। पर उसका रंग काला और चमकदार—जैसे किसी ने काले पत्थर को तराश कर एक बुत बनाया हो।

यह कौन है?' मुझसे किसी ने पूछा।

'मेरी बेटी। मैंने उत्तर दिया।

पूछने वाला कौन था, यह मुझे नहीं मालूम पर उसने फिर चकित होकर पूछा मैंने तेरे दो बच्चे देखे है, वे बड़े सुन्दर हैं। सुन्दर तो यह भी है पर इसका रंग'

वे दाना छोटे है उनका रंग गोरा है। यह मेरी सबसे बड़ी बेटी है। तुम जानते हो पार्वती ने एक बार अपने शरीर के मैल का इकट्ठा करके एक पुत्र, गणेश बना लिया था—मैंने अपने मन के सारे रोष को बटोर कर यह बेटी बनायी है मेरी कला मेरी कृति'

४

मैं एक उजाड़ जगह से गुजर रही थी। मुझे किसी की शक्ल नजर नहीं आयी लेकिन एक आवाज सुनाई पड़ी। कोई गा रहा था— बुरा कीतोई साहिबा मेरा तरकश टंगयोई जड़।'[१]

---

१ साहिबां! तूने बुरा किया मेरा तरकश पेड़ पर टांग दिया।

'तुम कौन हो ?' मैंने उस उजाड में खड़े होकर चारों ओर देखकर कहा।

मैं बहादुर मिर्ज़ा हूं। साहिबा ने मेरे तीर छिपा दिए और मुझे लोगों के हाथों बे-आयी मौत मरवा दिया।'

मैंने फिर चारों ओर देखा, पर मुझे किसी की सूरत दिखाई नहीं दी। मैंने उत्तर दिया—'कभी-कभी कहानियां करवट बदल लेती हैं आज एक मिर्ज़ा ने मेरे तीर छिपा दिए हैं और मुझे एक बहादुर साहिबा को, बे-आयी मौत मरवा दिया है।'

५

बादल बड़े ज़ोर से गरजे। सारा आसमान कांप उठा। और फिर मेरे दाहिने हाथ पर बिजली गिर पड़ी।

मेरे सारे शरीर को एक सख्त ज़ोर का झटका लगा, और फिर मैंने सम्भलकर अपने हाथ को हिलाकर देखा। हाथ बिलकुल ठीक था, केवल एक जगह से थोड़ा लहू बह रहा था मानो एक खराश आ गयी हो।

दूसरी बार फिर बिजली कड़की और मेरे उसी हाथ पर गिर पड़ी। फिर एक सख्त झटका लगा और मैंने जब हाथ को हिलाकर देखा तो वह बिलकुल साबूत था केवल एक जगह ऐसा था मानो मामूली-सी रगड़ लग गयी हो।

तीसरी बार फिर आसमान दो टुकड़े हो गया और मेरे उसी हाथ पर बिजली गिर पड़ी। सख्त झटका लगा, पर उसके बाद जब मैंने हाथ को हिलाया हाथ हिलता अवश्य था, पर एक उंगली टेढ़ी हो गयी थी। मैंने अपने दूसरे हाथ से उस उंगली को दबाया, बार बार दबाया, तो वह सीधी हो गयी, अपनी जगह आ गयी—मैंने अपने हाथ में कलम पकड़कर देखा, मेरा हाथ बिलकुल ठीक था, मेरा कलम अभी भी लिख रहा था।

इस समय मेरे मन की हालत बादलेयर पर के मन-जैसी थी, जब उसने 'सुन्दरता की विरद' लिखी थी।

तुम ऊंचे आसमान से उतरी हो
या गहरे पाताल से निकली हो ?
तुम्हारी दृष्टि निरी शराब
दैत्यमय भी देवमय भी।

तुम्हारी आंखों में
सांझ भी भोर भी।
तुम्हारी सुगंध जैसे सांझ की आंधी

नाटक खेल रहे थे, और किसी तरफ कोई मंच हो रहा था।

न जाने कहां से मेरी पुरानी साइकिल मुझे मिल गयी और मैं उस पर चक्कर बाहर जाने का रास्ता खोजने लगी। बागों के किनारे किनारे साइकिल चलाते हुए मैं जिस तरफ भी जाती थी वहां आगे पत्थर की दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नहीं मिलता था। मैं फिर किसी और तरफ साइकिल मोड़ लेती थी पर वहां भी थोड़ी दूर में एक दीवार आ जाती थी और मुझे बाहर जाने का रास्ता नहीं मिलता था—इसी घबराहट में मेरी आंख खुल गयी।

२

सफेद संगमरमर का एक बुत मेरे सामने पड़ा हुआ था। मैं उसकी ओर देखती रही देखती रही, और फिर मैंने उससे कहा— मैं तुम्हारा क्या करूंगी! न तुम बोलते हो और न सांस लेते हो। आज मैं तुम्हें तोड़ दूंगी—तुम्हारे टुकड़े टुकड़े कर दूंगी—तुमने मेरी सारी उम्र गंवा दी है—मेरा तसव्वुर तुम मेरे आदर्श' और जब मैंने उस बुत को जोर से पटक फेंका तो मैं अपने ही जोर के कारण जाग गयी।

३

मैंने देखा मेरे पास एक लड़की खड़ी हुई है। कोई बीस बरस की होगी। पतली लंबी और उसका एक एक नक्श जैसे किसी ने बड़ी मेहनत से गढ़ा हो। पर उसका रंग काला और चमकदार—जैसे किसी ने काले पत्थर को तराश कर एक बुत बनाया हो।

यह कौन है?' मुझसे किसी ने पूछा।

मेरी बेटी। मैंने उत्तर दिया।

पूछने वाला कौन था, यह मुझे नहीं मालूम पर उसने फिर चकित होकर पूछा 'मैंने तेरे दो बच्चे देखे हैं वे बड़े सुंदर हैं। सुंदर तो यह भी है पर इसका रंग'

वे दोनों छोटे हैं उनका रंग गोरा है। यह मेरी सबसे बड़ी बेटी है। तुम जानते हो पार्वती ने एक बार अपने शरीर के मैल को इकट्ठा करके एक पुत्र, गणेश बना लिया था—मैंने अपने मन के सारे रोष को बटोर कर यह बेटी बनायी है मेरी कला मेरी कृति'

४

मैं एक उजाड़ जगह से गुजर रही थी। मुझे किसी की शक्ल नजर नहीं आयी, लेकिन एक आवाज सुनाई पड़ी। कोई गा रहा था— बुरा कीत्तोई साहिबा मेरा तरकश टंगयोई जड़।[1]

---

१ साहिबा! तूने बुरा किया मेरा तरकश पेड़ पर टांग दिया।

'तुम कौन हो ?' मैंने उस उजाड म खडे होकर चारो ओर देखकर कहा।

मैं बहादुर मिर्जा हू। साहिबा ने मेर तीर छिपा दिए और मुझे लोगा के हाथा बे-आयी मौत मरवा दिया।'

मैंने फिर चारो ओर देखा, पर मुझे किसी की सूरत दिखाई नहीं दी। मैंने उत्तर दिया—'कभी-कभी कहानिया करवट बदल लेती हैं, आज एक मिर्जा ने मेरे तीर छिपा दिए हैं, और मुझे, एक बहादुर साहिबा को बे-आयी मौत मरवा दिया है।'

५

बादल बडे जोर से गरजे। सारा आसमान काप उठा। और फिर मेरे दाहिने हाथ पर बिजली गिर पडी।

मेरे सारे शरीर को एक सख्त जोर का चटका लगा, और फिर मैंने सभल-कर अपने हाथ को हिलाकर देखा। हाथ बिलकुल ठीक था, केवल एक जगह से थोडा लहू बह रहा था, मानो एक खरोच आ गयी हो।

दूसरी बार फिर बिजली कडकी और मेरे उसी हाथ पर गिर पडी। फिर एक सख्त झटका लगा और मैंने जब हाथ को हिलाकर देखा तो वह बिलकुल साबुत था केवल एक जगह ऐसा था मानो मामूली-सी रगड लग गयी हो।

तीसरी बार फिर आसमान दो टुकडे हो गया और मेरे उसी हाथ पर बिजली गिर पडी। सख्त झटका लगा, पर उसके बाद जब मैंने हाथ को हिलाया हाथ हिलता अवश्य था, पर एक उगली टेढी हो गयी थी। मैंने अपन दूसरे हाथ से उस उगली को दबाया, बार बार दबाया तो वह सीधी हो गयी, अपनी जगह आ गयी—मैंने अपने हाथ म कलम पकडकर देखा, मरा हाथ बिलकुल ठीक था, मेरा कलम अभी भी लिख रहा था।

इस समय मेरे मन की हालत बॉदलेयर पर के मन जैसी थी, जब उसने सुन्दरता की विरद' लिखी थी।

तुम ऊचे आसमान से उतरी हो
या गहरे पाताल से निकली हो ?
तुम्हारी दृष्टि निरी शराब
दत्वमय भी देवमय भी।

तुम्हारी आखा म
साझ भी भोर भी।
तुम्हारी सुगध, जसे साझ की आंधी,

तुम्हारे होठ दारू की एक घूट
तुम्हारा मुख एक जाम

तुम किसी खोह खन्दक मे से उभरी हो
या तारो से उतरी हो ?
तुम एक हाथ स खुशी बीजती हो
दूसरे से तबाही
तुम्हारे गहनो की छटा कितनी भयानक !
तुम्हारा आलिगन
जैसे कोई कब्र म उतरना जाए

इसी वष के आरभ म २६ जनवरी के गणतत्र दिवस पर भारत सरकार की ओर से मैं नेपाल गयी थी पर मन की बडी उखडी हुई दशा थी, और वहा स जो पत्र इमरोज को लिखे थे वे यह थे—

।

कल नेपाल ने मेरे उस कलम का सत्कार किया जिससे मैंने तुम्हारे लिए मुहब्बत के गीत लिखे। इसलिए मुझे जितने फूल मिले मैंने सारे तुम्हारी याद पर चढा दिए।

हिजर दी इस रात विच कुझ रौशनी आवदी पई[1]—मेरी इस कविता म तुम्हारी याद की बत्ती जल रही थी। रात साढे ग्यारह बजे तक इस रोशनी का जिक्र होता रहा। पास कितनी ही नेपाली, हिन्दी और बगाली कविताए जल रही थी। एक फारसी का शेर था— रेगिस्तान म हम लोग धूप से चमकती हुई रेत को पानी समझकर दौडते है भुलावा खाते हैं तडपते हैं।

पर लोग कहते है रेत रेत है पानी नही बन सकती। और कुछ सयाने लोग उस रेत को पानी समझने की गलती नही करते। वे लोग सयाने होंगे पर मैं कहता हू जो लोग रेत को पानी समझने की गलती नही करते उनकी प्यास में जरूर कोई कसर होगी।'—सच मरे छलावे! मेरे सयानपन म कोई कसर हो सकती है पर मेरी प्यास म कोई कसर नहीं

२७ जनवरी १९६०

---

१ हिज्र की इस रात म कुछ रोशनी-सी आ रही

'राही ! तुम मुझे सध्या वला म क्या मिले ?
जिंदगी का सफर खत्म होन वाला है। तुम्ह मिलना था तो जिंदगी की दोपहर के समय मिलते, उस दोपहर का सेंक तो देख लेते'—
काठमाडू म किसी ने यह हिंदी कविता पढी थी। हर व्यक्ति की पीडा उसकी अपनी होती है, पर कई बार इन पीडाओ की आकृतिया मिल जाती हैं। यह मेरी प्रतीक्षा तुम्हार शहर की जालिम दीवारो से टकराकर सदा घायल होती रही है। पहल भी चौदह वष (राम-वनवास की अवधि) इसी तरह बीत गए और लगता है मेरी जिंदगी के बाकी वष भी अपनी उसी पक्ति म जा मिलेंगे
१ फरवरी, १९६०

१९६१

इस वष के आरम्भ म मेरी जो दशा थी उस उस समय इन शब्दो म लिखा था—
हिंदू धम के अनुसार जीवन के चार पडाव होत हैं चार वण, चार आश्रम। इनके सबध म मुझे बहुत जानकारी नही है, पर जीवन के सफर म मैंने अपनी मानसिक अवस्था के चार पडाव अवश्य देखे है, और इनके सबध म कुछ विस्तार से कह सकती हू—

पहला पडाव था अचेतनता, यह बात बुद्धि के समान थी, जिसे हर वस्तु एक अचभा लगती है। जिसे छोटी से छोटी वस्तु मे बडी-से बडी दिलचस्पी पदा हो जाती है और जो पल म बिलख उठती है और पल म हर्षित हो जाती है।

दूसरा पडाव था चेतनता। यह एक भरपूर अगो वाली उच्छृखल जवानी के समान थी जिसका रोष बडा प्रचड होता है, बडा रक्तिम जो जीवन के गलत मूल्यो से जब रूठ जाती है मनन म नही आती और जो एक सप के समान नफरत को मणि समझकर अपन मस्तिष्क म सभाले रखती है।

तीसरा पडाव था दिलेरी। वतमान का उधेडन वाली और भविष्य को सीन वाली दिलेरी। सपनो को ताश के पत्ता की भाति मिलाकर और बांटकर कोई खेल खेलने वाली दिलेरी जिसकी कोई

तुम्हारे होठ, दारू की एक घूट
तुम्हारा मुख एक जाम

तुम किसी खोह खन्दक म स उभरी हो
या तारा स उतरी हो ?
तुम एक हाथ स खुशी बीजती हो
दूसरे से तबाही
तुम्हारे गहनो की छटा कितनी भयानक !
तुम्हारा आलिगन
जसे कोई कब्र म उतरता जाए

इसी वष के आरभ मे २६ जनवरी के गणतत्र दिवस पर भारत सरकार की ओर से मैं नेपाल गयी थी, पर मन की बडी उखडी हुई दशा थी, और वहा से जो पत्र इमरोज को लिखे थे व यह थे—

!

कल नेपाल ने मर उस कलम का सत्कार किया जिससे मैंने तुम्हारे लिए मुहब्बत के गीत लिखे। इसलिए मुझे जितने फूल मिले मैंने सारे तुम्हारी याद पर चढा दिए।

हिजर दी इस रात विच कुछ रौशनी आवदी पई[1]—मेरी इस कविता म तुम्हारी याद की बत्ती जल रही थी। रात साढे ग्यारह बजे तक इस रोशनी का जिक्र होता रहा। पास कितनी ही नेपाली, हिन्दी और बगाली कविताए जल रही थी। एक फारसी का शेर था— रेगिस्तान म हम लोग धूप से चमकती हुई रेत को पानी समझकर दौडते हैं भुलावा खाते हैं तडपत हैं।

पर लोग कहते हैं रेत रेत है पानी नही बन सकती। और कुछ सयाने लोग उस रेत को पानी समझने की गलती नहा करते। वे लोग सयाने होगे पर मैं कहता हू जो लोग रेत को पानी समझने की गलती नही करते उनकी प्यास मे जरूर कोई कसर होगी।'—सच मेरे छलावे! मेरे सयानेपन म कोई कसर हो सकती है, पर मेरी प्यास म कोई कसर नही

२७ जनवरी १९६०

---

१ हिज्र की इस रात म कुछ राशनी-सी आ रही

राही ! तुम मुझे सध्या वेला मे क्या मिले ?
जिन्दगी का सफर खत्म होने वाला है। तुम्हे मिलना था तो जिन्दगी की दोपहर के समय मिलते, उस दोपहर का सेंक तो देख लेते — काठमाडू म किसी न यह हिन्दी कविता पढी थी। हर व्यक्ति की पीडा उसकी अपनी होती है, पर कई बार इन पीडाओ की आकृतिया मिल जाती हैं। यह मेरी प्रतीक्षा तुम्हारे शहर की जालिम दीवारो से टकराकर सदा घायल होती रही है। पहले भी चौदह वप (राम-वनवास की अवधि) इसी तरह बीत गए और लगता है मेरी जिन्दगी के बाकी वप भी अपनी उसी पक्ति म जा मिलेंगे
१ फरवरी, १९६०

१९६१

इस वप के आरम्भ म मेरी जो दशा थी उसे उस समय इन शब्दो म लिखा था—

हिन्दू धम के अनुसार जीवन के चार पडाव होते हैं चार वण, चार आश्रम। इनके सबध म मुझे बहुत जानकारी नही है, पर जीवन के सफर म मैंने अपनी मानसिक अवस्था के चार पडाव अवश्य देखे हैं और इनके सबध म कुछ विस्तार से कह सकती हू—

पहला पडाव था अचेतनता, यह बाल बुद्धि के समान थी जिसे हर वस्तु एक अचभा लगती है। जिसे छोटी से छोटी वस्तु म बडी से-बडी दिलचस्पी पदा हो जाती है और जो पल म बिलख उठती है और पल मे हर्षित हो जाती है।

दूसरा पडाव था चेतनता। यह एक भरपूर अगो वाली, उच्छृखल जवानी के समान थी, जिसका रोष बडा प्रचड होता है, बडा रक्तिम, जो जीवन के गलत मूल्यो से जब रूठ जाती है, मनने म नही आती और जो एक सप के समान नफरत को मणि समझकर अपने मस्तिष्क म सभाल रखती है।

तीसरा पडाव था दिलेरी। वतमान को उधेडने वाली और भविष्य को सीने वाली दिलेरी। सपनो को ताश के पत्तो की भाति मिलाकर और बाटकर कोई खेल खेलने वाली दिलेरी, जिसकी कोई

भी हार शाश्वत हार नहीं होती जिसके पत्ते फिर से मिलाए जा सकते हैं और जीत की आशा फिर बाधी जा सकती है।

और अब चौथा पडाव है अकेलापन।

तीन-चार वर्ष पूर्व जब वियतनाम के प्रेसिडेंट हो ची मिन्ह दिल्ली आये थे तो एक मुलाकात में उन्होंने मेरा माथा चूमकर कहा था— हम दोनों दुनिया के गलत मूल्यों से लड रहे हैं—मैं तलवार से तुम कलम से।' और हो ची मिन्ह के व्यक्तित्व का मुझ पर ऐसा प्रभाव पडा था कि उनके जाने के बाद मैंने एक कविता लिखी जो वियतनाम में २६ मई १९५८ के अखबार 'हान दान' में छपी थी, पर यह नहीं मालूम कि वह हो ची मिन्ह की नजर से गुजरी या नहीं।

फिर दिल्ली रेडियो के लिए जब विश्व के कुछ लोकगीत' अनुवाद करके एक धारावाहिक क्रम में प्रस्तुत किए तो उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करते समय वह पुस्तक 'आशमा' हो ची मिन्ह के शब्द दोहराते हुए उन्हें ही अर्पण कर दी थी। १ मार्च, १९६१ थी जब वियतनाम से मुझे हो ची मिन्ह का तार आया— I send you my friendliest admiration and kindest greetings — तो मन की दशा कुछ बदली। साथ ही एक अंग्रेजी फिल्म याद आयी जिसमें महारानी एलिजाबेथ जिस नवयुवक से मन ही मन प्यार करती है उसे जब समुद्री जहाज देकर एक काम सौंपती है तो दूर से दूरबीन लगाकर जाते हुए जहाज को देखकर परेशान हो जाती है। देखती है कि नौजवान की प्रेमिका भी जहाज पर उसके साथ है। वे दोनों डेक पर खडे हैं उस समय महारानी को परेशान देखकर उसका एक शुभचिन्तक कहता है मैडम ! लुक ए बिट हायर'—ऊपर, उस नवयुवक और उसकी प्रेमिका के सिरों से ऊपर, महारानी के राज्य का झंडा लहरा रहा था।

और मैं अपने आप से स्वयं ही कहती— अमृता ! लुक ए बिट हायर !' और मैं जिन्दगी की सारी हारों और परेशानियों से ऊपर देखने की कोशिश करने लगी—जहां मेरी कृति थी मेरी कविताएं मेरी कहानियां मेरे उपन्यास

उस वर्ष जिन्दगी ने भी मेरी मदद की, मेरी नजर ऊपर की। मार्च में ही मास्को की राइटर्स यूनियन की ओर से बुलावा मिला और उज़बेक कवयित्री जुल्फिया खानम का पत्र कि ताशकंद में मैं उसके घर उसकी मेहमान रहूं। यह सारा श्रेय अपने रूसी दोस्तों को देती हूं कि उन्होंने मेरे मन के बडे नाजुक समय में मुझे यह बुलावा देकर मुझे उदासी की गहरी यंत्रणा से निकाल लिया। मैं २३ अप्रैल को ताशकंद चली गयी। मेरी उस समय की १९६१ की डायरी में कई प्यारे पलों की यादें अंकित हैं—

जुल्फिया के दिल का जाम मुहब्बत से भरा हुआ है और दस्तरखान पर शीशे का प्याला अनार के रस से। दोनों लाल प्यालों में बारी बारी घूंट भरते

हुए मैं उजबेक पुस्तकों के पन्ने पलटती रही। मुझम और पुस्तक के बीच भाषा की दीवार है पर एक पुस्तक की जिल्द पर एक प्यारी लड़की की तसवीर है जिसकी आख म एक आसू लटका हुआ है। लगा, वह आसू भाषा की दीवार फाद कर मरे आचल म आ गिरा। मैंने कहा—'जुल्फिया! इन आसुआ और औरत की आखा का न जाने क्या रिश्ता है कोई मुल्क हो यह रिश्ता बना ही रहता है'

जुल्फिया ने कहा—'जब दो मन इस रिश्ते को समझ लेते हैं, तब—उस समय की बलिहारी—उनम भा एक अटूट रिश्ता हो जाता है। मुझे लगता है, अमता और जुल्फिया भी जसे एक औरत के दो नाम हैं और जुल्फिया न मेरे लिए उन्नीसवी शताब्दी की उजबेक कवयित्री नादिरा की कविताए पढी, और हम कितनी ही देर तक नादिरा और महजूना के काव्य म डूब रहे

आज समरकद मे एक कवि आरिफ ने 'लाला' के दो फूल लाकर हम दोनो को दिए। दोना का रग लाल, और एक-सी सुगध थी पर मैंने और जुल्फिया न आपस म वे फूल बदल लिय जसे मेरे देश म दो सहेलिया अपनी चुनरिया बदल लेती है

जुल्फिया कहने लगी—दो फूल पर एक खुशबू। दो देश, दो भाषाए दो दिल पर एक दोस्ती'

फिर कुछ पल बाद जुल्फिया न कहा पर इन फूला म दद का दाग नही है, हमारे दिलो म दद के दाग है'

मुझे नादिरा का शेर याद आया जिसम वह बुलबुल से कहती है कि अगर तेरे गले के गीत चुक गए हैं तो इस नादिरा के कलाम से फरियाद ले जा, और मैंने कहा, मैं लाला फूल से कहती हू कि अगर तुझे अपने दिल के लिए दद के दाग नही मिले तो मुझस या जुल्फिया से कुछ दाग उधार ले जा।

जुल्फिया को कुछ याद आ गया। कहने लगी हा लाला के ऐसे फूल भी होते हैं जिनकी छाती मे काले दाग होते हैं। चलो खेता म फूल ढूढें।'

फिर मैं और जुल्फिया खेतो की मेड मेड चलते हुए वे दागदार फूल ढूढते रहे

नवी जान, मेरा उजबेक दुभाषिया, साथ था। वह लाला का एक खास फूल खोज कर ले आया और मुझस कहने लगा 'इस फूल की छाती म हिज्र के काले दाग तो नही हैं पर रोशनी के सिल्की दाग जरूर है।

फूल की पखुडियो म छिपे हुए सचमुच सिल्की रग के निशान थ। मैंने उसका शुक्रिया अदा किया और जुल्फिया स कहा, ये दाग शायद इसलिए रोशन हैं क्योकि इनम यार के चिराग जल रहे हैं'

जुल्फिया मुसकराई कहने लगी, 'अमृता! क्या यह यादें हमारी अपनी ही

, करामात नही हैं ? नही तो ये मद '

और हम मर्दों की बात को बीच म ही छोडकर अपनी कविताओ, अपनी करामातो की बातें करते रहे

ताशकद मे आजकल हिंदुस्तान से उर्दू कवि अली सरदार जाफरी भी आए हुए हैं। आज अचानक मुलाकात हो गयी तो जुल्फिया ने उन्हे अपने घर दावत पर बुला लिया। दावत म एक टोस्ट पेश करते हुए जुल्फिया ने कहा, हमारे देश म छोटी लडकी को खान और बडी को खानम' कहते हैं सो अमता का नाम बनता है अमता खानम। अगर हम अमता लफ्ज का उजबेक भाषा म अनुवाद करें तो बनता है उलमस। सो मैं उलमस खानम के नाम पर टोस्ट पेश करती हूं।'

जवाब म अली सरदार जाफरी ने जुल्फ शब्द का अनुवाद हिन्दी म किया अलक और जुल्फिया के नाम का भारतीयकरण करके 'टोस्ट पेश किया अलका कुमारी के नाम '

टोस्ट पेश करने की मेरी बारी आयी तो मैंने एक कविता की दो पक्तिया पढी '

चिरा विछुनी कलम जिस तरहा घुटक कागज दे गल लग्गी
भेद इश्क दा खुलदा जावे
इक्क सतर पजाबी द विच इक्क सतर उजबक सुणी व
फेर काफिया मिलदा जाव '

उजबेकिस्तान की एक वादी का नाम खाबोद हसीना हुआ करता था, सांवली हुई सुन्दरी पर अब जब वह समाजवादी राज्य के बाद काम से ब्याही गयी है तो उसका नाम फरगाना वादी हो गया है। यहा रेशम की मिलें हैं। लोग कहते हैं—'एक वर्ष म यह वादी जितना रशम बुनती है अगर उसका एक सिरा धरती पर रखें तो दूसरा चांद तक पहुच जाएगा इन रेशम की मिलो की डायरेक्टर औरतें हैं उन्होंने अपनी मिलें दिखायीं मुझे रगीन रशम का एक कपडा सौगात दिया और मुझसे सदेशा मागा। कल पहुची मई है विश्व भर क

---

१ चिरकाल स विछुडी हुई कलम जिस तरह घसकर कागज क गल लगी है
और इश्क का राज खुलता जा रहा है
एक पक्ति पजाबी म है और एक पक्ति उजबक म
फिर भी काफिया मिलता जा रहा है।

मजदूरों का दिन—सो, दो पंक्तियों की एक कविता में संदेश दिया '

कुड़िये रेशम कत्तदीए ?
मई महीना पूरन आया, लख मुरादां तेरियां
कुड़िये सुपने उणदीए !
पल्ली दे विच रख ले लख दुआवां मेरियां '

एना खान ने दस्तरखान पर कोन्याक, शहद और अनार का रस रखकर मुझसे पूछा, 'बताओ मेरी महमान ! मैं तुम्हारे लिए क्या गाऊं ?'

मैंने कहा, 'एना ! अपने देश का वह गीत गाओ, जो कोन्याक जैसा तल्ख हो शहद जैसा मीठा और अनार के रस जैसा लाल '

वह हंसने लगी—'अच्छा, और भेड़ के भुने हुए मांस जैसा आशिकाना गीत !'

उसने और लाला खानम ने आज बहुत प्यारे गीत गाए। अन्त में लाला खानम ने यह भी गाया— यह हमारे भाग्य का नसीब, कि हमने तुझे ढूंढ लिया, आज तू हमारे देश की मेहमान '

इस दस्तरखान के लिए शुक्रिया अदा करते हुए मेरे दिल की तहें भी उनके प्यार से भीग गयीं। कहा कभी मैंने एक गीत लिखा था कि जिन्दगी मुझे अपने घर बुलाकर मेहमानवाजी करना भूल गयी, पर आज मैं अपना यह शिकवा वापस लेती हूं '

आज ताशकंद से स्तातिनावान आयी हूं। जुल्फिया साथ नहीं आ सकी, अकेली आयी हूं। हवाई अड्डे पर कितने ही ताजिक लेखक आए हुए हैं उनमें ताजिकिस्तान के सबसे बड़े कवि मिर्जा तुसनजादे भी हैं

उनसे मिली तो मैंने कहा, 'महान ताजिक शायर को मेरा सलाम ! आपके लिए लाए हुए एक और सलाम की मैं कासिद भी हूं वह सलाम जुल्फिया का है। हमारे उर्दू शायर फैज अहमद फ़ैज के शब्दों में शायर सलाम लिखता है तेरे हुस्न के नाम !'

तो मिर्जा तुसनजादे बहुत हंसे 'एक सलाम जुल्फिया का, दूसरा फैज के लफ्जों में, तीसरा ऐसे कासिद के हाथ, मेरा हाल क्या होगा ?'

शहर से बीस मील दूर पहाड़ के दामन में एक नदी के किनारे लेखक गृह बना

---

१ रेशम बुनने वाली दोशीजा !
मई का महीना तेरी लाखों मुरादें पूरी करने के लिए आया है।
सपने बुनने वाली सुन्दरी !
अपनी डलिया में मेरी लाखों दुआएं रख लो !

हुए हैं। इस नदी का नाम है 'वरज-आब' (नाचता हुआ पानी)। यहा आज ताजिक लेखको ने मुझे रात के खाने की दावत दी। अमन के, दोस्ती के, और कलमा की अमीरी के नाम जाम भरते हुए और 'टोस्ट' देते हुए—सबने बारी बारी बहुत प्यारी कविताए पढी। फिर अचानक नन्ही नन्ही बूदें बरसने लगी तो मिर्जा तुसनजादे ने कहा आज हमने मिटटी म दो देशो की दोस्ती का बीज बोया है सो आसमान पानी देने आया है '

एक कवि ने पूछा— आपके देश म, सुना है, एक आशिका का दरिया है, उसका नाम क्या है ?'

मैंने बताया, 'चिनाब' और कहा— आपके देश म वरज आब ! सो देख लीजिए हमारे दरियाओ का काफिया भी मिलता है '

अजरबजान की राजधानी बाकू म भी बडे अच्छे लोग मिले विशेषकर वहा की लेखिकाए निगार खानम और लगभग पचीस पुस्तको की लेखिका मिखारद खानम दिलबाजी और ईरानी कवयित्री मदीना गुलगुन। उन तीना म मैं चौथी एक सहेली की भाति हिल मिल गयी तो अपनी कविताए पढते हुए हमने दूर उज्बेकिस्तान मे बठी जुल्फिया को भी याद किया। उसकी एक कविता पढी, तो वहा के विख्यात कवि रसूल रजा ने जो टोस्ट पेश किया, वह अभी तक मेरी डायरी मे लिखा हुआ है—'यह तो पाच शायर औरतें मिल गयी हैं पाच पानियो की तरह और यहा अजरबजान की राजधानी बाकू मे पूरा पजाब बन गया। सो मैं पजाब की सलामती का जाम पीता हू

इसी महफिल म बारहवी शताब्दी की एक अजरी कवयित्री महसती गजवी का कलाम भी पढा गया, और तब मैंने इस महफिल को आठ शताब्दियो की महफिल कहकर कहा— कभी मैंने एक कविता लिखी थी मिल गयी थी इसम एक बूद तेरे इश्क की इसलिए मैंने उम्र की सारी कडवाहट पी ली पर आज इस महफिल म बठे हुए मुझे लग रहा है कि मेरी उम्र के प्याल म इतनी प्यार की बहुत-सी बूदें मिल गयी हैं और उम्र का प्याला मीठा हो गया है।

सफर की डायरी

नगाजन से लेकर वोडका तक यह सफरनामा है मेरी प्यास का। इस मन के सफर का जिक्र करते हुए कई देशो के सफर का जिक्र भी उसम शामिल है। पर इन सुदर स्मतियो का आरभ जिस दिन हुआ था वह दिन मेरे उदास दिनो की एक

भयानक स्मृति है, जसे भोर होने से पहले रात और काली हो जाती है। उन दिना मैं दिल्ली रडिया म नौकरी करती थी। एक शाम दफ्तर के कमरे म बठी हुई थी कि सज्जाद जहीर मिलने आए। कुछ देर दुविधा म चुप रह, फिर सकोच भरे शब्दा म कहन लग, 'भारतीय लेखका का एक डेलीगेशन सोवियत रूस जा रहा है। मैं चाहता हू आप भी इस डेलीगशन म हा। पर कल मीटिंग मे किसी भाषा के किसी लेखक न आपके नाम पर एतराज नही किया पर पजाबी लेखको ने सख्त एतराज किया है ' और उन्हाने और भी सकोच भरे शब्दो म बताया, वे कहत हैं अगर अमता डेलीगशन म होगी तो हमारी पत्निया हम डेलीगशन के साथ नहीं जान देंगी मैं अजीब मुश्किल म पड गया हू।'

इस घटना को मैंने बाद म दिल्ली की गलिया' उपन्यास म लिखा था। उसम सज्जाद जहीर का नाम राजनारायण लिखा था। और उस दिन जब सज्जाद जहीर ने अपनी यह मुश्किल बताकर कहा कि अगर मैं उनकी कमेटी के नाम एक चिटठी लिख दू कि मैं डेलीगशन मे जाना चाहती हू तो वह कमेटी की ऊपर के स्तर की मीटिंग म यह चिटठी रखकर मेरे जाने का फसला कर लेंगे और तब मैंने उन्हें जवाब दिया था— आपने यू ही आने की तकलीफ की। आपने यह कम सोच लिया कि मैं किसी डेलीगशन के साथ जाना चाहूगी। मैंने अपने मन म फसला किया हुआ है कि मैं जब भी किसी देश जाऊगी, अकेली जाऊगी। सोवियत रूस को अगर मेरी जरूरत होगी तो मुझे अकेली को बुलावा भेजेंगे, नहीं तो नहीं सही ।'

१९६० म मास्को की राइटस यूनियन की ओर स मुझे अकेली को बुलावा आया और अप्रल, १९६१ म मैं ताशकद, ताजिकिस्तान, मास्को और अजरबजान गयी।

फिर १९६६ म बलगारिया न मुझे अकेली का बुलावा दिया था, और मैं बलगारिया और मास्को गयी थी।

उसी वष के अत म जार्जिया क कवि शोता रुस्तावली का आठ सौ साला जश्न मनाया गया था, जिसके लिए मैं १९६६ म फिर मास्को जार्जिया और आर्मीनिया गयी थी—अकेली।

१९६७ म हमारी सरकार ने कल्चरल एक्सचेंज म मुझे यूगोस्लाविया, हगरी और रोमानिया भेजा था हर मुल्क म तीन-तीन हफ्ने के लिए। और वहा बलगारिया न अपन खच पर मुझे अपने देश बुला लिया था और वेस्ट जमनी न अपने खच पर अपन देश—और वापसी म तहरान न कुछ दिना का बुलावा द दिया था।

१९६९ म नेपाल म अपनी इडियन एम्बेसी क निमत्रण पर वहा गयी थी। और १९७२ म यूगोस्लाविया की विशष माग पर हमारी भारतीय सरकार न

कल्चरल एक्सचेंज के सिलसिले में मुझे फिर तीन देशों में तीन-तीन हफ्ते के लिए भेजा था—यूगोस्लाविया चेकोस्लोवाकिया और फ्रांस जहां से अपने खर्च पर मैं नार्वे और इटली भी गयी थी। वापसी पर ईजिप्ट ने काहिरा में एक हफ्ते का इनविटेशन दे दिया, सो लौटते समय वहां भी गयी।

और उसके बाद १९७३ में 'विश्व शांति कांग्रेस' के अवसर पर मास्को गयी थी।

मुझे डायरी लिखने की आदत नहीं है लेकिन मैं सफर में जरूर लिखती हूं। उन दिनों की कई यादें मेरे सामने मेरी डायरी के पन्नों में अंकित हैं

अजीब अकेलेपन का एहसास है। हवाई जहाज की खिड़की से बाहर देखते हुए लगता है जैसे किसी ने आसमान को फाड़कर उसके दो भाग कर दिए हों। प्रतीत होता है—फटे हुए आसमान का एक भाग मैंने नीचे बिछा लिया है दूसरा अपने ऊपर ओढ़ लिया है मास्को पहुंचने में अभी दो घंटे बाकी हैं। पर खयालों के अकेलेपन से चलकर कहीं पहुंचने में अभी मालूम नहीं कितना समय बाकी है

२४ मई १९९६

जहां तक दृष्टि जाती है धरती पर बादलों के खेत उगे हुए दिखाई देते हैं। किसी जगह कहीं-कहीं जैसे बादलों के बीज कम पड़े हों पर किसी जगह इतने घने हैं मानो बादलों की खेती बड़ी भरपूर हुई हो और इन खेतों पर से गुजरता हुआ हवाई जहाज बादलों की कटाई करता हुआ प्रतीत होता है। और ऐसा लगता है जैसे गेहूं के खेतों में घूमते हुए गेहूं का दाना मुंह में डालकर कभी आदम बहिश्त से निकाला गया था उसी तरह बादलों के खेतों में चलते हुए इन खेतों की सुगंध पीकर आज आदम धरती से निकाला गया है

सोफिया के हवाई अड्डे पर बिलकुल अजनबी-सी खड़ी हूं। अचानक किसी ने लाल फूलों का एक गुच्छा हाथ में पकड़ा दिया है और साथ ही पूछा है—आप अमृता ? और मैं लाल फूलों की उंगली पकड़ अजनबी चेहरों के शहर में चल दी हूं

२५ मई १९९६

अभी बल्गारिया के राष्ट्रीय नेता गेओर्गी दिमीत्रोफ को देखा है जिसको इन लोगों ने अपनी रूह में बसा लिया है और जिसका शरीर विज्ञान की सहायता से संभाल लिया गया है उसे १९३३ में हिटलर ने कैद कर लिया था। उस समय लेनिन ने ही उसे बचाने की कोशिश की थी। फांसी के रोमां रोलां ने उसके लिए कलमी संघर्ष आरम्भ किया था और उसने स्वतन्त्र होकर फिर १९४४ में बल्गारिया को फासिस्ट शासन से स्वतन्त्र करवा लिया था। आज लोग मुझसे

कह रहे हैं—'यह हमारा दिमीत्रोफ आपके गांधी जैसा है, आपके नेहरू '

२४, मई १९६६

अपने देश को जर्मन जुए से स्वतन्त्र कराने वाले बल्गारियन सिपाहियों के बुत देख रही हूं। तीन किलोमीटर लम्बे और इतने ही चौड़े घेरे में बना हुआ बुतों का यह बाग स्वतन्त्रता का बाग कहलाता है ये बुत गुलाम जिन्दगी की पीड़ाओं की और स्वतन्त्र जिन्दगी के इश्क की मुंह बोलती तसवीरें हैं

२६ मई, १९६६

आज दोपहर विदेश से सांस्कृतिक सबंधों के विभाग के वाइस प्रेसिडेंट प्रोफेसर स्टेफान स्टटशेव से बहुत दिलचस्प मुलाकात हुई। बड़े गम्भीर व्यक्ति हैं इसलिए प्रेस के सेंसर के बारे में मैं बातें कर सकी। कहा यह ठीक है कि लिखने-बोलने की स्वतन्त्रता में जब तक लिखने बोलने वाले को उत्तरदायित्व की पहचान नहीं होती, तब बहुत कुछ गलत भी अस्तित्व में आ जाता है। पर इसके दूसरे पक्ष के बारे में सोच रही हूं कि अगर लिखित उत्तरदायित्व पूर्ण हो, पर भिन्न विचारों और भिन्न दृष्टिकोण के कारण भिन्न प्रकार की हो, तो उसका क्या होगा ?'

उनका उत्तर भी सम्भला हुआ है— हमारी संस्था दृष्टि को विशाल रखती है नये प्रयोगों को परवान करती है पर हो सकता है कि इसकी परिधि कुछ अच्छी कृतियों के लिए हानिकारक भी हो पर बीमार साहित्य के अस्तित्व में आने की अपेक्षा यह कम हानिकारक है '

मानती हूं समय ठहर नहीं सकता, प्रश्न भी ठहर नहीं सकता। यह समाजवादी अवस्था में भी रास्ता खोजेगा। आज की बातचीत का वातावरण खुशगवार है मिस्टर स्टटशेव कह रहे हैं बुरे से श्रेष्ठ तक पहुंचे हैं श्रेष्ठतम तक भी पहुंचेंगे '

२७ मई १९६६

आज बल्गारियन लेखकों की महफिल में कविताएं पढ़ीं। अर्थों की तह में उतर जाने के लिए भाषा की मजबूरी का बन्द दरवाजा कभी बल्गारियन कभी रूसी और कभी फ्रेंच शब्द से खोला जा रहा था। वहां यूगोस्लाविया से आए हुए मेहमान कवि ज्लात्को गोर्यान ने मेरी सबसे अधिक सहायता की। गोर्यान को फ्रेंच और जर्मन से अंग्रेजी में अनुवाद करने का बहुत अनुभव है इसलिए आज उन्होंने मुझ पर बहुत प्यारा-सा एहसान किया है—'मैं आपका सबसे अच्छा दोस्त हूं। आप यूगोस्लाविया के इस दोस्त को याद रखिएगा। इसने आपकी कविताओं के अर्थ करने में बहुत मदद की है '

२९ मई १९६६

आज शाम बल्गारिया के महान लेखकों ईवान वाजोव, पीयो यावोरोव और

निकोला वापत्सारोव के ऐतिहासिक घरों को देखा। वापत्सारोव की कविताओं का पंजाबी अनुवाद मैंने कई वर्ष हुए किया था। वह मेरी अनुवाद की हुई पंजाबी पुस्तक भी उसके ऐतिहासिक घर में रखी हुई है। आज उसकी मेज़ को उसके कलम को उसकी चाय की केतली को हाथों से छुआ तो आखें भर भर आयीं। लगा कई वर्ष पहले जब मैंने उसकी कविताओं का अनुवाद किया था तब से उसकी कई पंक्तियां जो कानों में पड़ी थीं और शायद कानों में ही अटक कर रह गयी थीं वे आज कानों में सुलग उठी हैं—'कल यह ज़िन्दगी सयानी होगी' यह विश्वास मेरे मन में बैठा है और जो इस विश्वास को लग सकी वह गोली कहीं नहीं वह गोली कहीं नहीं' ये पंक्तियां उसने १९४२ में फासिस्टों के हाथों कत्ल होने से कुछ समय पहले लिखी थीं। लगा, उस विश्वास को जिस सृष्टि के आरम्भ से गोली नहीं लग सकी आज हाथ से छूकर देख रही हूं

२९ मई, १९९६

सोफ़िया से १६० किलोमीटर दूर बतक गांव में उस चर्च के सामने खड़ी हूं, जहां १८७६ में तुर्क शासन की दासता से मुक्त होने के लिए जूझते हुए गांव के दो हज़ार मर्द औरतें और बच्चे ने शरण लेकर अपनी रक्षा का यत्न किया था। वह कुआं देख रही हूं जो चर्च के गिर्द घेरा पड़ जाने के कारण चर्च में घिरे हुए प्यासे लोगों ने अपने नाखूनों से खोद-खोदकर पानी निकालने का प्रयत्न किया था। यह सब-के-सब १७ मई को दुश्मन के हाथों मारे गए दो हज़ार मनुष्यों की हड्डियां और खोपड़ियां शीशे के ढक्कनों के नीचे संभालकर रखी हुई दिखाई दे रही हैं। दीवारों में हमारे पंजाब के जलियांवाला बाग की दीवारों की भांति गोलियों के निशान पड़े हुए हैं

३१ मई, १९९६

आज प्लोवदिव कस्बे में वह प्रिंटिंग मशीन देखी जिस पर दासता के विरुद्ध साहित्य छापा करता था शासन की चोरी से। और वे बेड़ियां देखीं जिनमें मनुष्य बांधे जा सकते थे पर समय नहीं

कालाफ़र कस्बे से गुज़र रहे थे कि देखा मानो सारा कस्बा ही हाथों में फूल लिये एक स्थान पर इकट्ठा हो रहा हो। मालूम हुआ आज २ जून है। १८७६ में भी यही तारीख थी जब यहां का एक बहुत प्यारा कवि खरिस्तो बोतिफ़ कत्ल किया गया था। एक दिन वह कविता लिखते लिखते अपनी बीस दिन की बच्ची को चूमकर और हाथों में बन्दूक लेकर अपने देश की रक्षा के लिए विदा हो गया था। और जब कत्ल हुआ तब उसकी आयु सत्ताईस वर्ष पांच महीने थी। उसके साथी उसके साथ मिलकर लड़ते और उसकी कविताएं गाते गाते मारे गए मैंने आज रात को खरिस्तो बोतिफ़ की एक कविता का अनुवाद किया है

आज शाम को बहुत जोर की वर्षा हुई। बाहर नहीं जा सकी इसलिए होटल के कमरे में बैठकर वल्गारिया का एक प्रसिद्ध उपन्यास 'अंडर द याक' पढ़ती रही। हैरान हुई कि उपन्यास की मुख्य नायिका का नाम राधा है। कई जगह राधिका भी लिखा हुआ है। रात को खाने के समय अपने दुभाषिए से हंसी हंसी में कहती रही—'राधा वल्गारियन कैसे हो गयी? कृष्ण तो भारत का था—शायद कृष्ण से मिलने के लिए राधा वल्गारिया से ही गयी हो।'

१३ जून, १९६६

सवेरे एक अखबार के सम्पादक ने मेरी कविता का अनुवाद किया—

चांद-सूरज दो दवातें कलम ने डुबो लिया
हुक्मराना दोस्तो!
गोलियां बन्दूकें और ऐटम बनाने से पहले
यह खत पढ़ लीजिए
साहिबाना दोस्तो!
गोलियां बन्दूकें और ऐटम बनाने से पहले
यह खत पढ़ लीजिये
सितारों के अक्षर और किरनों की भाषा
अगर पढ़नी नहीं आती
किसी आशिक अदीब से पढ़वा लेवो
अपनी किसी महबूब से पढ़वा लेवो

आज दोपहर को जब विदेश से सांस्कृतिक सम्बंध के विभाग ने मुझे विदाई भोज दिया वहां कुछ कवि भी थे वल्गारिया की सबसे अधिक प्रसिद्ध कवयित्री एलिस्वेता बागरोआना भी, डोरा गाबे भी—और हमारी दोस्ती के जाम पेश किए गए। डोरा गाबे ने महिला कवि होने के नाते एक महिला प्रधानमंत्री का मान करते हुए इन्दिरा गांधी के नाम पर टोस्ट' पेश किया, और तब मैंने मारफत की पंक्तियां सुनाते हुए अमन के नाम पर कहा—यह रंगीन पंख हमारे देश के राष्ट्रीय पक्षी के हैं। हम सारी दुनिया में अमन चाहते हैं ताकि हमारा राष्ट्रीय पक्षी दुनिया के आंगन में नाच सके।'

१४ जून, १९६६

जैसे ही शाम पड़ती है मास्को यूनिवर्सिटी परी महल की तरह झिलमिलाने लगती है। उसके ठीक सामने खड़े होकर, और उस ऊंची जगह से नीचे बहते हुए मास्को दरिया की ओर देखें तो दरिया की बांहों में लिपटे हुए शहर की

जगमगाहट दिखाई देती है। एक सुन्दर वास्तविकता ! युद्ध के खूनी दरियाओ को तर कर, और भूख के मरुस्थला को चीरकर पायी हुई वास्तविकता।

२५ सितम्बर जार्जिया मे वहा के एक प्यारे कवि शोता रुस्तावली का आठ सौ साला जश्न मनाया जा रहा है। समय के अधिकारियो ने जब उसे देश निकाला दिया था, व क्या जानते थे कि समय के सागर मे मल-मल नहाकर, उसकी कहानी एक जल परी की तरह निकल आएगी

तब देश म उसका नाम लेना भी जुम बन गया था इसलिए लोगो ने उसकी रचनाओ को कठस्थ कर लिया। आज जार्जिया के उन दो व्यक्तियो को सम्मान किया गया है जिन्ह रुस्तावेली का समस्त काव्य मुह-जबानी याद है

तबलिसी की एक ऊची पहाडी पर एक जार्जियन औरत का बुत बना हुआ है जिसके एक हाथ म तलवार है और एक हाथ म अगूर के रस का प्याला— तलवार दुश्मनो के लिए और अगूर के रस का प्याला देश मित्रो की भेंट

आज मैंटेखी चच देखा जो छह शताब्दी तो चच रहा था पर अठारहवी शताब्दी मे आक्राताओ के हाथो बदीगह बन गया था। मक्सिम गोर्की न भी यहा कद काटी थी

तबलिसी से १६० किलोमीटर दूर वारजोभी वली की ओर जाते हुए रास्ते मे गोरी कस्बा भी आया। यहा स्टालिन का जन्म गह देखा।

विश्व के प्रत्येक देश से लेखक आए हुए हैं। वारजोभी की शाम लेखक मिलन के लिए रखी गयी है। प्रत्येक देश के लेखक ने आज से बेहतर जिन्दगी की आशा म कुछ शब्द कहे पर जब वियतनाम का कवि चे लिन विन उठा तो सब का मन भर आया। आज उसके शब्द थे— हमारी कविता लहू के दरिया पार कर रही है। आज यह केवल हथियारो की बात करती है ताकि कभी यह फूलो की बात कर सके। हमारे सिपाही जब रणक्षेत्र म जाते हैं लोग कविताए लिखकर उनकी जेबो म डाल देते हैं। हम उन जेबो की कुशल-कामना करते है जिनमे कविताए पडी हुई हैं। आज अगर हमने कविता को बचा लिया तो समझिए कि मनुष्य को बचा लिया

और अभी, मेरी आखें भर आयी हैं। वियतनाम के इस कवि ने मेरे पास आकर कहा है— आप हिन्दुस्तान से आयी हैं न ? आपका नाम अमता है ? मैं चकित हो गयी तो उसने बताया— वियतनाम स आते समय हमारे प्रसिद्ध कवि स्वन जियाओ ने मुझसे कहा था कि अगर कोई औरत हिन्दुस्तान स आयी हुई होगी तो उसका नाम अमता होगा उसे मेरी याद देना

मन म एक प्रार्थना उठ रही है—काश दुनिया की सारी सुन्दर कविताए मिल जाए और वियतनाम की रक्षा कर सकें

२७ सितम्बर १९६६

आज आर्मीनिया की राजधानी यिरेवान में उसकी पुरातन हस्तलिखित तिथियों का संग्रहालय देखा। ये लोग सदा विश्व के अनेक भागों में बिखरे रहे। यहां तमिल भाषा में लिखे उनके इतिहास के पन्ने भी सुरक्षित रखे हुए हैं जो कभी इन्होंने दक्षिण भारत में बसने के समय लिखे थे

आज तेरहवीं शताब्दी का एक गिरजाघर देख रही थी जो एक पहाड़ की शिखर की ओर से काट-तराशकर बनाया गया है। देखा—ऊंचे चबूतरे पर से एक छोटी सी सीढ़ी पत्थरों की एक गुफा में जाती है। गुफा पर कुछ मोह आ गया, झिझकते हुए किसी से पूछा—'मैं इसके अंदर जा सकती हूं?' वह स्थान जैसे मुझे अपनी ओर खींच रहा था पर स्वयं ही मैंने झिझककर कहा—शायद नहीं क्योंकि देखा—लोग उस चबूतरे को होठों से चूम रहे थे सो सोचा—शायद उस पर पैर रखकर आगे नहीं जाया जा सकता। पर मुझे उत्तर मिला—'उस गुफा में एक आला है वहां दीया जलाकर हमारे लेखक, आक्रमणकारियों की चोरी से समय का इतिहास लिखते थे। आप इस चबूतरे को पार करके, जितनी देर चाहें गुफा में बैठ सकती हैं'

तबलिसी में आर्मीनिया के एक लेखक ने मुझसे पूछा था—'आपको कभी किसी विशेष देश के लोगों से विशेष सांझेदारी लगती है?' तो मैंने उत्तर दिया था 'इस तरह मुझे किसी देश में कभी नहीं लगा, पर कई किताबों के कई पात्रों से लगने लगता है

आज यिरेवान के एक गिरजाघर की एक गुफा ने मेरे संग इस प्रकार अचानक मोह डाल लिया है तो सोच रही हूं कि केवल किताबों के पात्र ही नहीं, कोई थान-खुदर भी ऐसे होते हैं जो अजनबी देशों में कुछ अपने लगने लगते हैं

२ अक्तूबर, १९६६

मास्को से कोई दो सौ किलोमीटर का लम्बा रास्ता वक्षों में लिपटा हुआ है। सुना हुआ था कि रूस के जंगलों का पतझड़ दर्शनीय होता है। आज देख रही हूं—पेड़ों के पत्ते सोने के चौड़े पत्तों के समान झूलते हुए लगते हैं। कई पेड़ों के तने बिलकुल सफेद हैं मानो चांदी के पेड़ों पर सोने के पत्ते उगे हुए हों

यास्नाया पौलियाना में आज टॉल्स्टाय के घर में खड़ी थी उस कमरे में जहां उसने 'वार एण्ड पीस' उपन्यास लिखा था। उसके शयन कक्ष के पलंग के पास टॉल्स्टाय की एक सफेद कमीज टंगी हुई है। पलंग की पट्टी पर मैं एक हाथ रखे खड़ी थी कि दाहिने हाथ की खिड़की में से हल्की-सी हवा आयी और उस टंगी कमीज की बांह हिलकर मेरी बांह से छू गयी

एक पल के लिए जैसे समय की सूइयां पीछे लौट गयीं—१९६६ से १९१० पर आ गयीं और मैंने देखा—शरीर पर सफेद कमीज पहनकर वहां दीवार के

पास टालस्टाय खड़े हुए हैं

फिर लहू की हरकत ने शान्त होकर देखा, कमरे में कोई नहीं था, और बाएं हाथ की दीवार पर केवल एक सफेद कमीज टंगी हुई थी

८ अक्तूबर, १९६६

'पोएट्री इज ए कन्ट्री विदाउट बॉर्डर्स' कहते हुए यूगोस्लाविया वाले प्रति वर्ष अगस्त के अन्त में आखरिद झील से दसियों कोसों की दूरी पर मतरंगा शहर में दरिया दरिम के किनारे पर कविता का मेला लगाते हैं। पहले दिन केवल मसिडानियन भाषा की कविताएं पढ़ी जाती हैं और दूसरी रात सारी यूगोस्लाव भाषाओं और मेहमान भाषाओं के कवियों के लिए होती है। सब कवि दरिया के पुल पर खड़े होकर कविताएं पढ़ते हैं और सुनने वाले दरिया के दोनों किनारों पर बैठकर सुनते हैं बहुत से नावों में बैठकर भी। जलती हुई मशालों की और बिजली की रोशनी दरिया में झिलमिलाती है, तो यह रात किसी परी-कथा के समान हो जाती है। अपनी-अपनी भाषाओं में कविताएं पढ़ते हैं और उनके अनुवाद यहां के विख्यात अभिनेता पढ़ते हैं। जब किसी देश का कवि कविता-पाठ करता है तब उस देश का झंडा लहराया जाता है। आज यहां कविता पढ़ना मेरे जीवन का बहुत प्यारा अनुभव है यह सब तालियां हिन्दुस्तान के नाम पर हैं—कालिदास के देश के लिए टैगोर के देश के लिए, नेहरू के देश के लिए "

२६ अगस्त १९६७

कल आखरिद से स्कोपिया पहुंचने के लिए जिस कार का प्रबन्ध किया गया था उसमें इथियोपिया का एक कवि अबरा जबेरी भी था और इथियोपिया का प्रिंस महत्तेमा सेलासी भी। हम अधिकांश रास्ता मतरंगा में हुए कविता के मेले की बातें करते रहे पर एक जगह रुककर बीअर का एक एक गिलास पीते हुए इथियोपिया के प्रिंस का मन छलक उठा आप कवि लोग भाग्यशाली हैं वास्तविक संसार नहीं बसता तो कल्पना का संसार बसा लेते हैं मैं बीस बरस वायलिन बजाता रहा साज के तारों से मुझे इश्क है पर युद्ध के दिनों में मेरे दाहिने हाथ में गोली लग गयी थी अब मैं वायलिन नहीं बजा सकता संगीत मेरी छाती में जख्म बन गया है

इतिहास चुप है मैं भी कल से चुप हूं—संगीत के आशिक हाथों को गालियां क्या लगती हैं इसका उत्तर किसी के पास नहीं है इस प्रश्न के सामने केवल खामोशी की बन्द गली है

३० अगस्त, १९६७

बेलग्रेड से कोई सौ मील दूर क्रागुयेवाच शहर के पहलू में खड़े हुए दूर तक एक हरा निर्जन दिखाई देता है। इस निर्जन में दो सफ़ेद पंख दिखाई देते हैं कोई अठारह गज लम्बे और ज़मीन से लगभग दस गज ऊंचे। तब १९४१ था, अक्तूबर महीने की २१ तारीख। एक स्कूल में कोई तीन सौ बच्चे अपना पाठ पढ़ रहे थे कि जर्मन फ़ौजों ने स्कूल को घेर लिया और एक एक बच्चे को, मास्टरों के साथ, गोलियों से बींध दिया ये पत्थर के पंख उस उड़ान के स्मारक हैं जो उन तीन सौ बच्चों की छाती में भरी हुई थी

उस दिन पूरे शहर की आबादी क़त्ल हुई थी—सात हज़ार व्यक्ति। आज पत्थर के दो बुत, एक पुरुष का और एक स्त्री का, उन सात हज़ार क़ब्रों के स्मारक हैं।

यहां खड़े हुए आज जो कुछ एक जीवित मनुष्य की छाती में गुज़रता है वह या तो यह है कि उसकी जीवित छाती में से मांस का एक टुकड़ा निकलकर इन बुतों में समा गया है और या इन बुतों में से निकलकर पत्थर का एक टुकड़ा सदा के लिए उसकी छाती में उतर गया है

३१ अगस्त, १९६७

हंगरियन कवि विहार बेला ने मिलते ही कहा, 'कोई भी आक्रमणकारी जब धरती के किसी भाग पर पांव रखता है तो सबसे पहले वहां की पुस्तकों की अलमारियां कांपती हैं। पर जब कोई कवि किसी धरती के भाग पर पांव रखता है तो सबसे पहले पुस्तकों की अलमारियां और बड़ी हो जाती हैं'

'खुश आमदेद' के इन प्यारे शब्दों के बाद आज वह मशीन देखी जिस पर १५ मार्च १९४८ को सान्डोर पतोफी की लिखी हुई वह विद्रोहपूर्ण कविता छपी थी जो अब यहां का राष्ट्रीय गीत है।

आज याबाज कारोय से हुई भेंट भी बहुत स्मरणीय है। स्तालिन की मृत्यु तक इस कवि की कोई पुस्तक नहीं छप सकी थी। यह चार वर्ष साइबेरिया में युद्ध-बन्दी रहा। १९४८ में रिहाई के समय इसकी जेबें टटोली गयीं तो उनमें से कविताएं निकलीं, जिसके कारण उसे एक वर्ष के लिए फिर जेल में डाल दिया गया

आज बुदापेस्ट रेडियो में बोलने के लिए और हंगरियन लेखकों की सभा में पढ़ने के लिए मैंने अपनी कविताएं चुनीं। खुशी हुई कि मुझसे केवल समाजवादी कविता पढ़ने का आग्रह नहीं किया गया। वही कविताएं चुनी गयीं जो मैं चाहती थी। आज सान्डोर राकोश ने मेरी कविताएं अनुवाद की हैं

लेखक यूनियन के कार्यालय में वहां के यशस्वी कवि गाबोर गारादी से मिलते समय प्राग के उस कवि से अचानक भेंट हो गयी जो पिछले वर्ष जार्जिया में मिला

था, और उसने मेरी डायरी म लिखा था—'अगर कभी मैं अगले वप तुमसे पेरिस मे मिल सकू ' पर आज उसन पहली बार मेरी कविताए पढी तो खुशी स बाल उठा, 'खुदा का शुक्र है कि यह कविताए कविताए हैं। मुझे डर था कि आप केवल समाजवादी कविताए लिखती हागी ' और इस बात पर कवल मैं ही नहीं बल्कि मेरे पास बठे हुए हगेरियन कवि भी खिलखिलाकर हसते रहे

एक कवयित्री कह रही है पूरे दस वप हमे खामोशी की एक लम्बी गुफा म से गुजरना पडा। अब स्वीकृत मानो से हटकर लिखी हुई कविताओ का छपना सभव हो गया है '

आज बुदापस्ट से १२० किलोमीटर दक्षिण की ओर बालातोन झील का वह किनारा देखा जहा ६ नवम्बर १९२६ को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आकर एक वृक्ष का आरोपण किया था और एक कविता लिखी थी—

मैं जब इस धरती पर नही रहूगा
तब भी मेरा यह वृक्ष
आपके वस त को नव पल्लव देगा
और अपने रास्ते जाते सैलानियो से कहेगा
कि एक कवि न इस धरती से प्यार किया था

वृक्ष के निकट ही रवीन्द्रनाथ ठाकुर का बुत है और बुत के निकट एक सफद पत्थर पर व पक्तिया खुदी हुई हैं और तारीख पडी हुई है ८ नवम्बर १९२६।

वृक्ष की एक टहनी से एक पत्ता तोडकर देखती हू ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी डडी पर आज की तारीख पडी हुई है—८ सितम्बर १९६७।

जिस कवि के नाम पर अब हगरी का सबस बडा पुरस्कार है 'अतिला योजेफ प्राइज' उसकी कविताए अनूदित करते हुए मैं उस रेलवे लाइन पर गयी जहा उसने आज स तीस वप पहले आत्मघात किया था वह उस दौर म पदा हुआ जब व्यक्तिगत स्वतत्रता के गुनाह के लिए कोई क्षमा नही थी

अतिला की कविताए बहुत प्यारी हैं—एक ही समय म उनमे ओज भी है और कोमलता भी। उसके अतिम दिनो की एक कविता की दो पक्तिया हैं—

दूध के दाता स तूने चट्टानो को तोडना चाहा
मूख ! क्या सपने देखने के लिए कोई रात काफी नही थी

९ २२ सितम्बर १९६७

आज रोमानिया म वह गिरजाघर देखा जहा रूसी कवि पुश्किन को चाहने वाली ग्रीक युवती कालिप्सो की खोपडी रखी हुई है। रोमानिया का एक भाग ग्रीक लोगों स बसा हुआ था और जब १८३२ म यहा तुक अधिकारियो के विरुद्ध विद्रोह हुआ तब यह लडकी भी विद्रोहियो म थी और जब इन लोगो ने रूस के

एक ऐसा कानून था। उसके लिए [illegible] निराश होकर वापस लौट आयी। गिरजा में औरतों के रहने की मनाही थी, इसलिए वह एक पुरुष साधु के वेश में गिरजा के अन्दर रहने लगी। कहते हैं यह केवल उसकी मृत्यु के समय ज्ञात हुआ कि वह स्त्री थी। १८४० में उसने अपने जीवन को अपने हाथों समाप्त करने के समय एक पत्र लिखा, और तकिये के पास रख दिया।

गिरजाघर की गुफा में खड़ी हूं। कानों में एक खड़का-सा सुनाई देता है। न जाने बाहर पतझड़ी हवा से झूलते हुए वृक्षों के पत्तों का यह खड़का है या समय के आंचल में पड़ा हुआ कालिप्सो का पत्र हिल रहा है।

९ अक्तूबर, १९६७

आज मेहनत करने की अपनी आदत काम आयी। जिस देश में भी जाती हूं वहां की कम से कम दस श्रेष्ठ कविताएं और कुछ कहानियां अवश्य अनुवाद करती हूं इसलिए उन देशों के लेखकों के संबंध में मुझे कुछ जानकारी हो जाती है। कल रोमानिया से बल्गारिया पहुंची तो मालूम हुआ कि आजकल हमारी प्रधानमंत्री बल्गारिया आयी हुई हैं। आज उनकी ओर से देश के प्रेसिडेंट को चाय की दावत थी वहां इन्दिराजी ने अलग कमरे में बुलाकर जब मेरा प्रेसिडेंट से परिचय कराया तो बल्गारियन साहित्य के संबंध में मैं इतनी बातें कर सकी कि वह भी हैरान थे कि मुझे उनके देश की इतनी जानकारी कैसे है।

१५ अक्तूबर, १९६७

२१ अक्तूबर को यूगोस्लाविया के जिस शहर क्रागुयेवाच में जर्मन फौजों ने सात हजार व्यक्ति एक ही दिन में कत्ल किये थे उसके नागरिकों का बुलावा था कि अक्तूबर में मैं फिर वहां आऊं और उस दिन उस भयानक काण्ड के बारे में लिखी हुई दीसाका मकसीमोविच की कविता का पंजाबी अनुवाद पढ़ूं। पर दस देश घूमते हुए ढाई महीने हो गए हैं और इस निमंत्रण को किसी और रूप पर उठा कर मैं जर्मनी आ गयी हूं। विचित्र संयोग है कि आज वही तारीख है— २१ अक्तूबर। मन में एक बेचैनी-सी हुई कि जहां इतने व्यक्ति क़त्ल किए गए, मैं वहां जाने के बजाय वहां आ गयी हूं जहां की फौजों ने उन्हें क़त्ल किया था।

पर आज फ्रैंकफर्ट में यहां के प्रसिद्ध लेखक हाइनरिश बाउल को जर्मनी का गोएथे बैडनर पुरस्कार मिलना था और मुझे इस संस्था की ओर से निमन्त्रण था इसलिए एयरपोर्ट से सीधी वहां चली गयी। वहां हाइनरिश बाउल की जवाबी तक़रीर सुनी तो मन का कुछ चैन आया। उन्होंने कहा, 'यहां आप लोग मुझे

मानव भावनाओ का अनुसरण करने के लिए सम्मानित कर रहे हैं पर यह सम्मान स्वीकार करते हुए मुझे खुशी नही है—यहा से कुछ दूर वियतनाम पर बम गिर रहे हैं और मैं कुछ नही कर सकता हू '

फ्रैंकफर्ट मे गटे का घर देखा और स्टुटगार्ट म शिलर का यहा के एक दार्शनिक ने कहा था 'जिस भाषा के लोगो ने ससार म इतनी जन हत्या करवा दी है उस भाषा मे अब कोई कविता या कहानी नही लिखी जा सकती।' पर सोच रही हू यह धरती दार्शनिको की होती थी और आज भी जहा दु ख की यह अनुभूति है, यह चेतनता उस भाषा म कुछ भी रचा जा सकता है

२६ अक्तूबर, १९६७

आज म्यूनिख म हू—जहा हिटलर की ट्रायल हुई थी। शहर के बीस मील दूर एक कान्सेंट्रेशन कैम्प देखने गयी तो वहा एक जर्मन लडकी ने जिसकी आखें भर आयी थीं अचानक मेरी बाह पकडकर पूछा, आपका क्या खयाल है, हमारे लोगो ने यह जो कुछ किया था कभी हम इसका फल भुगतना पडेगा ? "

आज यह वही देश है जिसके इस शहर म बडे बडे पोस्टर लगे हुए देख रही हू जिन पर लिखा हुआ है—' जो भी व्यक्ति वियतनाम म अमरीका की वर्तमान नीति का समर्थक है उसकी हत्यारो म गणना है '

२८ अक्तूबर १९६७

आज दूसरी बार यूगोस्लाविया आना और सतरुगा म उसके विश्व कवि सम्मेलन म भाग लेना मेरे जीवन का एक और बहुत स्मरणीय दिन है।

बहुत सारे लेखको के इटरव्यू लिये गए हैं और मुझसे पूछे गए प्रश्नो म एक प्रश्न यह था कि मेरे अनुसार स्वतन्त्रता के क्या अर्थ हैं। उत्तर दिया वह व्यवस्था जो आम साधारण व्यक्तियो को भी जीवन का अर्थ दे पर जिसम किसी का व्यक्तित्व न खो जाए '

आज एक ऐतिहासिक गिरजाघर को काव्य मच बनाकर पाब्लो नरूदा की कविताओ की सध्या मनाई गयी

२५ ३० अगस्त १९७२

वापसी पर मसीडोनिया की राजधानी स्कोपिया म एक लोकगीत सुना, जिसम भारत से लौटे हुए सिकन्दर की उस कुर्सी का उल्लेख है जो चन्दन की लकडी की बनी हुई थी। स्पष्ट है यह गीत यहा ग्रीस से आया होगा। मेरे पास चन्दन की लकडी की कुछ पेंसिलें थी जो मैंने यहा के लेखको को सौगात के तौर पर दी तो वे पूछने लगे क्या आपके देश म भी सिकन्दर के बारे म लोकगीत

है ?' उत्तर दिया, 'हमारे देश में तो वह आकाश था। क्या वह, क्या तुक, क्या मुगल हमारे लोकगीतों में इनके बड़े उदास वर्णन मिलते हैं।'

यहां से याद आया कि समरकंद में मैंने भी ऐसी ही बात वहां के लोगों से पूछी थी कि आपका इज्जत बेग जब हमारे देश आया और उसने एक सुंदर कुम्हारन से प्रेम किया तो हमने उसके बारे में कई प्रकार के गीत लिखे। क्या आपके देश में भी उसके गीत हैं'—तो वहां की एक प्यारी-सी औरत ने जवाब दिया, 'हमारे देश में तो वह बस एक अमीर सौदागर का बेटा था, और कुछ नहीं। प्रेमी तो वह आपके देश जाकर बना, सो गीत आपको ही लिखने थे, हम कम लिखते।'

किन देशों के लोग किन देशों में जाकर गीतों का विषय बन जाते हैं और अपने व्यक्तित्व का कौन-सा भाग कहां छोड़ आते हैं—बड़ा मनोरंजक इतिहास है। मेरी कहानियों में भी पंजाबी के बाहर के अनेक पात्र हैं जो मिले और कहानियां लिखवा गए। जी करता है किसी दिन मैं इन कहानियों को इकट्ठा करके इनका एक संग्रह प्रकाशित करूं।

३१ अगस्त १९७२

आज मोंटीनीग्रो में पुश्किन का चित्र देखा। ज्ञात हुआ पुश्किन जब सोलह वर्ष का था, जिप्सियों की एक टोली में मिलकर यहां आया था। पर धरती के इस टुकड़े ने उसका मन ऐसा मोह लिया कि वह पांच वर्ष यहीं रहा। यह चित्र दिखाते हुए वहां के डायरेक्टर ने मुझसे पूछा 'पुश्किन यहां पांच वर्ष रहा था, अमृताजी! आप कितने समय रहेंगी?'—तो मैं हंस पड़ी, कहा सिर्फ बीस दिन। मेरा जिप्सी इंस्टिंक्ट सिर्फ बीस दिन के लिए है।

५ सितम्बर, १९७२

आज यूगोस्लाविया के सेरजेविना शहर ने मेरी कविताओं की शाम मनायी। थियेटर के हॉल के बाहर भी और अन्दर भी भारत का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा। कई भारतीय चित्रों से दीवारों को सजाया और भारतीय संगीत बजाकर यह शाम शुरू की। मेरी यूगोस्लाव दोस्त इलियाना थुरा ने लाल रेशम की साड़ी पहनी और स्टेज पर जाकर मेरा परिचय दिया। हर कविता मैं पहले अपनी भाषा में पढ़ती फिर वहां के फिल्म अभिनेता बारी-बारी उसका अनुवाद सर्ब और अलबानियन भाषाओं में पढ़ते।

यहां समारोह में एक अमरीकन कवि हेरल्ड कूनर भी मौजूद थे जिन्हें बहुत काम में सीधे निमन्त्रित नहीं कर सकते थे। पर सेरजेविना की एक प्रथा है कि मुख्य अतिथि निजी तौर पर किसी मेहमान को बुला सकता है। सो, मैंने स्टेज

पर खडे होकर हबट कूनर से कविता पढने के लिए निवेदन किया। समारोह के अन्त म दो छोटी भारतीय फिल्में दिखायी गयी—एक खजुराहो के बारे मे, और दूसरी भारतीय जीवन के कुछ पहलुओ के बारे म आन द मूव ।

इस सन्ध्या न आज मेरे मन को धरती के प्यारे लोगो के एहसास से भर दिया है

७ सितम्बर, १९७२

यू तो हर देश एक कविता के समान होता है जिसके कुछ अक्षर सुनहरी रग के हो जाते हैं और उसका मान बन जाते हैं कुछ अक्षर लाल सुख हो जाते है उनकी अपनी या पराया की बन्दूका स लहूलुहान होकर और कुछ अक्षर उसकी हरियाली की भाति सदा हरे रहते हैं जिसमे स उसके भविष्य के कोमल पत्ते निय उगते हैं और इस प्रकार हर देश एक अधूरी कविता के समान होता है। पर इटली की धरती का स्पश किया तो लगा कि जसे एक कविता के पूरे या अधूर होने की क्रिया को बहुत प्रत्यक्ष देख रही हू इस धरती के चप्पे चप्पे पर सगमरमर के बुत ऐसे प्रतीत होते हैं जसे इस धरती म ही बुत उगते हो। लगा कविता के जो अक्षर कागो मे पडे वे सगमरमर बन गए, और जो अक्षर धरती म बीज के समान पड गए वे माइकल एजेलो और अन्य कलाकारो के हाथ बनकर धरती म से उग आए। और इन दूध जसे सफेद अक्षरो के इतिहास के साथ-साथ रक्तरजित अक्षरो का इतिहास भी बहुत लम्बा है जब स्पार्टिक्स जसे हजारो गुलाम रोमन शासको के मनोरजन के लिए एक दूसरे की जान स खेलते थे

और इस कविता के अक्षर पीले भी है—भयभीत—पोप के वटीकन शहर की ऊची दीवारो से टकराते और गुच्छा सा होकर स्वय ही अपने अगो म सिमट जाते हैं। इटली की धरती होनी की धरती है—जहा अनेक अक्षर उसके हर जगल की भाति भविष्य की नवीन कोपलें भी बन गए हैं—और कई अक्षर सत्ता के लिए खो गए हैं—शायद पहली बार तब खोए थे जब डिवाइन कमिडी वाला डाटे देश निष्कासित हुआ था और उसके साथ वह भी निष्कासित हो गये थे

और इस कविता के अक्षर कुछ वे भी हैं जिन्हे कोई सलाखो नही पढ सकता—यह केवल लियोनार्दो दा विची की मोनालीजा की भाति मुसकराते हैं—रहस्यपूण मुसकान

१० १६ नवम्बर १९७२

काहिरा आना मेरे लिए एक विलक्षण अनुभव है। एक ऐसी रेखा पर खडी हू जिसके एक ओर काहिरा की हरियाली है और दूसरी ओर एकदम रेगिस्तान।

रेगिस्तान म बसने वाले वे पिरामिड हैं जिन्होंने पाच हजार वष क सूरज देखे हैं एक अरबी कहावत सामने खडी हुई दिखाइ देती है—'दुनिया समय से डरती है, समय पिरामिड से'

१७ नवम्बर, १९७२

पाच सौ वष की यात्रा

आज एक और पल मेरे सामने खडा मुसकरा रहा है—

१९६९ क शुरू के दिनो की एक रात थी, रात का दूसरा पहर। टलीफान की घटी बजी। मरे बेटे की ट्रकाल थी, बडौदा यूनिवर्सिटी के होस्टल से। मर चिन्ता भरे पत्रो क उत्तर म उसकी आवाज थी— मैं बिलकुल ठीक हू मामा।'

बहुत दिना बाद सुनी उसकी आवाज मेरे कानों से होकर मेरे रोम रोम म उतर गयी।

गर्मी हो या सर्दी, मैं बहुत स कपडे पहनकर नही सो सकती। सो रही थी जब यह फोन आया था। उसी तरह रजाई मे लिपटकर फान तक आयी थी— लगा, शरीर का मास पिघलकर रूह म मिल गया है और मैं प्योर-लिक्विड सोल बहा खडी हू।

अधेरे म जस बिजली चमक जाती है—खयाल आया मैं एक साधारण मा अपने साधारण बच्चे की आवाज सुनकर, अगर इस तरह एक हसीन पल जी सकती हू तो माता तृप्ता की कोख म जिस समय गुरु नानक जैसा बच्चा पल रहा था, माता तप्ता को कसा नसर्गिक अनुभव हुआ होगा?

यह वष गुरु नानक के पच शताब्दी उत्सव का वष था। मुझे एक प्रकाशक की ओर स एक लम्बा काव्य लिखने के लिए कहा गया था पर मैंने मना कर दिया था। लिखती, तो वह काव्य मेरे लहू के उबाल म स उठा हुआ न होता।

पर अब यह पल जैसे मेरा हाथ पकडकर मुझे पाच सौ वर्षों के अधेरे म से ले जाकर, उस मा के पास ले गया जिसकी कोख म गुरु नानक था।

सारा अधेरा एक मद्धिम-सी लौ म भीग गया। रोशनी स गीला यह पल और फिर न जाने कितने दिन और कितनी राता म उसकी महक बस गयी। इन्हीं दिना में मैंने एक ग्रीक कहावत का जिया था—आल वुड कैन बी मेड इन टू ए बोंग—और कविता लिखी—'गभवती। माता तृप्ता के गभ के नौ महीने जस उसके नौ सपने थ।

फिर पजाब के कुछ अखबारो ने बुरा भला कहा, और इस कविता को 'बन' कर देने के लिए पजाब सरकार से आग्रह किया। वह सब सुना। 'अजीत दनिक पत्र म किसी किरपाल सिह कसल के लेखा ने मुझे कामुक चीटी' कहकर यहा तक लिखा कि पवित्र गुरु नानक पर मुझे कविता लिखने का अधिकार नही था।

पजाबी साहित्य की बुजुग आवाजें चुप थी। उनकी जिम्मेदारी शायद चुप रहना ही थी।

पर मैं अकेली नही खडी थी यह हसीन पल मेरे साथ खडा था। हम दोना हैरान थे पर उदास नही।

देखा—गुरु नानक नाम को बहुत सारे हाथो ने लाठी की तरह पकडा हुआ था, और गुस्से से बाह फनायी हुई थी। वह लाठी मेरे चोट मार सकती थी पर इससे ज्यादा कुछ नही कर सकती थी। पर इस पल ने अपने हिस्से की लकडी का गढकर उसका क्रॉस बना लिया था।

और यह पल जिसे क्रास नसीब हुआ था आज मेरे सामने क्राइस्ट की तरह मुसकरा रहा है

एक दोस्ती की मौत

दोस्ती ने मरना सी सो मर गई
त दोस्ता [1]
हुण ऐमदी निंदिआ या उस्तत
तू करी जा ओ जीअ जींदा है !
हुण ऐस दा कफन
इक मली दरी दा होवे या जरी दा
की फरक पदा है !
मैं ऐम दी विधिआ सुणा ?
नही एह कियामत दा दिन नही
कि इस दी लाश कबर चा उठे

यह कविता १९७१ म मार्च के अतिम सप्ताह म लिखी थी। एक दोस्ती थी जो १९६६ म जन्मी थी विशुद्ध साहित्यिक मानो मूल्यो की जिसकी एक

१ दोस्ती को मरना था सो मर गयी
और दोस्त ?
अब इसकी निन्दा या अस्तुति ?
तू किये जा जो जी म आता है।

बठक म 'नागमणि'[1] की रूपरेखा बनी थी, यह जब हाट फेल जैस एक चटके स एक ही पल म १९७० के अत म मर गयी, तो इसकी मत्यु के चार महीन बाद यह कविता लिखी थी। यह कविता जसे उस कब्र पर पायी जान वाली मिट्टी का अतिम ढेला थी।

और फिर उस दोस्ती का जिक्र सदा के लिए खत्म हो गया।

पर आज सचमुच कयामत का दिन है दूसरी कब्रों के साथ उसकी कब्र भी खुल गयी है। जन्म और मत्यु एक यूनानी गीत के अनुसार एक ही मुख से कहे हुए दो शब्द होते हैं हैला, फेयरवैल ! सो, एक ही अस्तित्व के दो पल, एक जन्म का, एक मत्यु का, एक ही कब्र म दफन थे और आज दोना मरे सामने खडे हैं

कसी आश्चयजनक बात ये पल जब पहले देखे थे, तो जन्म का पल कितना हपयुक्त देखा था, और मत्यु का पल कितना उदास। पर आज जन्म का पल उदास है, और मत्यु का पल हपमग्न।

मैंने तुम्हें भ्रम म डाला था इसलिए उदास हू' एक पल जैसे कह रहा है और दूसरा पल भी सच की इस बेला म कह रहा है— मैंने तुम्हारा भ्रम उतार दिया इसलिए सुखद हू खुश हू।'

यह पजाबी के एक नय उभरते हुए, कवि की दोस्ती थी। सोचती हू हैरानी किसी न किसी रूप म बनी रहती है। मन की मिट्टी पर कभी पानी गिर जाए तो यह मिट्टी स उठन वाली गध के समान भी होती है, और जब सूखा पड जाए तो मिट्टी स उडन वाली धल के समान भी होती है।

तब तक जब तक मनुष्य पत्थर न हो जाए। मैं पत्थर नही हुई क्योकि अभी तक मुझ म हैरान होने वाली हालत बाकी है।

उसे—परदेस से स्कॉलरशिप दिलवाकर जब भेजा था तो जो मुख देखा था वह फिर चार बप बाद उसकी वापसी पर नजर नही आया। बहुत परिचित चेहर किस रास्त का पार करके बहुत अजनबी बन जाते हैं लगा था कि मैंने उनक चेहरे पर वह रास्ता देख लिया।

अब इसका कफन
एक मटी दरी का हो या जरी का
क्या फक पडता है !
मैं इसकी व्यथा सुनू ?
नहीं यह कयामत का दिन नही कि इसकी लाश कब्र से उठे

१ एक पजाबी मासिक पत्रिका जो मेरे सपादन म मई, १९६६ से प्रकाशित हो रही है।

मेरे अंतिम शब्द थे— दोस्त! मेरी ज़िंदगी में यह बहुत ही कठिन दिन है। यह उसी तरह है जैसे मेरा अपना बच्चा या इमरोज़ जैसा दोस्त परदेस से आया हो और थोड़े से पलों की खातिर मेरे सामने झूठ बोल रहा हो, और मैं हैरान की हैरान रह जाऊं 'हा एक शब्द था— ऐम्मी' मेरा नाम जिससे मुझे सिर्फ सज्जाद पुकारता था। जब तक उसके खत आते रहे यह नाम सीमाओं को चीर कर भी मेरे कानों तक पहुंचता रहा। पर हिंदुस्तान और पाकिस्तान के तनाव के समय जब खतों का सिलसिला नहीं रहा मेरे कान इस आवाज़ से वंचित हो गए।

इमरोज़ से कहा करती थी—वह मुझे इस नाम से पुकारा करे पर यह नाम कभी भी उसके मुंह पर नहीं चढ़ा। जब १९६७ में मैं ईस्ट यूरोप गई वहां वह हंगरी में भी मिला था रोमानिया में भी और फिर बलगारिया में भी। एक शाम बातें कर रहे थे सज्जाद का ज़िक्र आया और मेरे इस नाम का भी और उसने मुझ इस नाम से पुकारने का अधिकार मांग लिया। उसके बाद वह मुझे इसी नाम से पुकारता रहा था। पर जिस दिन वह अजनबी बना वह यह नाम भूल गया स्वाभाविक भी यही था।

सो उसके जाने के बाद धरती पर गिरा हुआ अपना यह नाम उठाकर मैंने मेज़ के उस खाने में रख दिया जहां सज्जाद के पुराने खत पड़े हुए हैं।

अब आज क़यामत के दिन यही शुक्र है कि इस दोस्ती के जन्म का पल अपने सच्चे रूप में उदास है और उसकी मृत्यु का पल उदास नहीं है।

सच के बीज

मार्च १९७२ में जब हिंदी समालोचक नामवरसिंह को साहित्य अकादेमी का अवार्ड मिला उन्होंने पांच मिनट के एक भाषण में कहा कि आलोचना का कृत्य मैंने इसलिए चुना कि घर में कुछ सजाने से पहले इसकी मिट्टी धूल झाड़ ली।

यह आलोचना की अच्छी व्याख्या है पर एकांगी है और मैं कितनी ही देर सोचती रही—इसका दूसरा पहलू जिसने पल पल देखा और भुगता है कोई उससे इसकी व्याख्या पूछे। अगर साहित्य एक घर है और इसकी मिट्टी धूल झाड़ना आलोचना तो क्या अपने अंदर की मिट्टी दूसरों की दहलीज़ में झोंकनेवाला रुचि या झाड़ पोंछ की आड़ में वस्तुओं की तोड़ फोड़ को भी आलोचना कहेंगे?

कुंवरनारायण विरले ज़िंदगी में बहुत कम मिला है केवल कुछ बार ही। साहित्यिक क्षेत्र की किसी समस्या पर उसने कभी गंभीरता से विचार नहीं किया

कम से कम मेरे सामने नहीं। पर कोई दो बरस बाद, जून १९७२ में एक बार वह नाम फिर समय आ गया।

पत्थर के कोयले का धुआं, यूं तो बरसों से चारों ओर के साहित्यिक वातावरण का हवा में था पर देश की आजादी के साथ जैसे जैसे चर्चा के अवसर बढ़े नामों का सुना-सुनाया जाने लगा, वैसे वैसे अवसरों को पाने की खींचतान में यह पत्थर के कोयलों का धुआं बहुत गाढ़ा होता गया। और फिर उसमें से कृतियों की लाल ज्वाला निकलने की जगह अदावतों की चिनगारियां उड़ने लगीं

कामों की किताबें भी जिनके अधिकार में थीं—बदली जाने लगीं, और अनेक पृष्ठ आत्म श्रद्धा से भरे जाने लगे, और पर निंदा से काले होने लगे

विक ने उदास मुंह से यही बात छेड़ी, पर दुनिया की किसी जबान में ऐसा नहीं होता यह सिर्फ पंजाबी में

सोच रही थी, जिस तरह माता पिता का चुनाव अपने हाथ में नहीं होता, उसी तरह बोली का भी। अगर यह कुछ किसी और जबान में नहीं होता और सिर्फ़ पंजाबी में होता है तो भुगतना पड़ेगा। कलम का कृत्य जिस दिन चुना था, उसी दिन यह सब कुछ भी चुना गया। न अब वापसी का और चुनाव हो सकता है न उससे जो कुछ लगा लिपटा है उसका

विक कह रहा था तुमने अच्छा लिखा या बुरा, किसी का क्या बिगाड़ा '

मैं सदा यही सोचती थी—मेरी कविताओं या मेरी कहानियों ने अगर किसी का कुछ संवारा नहीं न सही। मैंने इसके लिए किसी मान्यता की कभी चाह नहीं की। अगर आयु के बरस गंवाए हैं, तो अपनी आयु के, पर मेरे समकालीन इस तरह लाल पीले रहते हैं जैसे उनकी उम्रें खो गयी हों

विक मेरे मन की वही बातें दोहरा रहा था। मैंने अपना और उसका मन ठिकाने लगाने के लिए उसे अपना नया उपन्यास दिखाया— अक्क दा बूटा' (हिन्दी में आक के पत्ते')। बताया—इस उपन्यास में आक कड़वे सत्य का प्रतीक है। और बताया—उपन्यास की एक लड़की उमि का जब उसके सगे संबंधी कत्ल कर देते हैं कत्ल का खोज नहीं निकलता। उपन्यास का मुख्य पात्र लड़की का भाई पूछ पूछकर हार जाता है पर सबके चेहरों पर पीतापी के समान चुप छायी हुई है और दाना गांव—उसका मायका और ससुराल—इस तरह चुप हैं जैसे दोनों को मिरगी पड़ गयी हो, तब उपन्यास का मुख्य पात्र सोचता है—मिरगी के रोगियों को जो नसवार सुंघाते हैं वह आक के दूध से बनती है। मैं दाना गांवों को कड़वे सत्य की नसवार सुंघाऊंगा

विक हंसता है— तुमने आक के पौधे देखे होंगे तुम जानती हो यह कैसे उगते हैं ?

इतना जानती हूं इन्हें बीजता कोई नहीं पर ये उगते हैं

मेरे अंतिम शब्द थे— दोस्त! मेरी ज़िंदगी में यह बहुत ही कठिन दिन है। यह उसी तरह है जैसे मेरा अपना बच्चा या इमरोज़ जैसा दोस्त परदेस में आया हो, और थोड़े से पैसों की खातिर मेरे सामने झूठ बोल रहा हो और मैं हैरान की हैरान रह जाऊं। हां, एक शब्द था— ऐम्मी। मेरा नाम जिसमें मुझे सिर्फ सज्जाद पुकारता था। जब तक उसके खत आते रहे यह नाम सीमाओं को चीर कर भी मेरे कानों तक पहुंचता रहा। पर हिंदुस्तान और पाकिस्तान के तनाव के समय जब खतों का सिलसिला नहीं रहा मेरे कान इस आवाज़ से वंचित हो गए।

इमरोज़ से कहा करती थी—वह मुझे इस नाम से पुकारा करे, पर यह नाम कभी भी उसके मुंह पर नहीं चढ़ा। जब १९६७ में मैं ईस्ट यूरोप गई वहां वह हंगरी में भी मिला था रोमानिया में भी और फिर बल्गारिया में भी। एक शाम बातें कर रहे थे, सज्जाद का ज़िक्र आया, और मेरे इस नाम का भी, और उसने मुझे इस नाम से पुकारने का अधिकार मांग लिया। उसके बाद वह मुझे इसी नाम से पुकारता रहा था। पर जिस दिन वह अजनबी बना वह यह नाम भूल गया स्वाभाविक भी यही था।

सो उसके जाने के बाद धरती पर गिरा हुआ अपना यह नाम उठाकर मैंने मेज़ के उस खाने में रख दिया जहां सज्जाद के पुराने खत पड़े हुए हैं।

अब आज कयामत के दिन यही शुक्र है कि इस दोस्ती के जन्म का पल अपने सच्चे रूप में उदास है और उसकी मृत्यु का पल उदास नहीं है।

सच के बीज

मार्च १९७२ में जब हिंदी समालोचक नामवरसिंह को साहित्य अकादेमी का अवार्ड मिला उन्होंने पांच मिनट के एक भाषण में कहा कि आलोचना का कृत्य मैंने इसलिए चुना कि घर में कुछ सजाने से पहले इसकी मिट्टी धूल झाड़ ले।

यह आलोचना की अच्छी व्याख्या है, पर एकांगी है और मैं कितनी ही देर सोचती रही—इसका दूसरा पहलू जिसने पल पल देखा और भुगता है, कोई उससे इसकी व्याख्या पूछे। अगर साहित्य एक घर है और इसकी मिट्टी धूल झाड़ना आलोचना तो क्या अपने अंदर की मिट्टी दूसरों की दहलीज़ों में झाड़नेवाली रुचि या झाड़ पोंछ की आड़ में वस्तुओं की तोड़ फोड़ को भी आलोचना कहेंगे?

कुलवंतसिंह विर्क ज़िंदगी में बहुत कम मिला है केवल कुछ बार ही। साहित्यिक क्षेत्र की किसी समस्या पर उसने कभी गंभीरता से विचार नहीं किया

कम से कम भर सामने नहीं। पर कोई दो बरस बाद जून १९७२ में एक बार वह शाम के समय आ गया।

पत्थर के कायला का घुआ यूं तो बरसों से चारों ओर के साहित्यिक वातावरण की हवा में था पर देश की आज़ादी के साथ जैसे जैसे चर्चा के अवसर बने, नामों का सुना-सुनाया जाने लगा, वैसे वैसे अवसरों को पाने की खींचतान में यह पत्थर के कायला का घुआ बहुत गाढा होता गया। और फिर उसमें से कृतियों की लाल ज्वाला निकलने की जगह अदावतों की चिनगारियां उडने लगीं

कामों की किताबें भी जिनके अधिकार में थीं—बदली जाने लगीं, और अनेक पृष्ठ आत्म श्रद्धा से भरे जाने लगे, और पर निंदा से काले होने लगे

विक ने उल्लास भरे से यही बात छेडी, 'पर दुनिया की किसी ज़बान में ऐसा नहीं होता यह सिर्फ पंजाबी में'

सोच रही थी, जिस तरह माता पिता का चुनाव अपने हाथ में नहीं होता, उसी तरह बोली का भी। अगर यह कुछ किसी और ज़बान में नहीं होता और सिर्फ पंजाबी में होता है तो भुगतना पडेगा। कलम का कृत्य जिस दिन चुना था, उसी दिन यह सब कुछ भी चुना गया। न अब बोली का और चुनाव हो सकता है न उससे जो कुछ लगा लिपटा है, उसका

विक कह रहा था 'तुमने अच्छा लिखा या बुरा किसी का क्या बिगाडा'

मैं सदा यही सोचती थी—मेरी कविताओं या मेरी कहानियों ने अगर किसी का कुछ सवारा नहीं न सही। मैंने इसके लिए किसी मान्यता की कभी चाह नहीं की। अगर आयु के बरस गवाए हैं तो अपनी आयु के, पर मेरे समकालीन इस तरह लाल पीले रहते हैं जैसे उनकी उम्रें खो गयी हों

विक मेरे मन की वही बातें दोहरा रहा था। मैंने अपना और उसका मन टिकाने लगाने के लिए उसे अपना नया उपन्यास दिखाया— अक्क दा बूटा' (हिन्दी में आक के पत्ते)। बताया—इस उपन्यास में आक कडवे सत्य का प्रतीक है। और बताया—उपन्यास की एक लडकी उर्मि का जब उसके सगे सबंधी कत्ल कर देते हैं कत्ल का खोज नहीं निकलता। उपन्यास का मुख्य पात्र, लडकी का भाई, पूछ पूछकर हार जाता है पर सबके चेहरों पर पीलापी के समान चुप छायी हुई है, और दोनों गांव—उसका मायका और ससुराल—इस तरह चुप हैं जैसे दोनों को मिरगी पड गयी हो, तब उपन्यास का मुख्य पात्र सोचता है—मिरगी के रोगियों को जो नसवार सुंघाते हैं वह आक के दूध से बनती है। मैं दोनों गांवों को कडवे सत्य की नसवार सुंघाऊंगा

विक हंसता है— तुमने आक के पौधे देखे होंगे, तुम जानती हो यह कैसे उगते हैं?

'इतना जानती हूं इन्हें बीजता कोई नहीं, पर ये उगते हैं'

आक के रुई के गाले से जब उडते है हर गाल म एक बीज छिपा होता है। हर बीज के जस पख लग जात हा वह उन पखा के सहारे उडता हुआ जहा जहा भी जाकर गिरता है वही उग जाता है

कहा— यह तुमन बहुत सु दर बात कही है विक ! सच का भी कोई नहा बीजता। इसे परमात्मा की ओर स पख लग जाते है। फिर यह जहा जहा उडकर जाता है वहा वहा उग पडता है। नही तो—धरती वाले इस धरती पर सच की खेती कभी भी न करत।

मन को एक सुकून सा आ गया। विक चला गया। दूसरे दिन सोवियत लिटरेचर का वह अक डाक म आया जो हिन्दू रूस साहित्य के बार म एक विशेष अक था उसम रूसी कवयित्री रिम्मा काजाकोवा का, रूसी भाषा म छपी मेरी कविताओ की पुस्तक के सबध म एक लेख था जिसकी अतिम पक्तिया थी— यह साहस का काम है कि कोई अपनी बहुमूल्य और पीडासिक्त अनुभूतिया औरा के साथ बटाए और इस तरह बहुता का हितचिन्तक मित्र और बन्धु बन जाए। दूर पजाब की इस स्त्री को मैं विश्वास दिलाती हू कि यहा क हजारो हाथ उमसे हाथ मिलाने के लिए आगे बढे हुए हैं।

मैंने रिम्मा को नही देखा है। चार बार मास्को गयी पर उसस भेंट नही हो सकी। पर आज मेरी उदासी म उसके हाथ मेर हाथो के निकट हैं

आक क बीज पख लगाकर उडते हुए न जाने दुनिया म कहा-कहा जा पहुचत हैं।

नगा—परियो के पख केवल लोककथाओ म दखे थे, पर दद के बीज जब पख लगाकर उडते हैं व मैंने धरती पर भी देख लिय

एक चुप

जिस प्रकार के कवि दरबार (सम्मेलन) होते है—जानती हू मेरी कविता उनकी रौनक नही है। इसलिए उनम कभी भी मरी दिलचस्पी नही रही। पर पटियाला वाला प्रोफसर प्रीतमसिहजी जिन दिना लुधियाना गवनमेट कालेज के प्रिसिपल लगे हुए थे उन्होने स्कूल बोड म एक सवाल उठाया था कि पाठयक्रमा की पुस्तका के सम्पादन जिनसे करवाए जात हैं व सदा नान-लेखक होत हैं और पुस्तको से कई अधिक लाभ लखको को मिलने क स्थान पर लाभ उनको मिलता है जो सपादन करत हैं। उस वप उनकी यह आवाज कुछ सुनी

गयी—चाहे संपादन के लिए जितनी राशि उन्होंने प्रस्तावित की थी उसकी आधी से भी कम स्वीकार की गयी (पाच हजार के स्थान पर दो हजार)—पर उस वर्ष कुछ लेखकों से पुस्तकों के संपादन करवाए गए। और मेरे दिल में उनकी इस बात के लिए जो कद्र थी, उसी के कारण—जब उन्होंने मुझे कालेज की जुबली के अवसर पर लुधियाना बुलाया तो मैं उन्हें इनकार नहीं कर सकी। गयी। लौटने की जल्दी थी इसलिए अगले दिन सवेरे के प्लेन से वापस आना था। प्रोफेसर प्रीतमसिंहजी एयरोड्राम तक छोड़ने आए थे। वहां जब जहाज आया तो मालूम हुआ कि यह जहाज सिर्फ सवारियों के लिए नहीं होता, यह वास्तव में लुधियाना की मिलों का माल ढोने के लिए होता है। सारा जहाज गाठों से भरा होता है सिर्फ गिनती की कुछ सवारियां ही उसमें बैठती हैं। प्रोफेसर प्रीतमसिंहजी हंस पड़े—'आज आपको गाठों के साथ सफर करना पड़ेगा। उस समय मैंने सहज स्वभाव उत्तर दिया था, 'सारी उम्र गाठों के साथ ही तो चलती रही हूं मनुष्यों के ही कहां!

किसी समय कितने सादे शब्दों में कितने बड़े सत्य पकड़ में आ जाते हैं—वे शब्द मुझे अनेक बार याद आते रहे हैं

१९७२ की उस सरकारी मीटिंग में भी—जो देश की पचीसवर्षीय स्वतंत्रता के उत्सव की तैयारी के सिलसिले में बुलाई गयी थी, दो घंटे की इस बहस के बाद कि मुशायरे और कवि दरबार किस ढंग से किए जाएं, मैंने केवल कुछ ही मिनट लिये थे और कहा था— कविताएं नाटक संगीत जो चाहे सोचिए पर कुछेक बुनियादी बातों को सामने रखकर। एक यह कि पचीस वर्षों में जो किया है और जो कर सकते थे इसका आत्म परीक्षण सामने रखिए—एक आइना सामने रखकर। दूसरी, साधारण लोगों के जीवन में व्यावहारिक परिवर्तन लाने वाली बातों को सामने रखकर। और तीसरी यह बात कह सकें कि हमारे राजनीतिक नेता अपने अंदर कोई ऐसा परिवर्तन ले आए कि जिससे उनके प्रति लोगों में विश्वास उत्पन्न हो।

कमरा कविता, साहित्यिकों से भरा हुआ था, पर एक चुप फैल गयी

चुप ही तो फैली हुई है। राजनीति से कुछ कहने से पहले यह सब कुछ अपने साहित्यिक क्षेत्र से कहने का हक बनता है—इसलिए पहले वही सामने आ जाते हैं।

याद आ रहा है—एक समकालीन की कहानियों की एक पुस्तक किसी कोर्स के लिए तैयार करनी थी। मुझे एक पोस्टकार्ड लिखा मेरी एक कहानी की अनुमति के लिए। उत्तर दिया—'अनुमति भेज दूंगी। केवल इतना बता दीजिए कि अगर यह पुस्तक कहीं कोर्स में लग गयी तो लेखकों को कुछ पैसे मिलेंगे?' तो उस पत्र का उत्तर यह था—कि समकालीनजी ने मेरी कहानी ही पुस्तक से

निकाल दी।

और याद आ रहा है कि एक बार एक यूनिवर्सिटी के लिए कुछ पुस्तकें पास हुई। बोर्ड द्वारा स्वीकार हुई तो मालूम हुआ कि एक पुस्तक के संपादक महोदय ने किसी कवि से भी उसकी रचना का उपयोग करने के लिए उसकी अनुमति नहीं ली। कुछेक ने शिकायत की पर प्रकाशक से थोड़ा सा पैसे लेकर चुप हो गये। मेरी शिकायत एक सिद्धान्त के लिए थी कि किसी की कोई भी रचना उपयोग करने से पहले शिष्टाचार की यह मांग है कि उससे अनुमति ली जाए। सो इस मांग के आधार पर बोर्ड से फिर पूछा गया कि अगर अमृता प्रीतम की कविताएं इस पुस्तक से निकाल दी जाएं तो कोई अन्तर पड़ेगा?—बोर्ड का निर्णय यह हुआ कि कोई अन्तर नहीं पड़ेगा।

सोचती हूं—ऐसे बोर्ड आज भी कुछ दोषपूर्ण हैं। यह दोष भी निकल जाएगा तो किसी दिन ऐसे बोर्ड यह निर्णय भी दे सकेंगे—'सब कवियों की कविताएं निकाल दो जी! कोई अन्तर नहीं पड़ता।

हमकर रेडियो ऑन करती हूं—अजीब संयोग है कोई अहमद नदीम कासमी की गजल गा रहा है— सुबह होते ही निकल आते हैं बाजार में लोग गठरियां सिर पर उठाए हुए इमानों की

काले बादलों के सुनहरी किनारे

काले बादलों को सुनहरी किनारियां भी लग जाती हैं—कभी हैरान आसमान के मुंह की ओर देखती रह जाती हूं।

एक दिन मन भर आया। एक अमरीकन उपन्यास का अनुवाद कर रही थी। कई शब्द ऐसे आए जो किसी डिक्शनरी में नहीं मिले। मेरी सहायता के लिए यू एस आई एस के हरबंससिंहजी ने मुझे एक डिक्शनरी भेजी, और इस सौगात के पहले पृष्ठ पर लिख भेजा— टू अमृता प्रीतम विद आल द गुड वर्डस फ्राम दिस डिक्शनरी।'

मेरे समकालीन सदा डिक्शनरी के बुरे से बुरे शब्द चुनकर मेरे लिए प्रयोग करते हैं पर सारे अच्छे शब्द चुनकर मुझे देने का किसी को खयाल आ गया यह कैसे हो गया

बुरे शब्दों की कानों को आदत डाल ली हो तो इस जैसी एक पंक्ति को देख कर भी कान चौंधिया जाते हैं

इसी तरह बंगाल देश के संघर्ष के समय एक दिन एक सिपाही का फोन आया

था— फ्रंट से एक दिन के लिए दिल्ली आया हू मिलना चाहता हू' शाम के समय वह मिलने आया तो हिंदुस्तान मे पनाह ले रही बगाली औरतो के सबध म बताते हुए कहने लगा—'बहुत सी बूढी औरतें हैं पर जवान भी हैं, उन्हे हम नावो म से उतारकर कैम्पो मे पहुचाते हैं। मुझे सिर्फ यही बात कहनी थी कि जिनसे आपके नाविल पढे हैं वह उन पराई औरतो के साथ आदर का सलूक करता है, उन पर बुरा हाथ नही डालता।' लगा आज तक जो कुछ लिखा था, ठिकाने पड गया है। भर उपन्यास आलोचको की मजो तक न पहुचे न सही। ये उनसे कही दूर, साधारण सिपाहियो के मन तक पहुच गए हैं

आज याद आ रहा है—सबसे पहली लडाई के समय, एक सिपाही ने जग पर जाते हुए अपनी कविताओ की हस्तलिखित लिपि मेरे नाम रजिस्ट्री करवाकर भेज दी थी कि 'अगर मैं जीता रहा तो वापस आकर ले लूगा। अगर मर गया तो ये कविताए कही छाप दीजियेगा।' मैंने जिसे कभी देखा नही था उसका कभी विश्वास जीत लिया था—आखें भर आयी थी

जून, १९७२ मे नेपाल के एक उपन्यासकार घूसवा सायमी नेपाल एम्बेसी के कल्चरल कौंसिलर के पद पर दिल्ली आए तो मिलने आए। बताने लगे— मेरी डायरी म एक जगह लिखा हुआ है—व्हैन आयी रीड अमृता प्रीतम माइ एन्टी इन्यिन फीलिंग्ज आर बैनिश्ड।[1]

कलम ने अज्ज तोडिया गीता दा काफिया, एह एक्क मेरा पहुचिया अज्ज वेहडे मुकाम ते।[2] वह भी एक मुकाम था १९६० का जब यह कविता लिखी थी, और फिर—यह भी एक मुकाम है दूर-पार बसने वाले लोगो के प्यार का— जहा पहुचकर हैरान भी हू और उन राहो की शुक्रगुजार भी जो आखिर मुझे इस मुकाम पर ले आए हैं

धूप के टुकडे

देश के विभाजन से पहले तक मेरे पास एक चीज थी जिसे मैं सभाल-सभालकर रखती थी। यह माहिर की नज्म 'ताजमहल' थी जो उसने फ्रेम कराकर

---

१ मैं जब अमृता प्रीतम की कोई रचना पढ़ता हू तब मेरी भारत विरोधी भावनाए खत्म हो जाती हैं।

२ कलम ने आज गीता का काफिया तोड दिया आज मेरा इश्क किस मुकाम पर पहुचा है

मुझ दी थी। पर दश क विभाजन के बाद जो मेरे पास धीरे धीरे जुडा है—आज अपनी अलमारी का अन्दर का खाना टटोलने लगी हू तो दबे हुए खजाने की भाति प्रतीत हो रहा है

एक पत्ता है जो मैं टाल्स्टाय की कब्र पर से लायी थी और एक कागज का गोल टुकडा है जिसके एक ओर छपा हुआ है— एशियन राइटस कान्फ्रेंस और दूसरी ओर हाथ से लिखा हुआ है साहिर लुधियानवी'। यह कान्फ्रेंस के समय का बज' है जो कान्फ्रेंस म सम्मिलित होने वाले प्रत्येक लेखक को मिला था। मैंने अपने नाम का बज अपने कोट पर लगाया हुआ था और साहिर न अपने नाम का अपने कोट पर। साहिर न अपना बज उतारकर मेर कोट पर लगा दिया और मेरा बज उतारकर अपने कोट पर लगा लिया—और आज वह कागज का टुकडा, टाल्स्टाय की कब्र से लाए हुए पत्ते के पास पडा हुआ मुझे ऐसे लग रहा है जसे यह भी मैंने एक पत्ते की तरह अपने हाथ से अपनी कब्र पर से तोडा हो

पास ही वियतनाम की बनी हुई एक एश-ट्रे है जो अजरबजान की राजधानी बाकू म वहा की कवयित्री मिखारद खानम ने मुझे दी थी यह कहकर कि जब तुम्हारे इलहाम का धुआ तुम्हारे सिगरेट के धुए से मिल जाए, तो मुझे याद करना

बरसो इस धुए म चेहरे उभरते रहे मिटते रहे। सिर्फ औरो के ही नहीं, अपना भी। अपनी आखो के सामने अपना चेहरा भी—पिघलता और कापता हुआ—वास्तव म तब ही देखा है जब कोई कविता लिखी है।

याद है—मेरे पिताजी के पास एक बहुत सुन्दर पीतल की डिबिया थी जिसमे रेशमी कतरन की तह म रखा हुआ एक बहुत ही पतला सा चमडे का टुकडा था जो उन्होंने उस घराने से मागकर लिया था जिसका दावा था कि उनके पास पूर्वजा से मिली हुई गुरु गोबिंद सिंहजी के परो की एक जूती थी जो अब चमडे का एक बडा सा टुकडा मात्र रह गयी थी। यह पतला सा छिलका उसी टुकडे म से उखडा हुआ एक टुकडा था। पिताजी जब भी अपनी मजे का वह खाना खाते थे जिसमे पीतल की वह डिबिया रखी हुई थी तो अदब से भर जाया करते थे।

मालूम नही—किसके लिए किस चीज का स्पश अदब बन जाता है

और कब और किस तरह ? यह नहीं जानती। केवल यह जानती हू कि हाथ ऊचा करके मैंने उस जगह को स्पश किया है जहा मानवीय सौ दय दिव्य बन जाता है।

कब्र की बात कर रही थी—हर उस पल की कब्र—जिसमे मानवीय सौन्दय का दिव्य बनते हुए देखने वाली अवस्था सम्मिलित है।

इस अवस्था को हुकारा देते हुए—इमरोज के पत्र पडे हुए हैं और कुछ पत्र सज्जाद के और चार पाच साहिर के। मेरे लिए मेरे दोनो बच्चो के पत्र भी इस

अवस्था का हिस्सा हैं।

और—इस कक्ष को सजाने वाले कई फूल परो हैं—कुछ पाठको के पत्र और कुछ दूर दराज के लेखको की दी हुई सौगातें—उजबेक कवयित्री तुल्किया की दी हुई रंगीन अतलस की कुछ कमीजें जार्जियन कवि इराकली आबाशीदजे के दिए हुए वाइन-जार, और शोता रुस्तावेली की चित्र खचित अगूठिया, बाकू के कवि रसूल रजा का दिया हुआ तसवीरी कालीन और गोर्की का काष्ठ चित्र बल्गारियन लेखिकाओ बागिरआना, डोरा गाबे, सतानका और कामेनोवा की सौगातें—इत्र मफलर, ब्रोच, नग जटित हार और एक बल्गारियन नाटक की निर्देशिका यूलिया को अपनी माता से विरसे म मिली हुई चादी की झालर का आधा टुकडा जो उसने यह कहकर दिया था—'आज मा का विरसा बाट लिया है, इसलिए अब हम बहनें हैं'—और बल्गारिया की बुत-तराश एन्तोनिया की भेजी हुई वह तसवीर जो मेरा बुत बनाकर और उसकी तसवीर खिचवाकर उसने मुझे सौगात के तौर पर भेजी थी

लग रहा है—धूप के कितने ही टुकडे मेरी अलमारी के अधेरे म पडे हुए हैं

यूगोस्लाविया की उपन्यासकार गरोज़दाना का भेजा हुआ सफेद रातो का सगीत रिकार्ड प्लेयर पर सुनती हू तो उसम वह जार्जियन सगीत भी मिश्रित हो जाता है जो इकराली की मुझ पर लिखी हुई कविता का सगीत बनाते हुए वहा के सगीतकार शालवा मशवेलिडज़ ने मेरे नाम अर्पित कर दिया था

जापान के एक लेखक मोरीमोटो का भेजा हुआ स्वेटर और चीन के एक लेखक की दी हुई चीनी पखी मेरी ग्रीष्म और शरद ऋतुओ को कुछ कहते प्रतीत होते हैं और टैगोर की पीतल की मूर्ति जो मास्को मे टैगोर दिवस पर मुझे मिली थी धीरे से मेरी एक किताब की ओर देखकर मुसकराती है जिसमे फैज ने एक दिन अपना एक शेर लिख दिया था—आ गयी फस्ले सुक चाक गरेबा वालो ! सिल गए हैं हाठ कोई जख्म सिले न सिले

हाठा पर भी कई धन्यवाद है—उन दूर पार के दोस्तो के लिए जिन्होंने अपना समय व्यय किया मन व्यय किया और मेरी कई कविताओ और कहानियो को अपनी-अपनी भाषा के तागा तक पहुचाया

आइगोर सैरब्रियाकोफ बहुत मेहरबान मित्र हैं, उन्होने कई किताबो मे से चुनकर एक पूरी किताब की कविताए रूसी मे उल्था की हैं। न्यूजीलैड के चार्ल्स ब्रश न अपनी हिन्दुस्तान-यात्रा के कई दिन मेरी कविताओ का अग्रजी अनुवाद करने म बिताए। यूगोस्लाविया की एलियाना चूरा ने कई कविताओ का सर्ब भ अनुवाद किया फिर अल्बेनियन म अनुवाद करवाकर पूरी किताब छपवाई और यगोस्लाविया म अनेक बार मेरी कविताओ की साहित्यिक सध्या मनायी।

गरोजदाता ने कई कहानियां 'पिंजर' उपन्यास का संक्षिप्त रूपान्तर और यात्रा उपन्यास सब में अनुवाद किया। मारीमोटा ने जापानी में कई कविताओं का अनुवाद किया। जाज क्रिफिथ ने सब में कविता की एक संध्या मनाते हुए मेरी कविताएं पढ़ीं। मिशीगन के कार्लो कपालो ने अपनी पत्रिका का एक पूरा अंक मेरी कविताओं और कहानियों को हवाले कर दिया। गुरुदत्त सिंह ने 'पिंजर' उपन्यास अनुवाद किया। महेन्द्र कुलश्रेष्ठ प्रीतीश नन्दी, सुरजा कोन्दी और मनमोहन सिंह ने कई कविताओं के अनुवाद किए और कृष्णा सोबती ने पूरे तीन उपन्यासों का अंग्रेजी में अनूदित किया।

ये सब धूप के टुकड़े मेरे आसमान पर हैं

मेरे अपने देश में भी दूसरी भाषाओं वालों ने मुझे बहुत प्यार और मान दिया है। उर्दू वालों ने मेरी लगभग पन्द्रह पुस्तकें उर्दू में छापी हैं तीन कन्नड़ भाषा वालों ने तो गुजराती वालों ने दो मलयालम वालों ने दो मराठी वालों ने और हिन्दी वालों ने तो सब-की-सब छापी हैं। बल्कि आधिक स्वतंत्रता मुझे हिन्दी भाषा से ही मिली है। चुनी हुई रचनाओं का एक बहुत बड़ा संग्रह मेरी अपनी भाषा में नहीं हिन्दी में है। हिन्दी में अनूदित कविताओं के संग्रह धूप का टुकड़ा के समय श्री मुमिलानन्दन पन्त ने शब्द पढ़कर सचमुच आँखें भर आयी थीं। उन्होंने लिखा था— अमृता प्रीतम की कविताओं में रमता हृदय में कसकती व्यथा का घाव लेकर प्रेम और सौन्दर्य की धूप छाँह वीथि में विचरने के समान है। इन कविताओं के अनुवाद से हिन्दी काव्य भाव धनी स्वच्छ-संस्कृत तथा शिल्प समृद्ध बनेगा। डॉ० भगवतशरण उपाध्याय ने भी एक संध्या लेख लिखा जिसे उन्होंने अपने ग्रंथ समीक्षा के संदर्भ में भी सम्मिलित किया। इसकी कुछ पंक्तियां थीं— संग्रह हाथ में आया। एक कविता पढ़ी फिर दूसरी फिर तीसरी और फिर तो उस मन पर अधिकार न रहा। आज पन्तजी और भगवत-शरणजी के ये कृपापूर्ण शब्द फिर एक बार पढ़कर अपने मन पर मेरा अधिकार नहीं रहा है। वह ऐसे विशाल हृदय साहित्यकारों के सामने नत हो गया है। १९६८ ६९ में मिशीगन स्टेट यूनिवर्सिटी की ओर से कार्लो कपोला ने जब अपनी पत्रिका का एक सम्पूर्ण अंक मेरी रचनाओं पर प्रकाशित किया था उसमें भी एक हिन्दी लेखक रेवतीसरन शर्मा ने मेरे उपन्यासों पर बहुत विस्तार-सहित एक लेख लिखा— दी सच फॉर फेमिनिन इन्टीग्रिटी।

कुछ बहुत प्यारे पत्र भी मेरे सामने एक फाइल में पड़े हुए हैं

प्रिंसिपल तजासिंह पंजाबी भाषा के प्रथम आलोचक थे, और अपने ढंग के अन्तिम भी। उनका एक पत्र है २३ मार्च १९५० का— अज्जीजी अमृता! अखबारों की बेढंगी चाल देखकर दिल न छोड़ना। आप अनन्त काल के लिए हैं। यदि कोई एक समय आपकी काव्य प्रसिद्धि को न भी संभाल सके तो कुछ परवाह

नहीं।'

बंगाल के प्रसिद्ध लेखक प्रबोधकुमार सान्याल १९६० में नेपाल में मिले थे। वहां पहली बार उन्होंने मेरी कविताएं सुनीं और मैंने उनका गंभीर व्यक्तित्व देखा। बाद में दिल्ली आकर उनका वह प्रसिद्ध उपन्यास पढ़ा—'महाप्रस्थान के पथ पर', जिस पर कभी फिल्म भी बनी थी और उन्होंने कलकत्ता पहुंचकर मेरा उपन्यास 'पिंजर' पढ़ा। एक दो पत्रों में इसका उल्लेख हुआ। कुछ वर्ष बाद वह दिल्ली आए तो उनके पास मेरा पता नहीं था कुछ अंदाज़-सा था कि कुतुबमीनार की ओर जाते हुए रास्ते में कई कालोनी हैं, और बस इतने से ही अंदाज़े को लेकर वह मेरा मकान ढूंढने लगे।

कई कॉलोनियों में घूमकर उन्होंने दोपहर के समय मेरा मकान ढूंढ ही लिया। गर्मियों की जलती हुई दोपहर थी—मैं उन्हें पसीना पसीने देखकर हैरान हुई तो वह हंसने लगे और बोले—'मैंने सोचा, आखिर तो तुम्हारा मकान दिल्ली में ही है। ज्यादा से ज्यादा हर मकान देखना पड़ेगा, पर मकान तो ढूंढ ही लूंगा' ऐसे स्नेह के आगे सम्मुख सिर झुक जाता है।

हनोई से वियतनाम के विख्यात कवि स्वान जिऊ (Xuan Dieu) का एक पत्र है २ फरवरी, १९५८ का—'वसन्त उत्सव (वियतनामी पारम्परिक चान्द्र नव वर्ष) आ रहा है और आपकी कविताओं का संग्रह आड़ू पुष्प के रंग की जिल्द में लिपटा हुआ, मुझे आभास दिला रहा है कि वसन्त मेरे पास पहले ही आ गया है। हमारे प्रेसिडेंट हो ची मिन्ह शीघ्र ही आपके महान् देश की यात्रा पर जाने वाले हैं। मैं समझता हूं आप उनके उन दोस्तों में हैं जो उनका हृदय से स्वागत करेंगे।

पूना से श्री दि० के० बेडेकर का पत्र है—मेरे नाम नहीं श्री प्रभाकर माचवे के नाम २१ जुलाई १९५३ का लिखा हुआ— ऊंचे शब्दों का मोह टालकर 'पिंजर' की कथा लिखना किसी भी कलाकार के संयम की परीक्षा थी। मूल आत्मा को ही सामने रखकर एक एक शब्द लिखने से यह अनायास संयम इस श्रेष्ठ कलाकृति में प्रतीत होता है। मैं तो अपने को धन्य समझता हूं कि ऐसा उपन्यास पढ़ने को मिला। मन में एक ही प्रबल इच्छा है— पिंजर की कथा मराठी वाचकों को पढ़ने को मिले। मेरे मित्र श्री जोशी अच्छे कथा-लेखक हैं वह 'पिंजर' का अनुवाद करेंगे और मूल कथा का हृदय जागता रहेगा।'

प्रभाकर माचवे सदा ही बड़े कृपालु मित्र रहे हैं। उनकी अनेक खामोश और पुरज़ोर मेहरबानियां याद आ रही हैं।

जनेन्द्रकुमार हिंदी के प्रथम लेखक थे—मैंने उन्हें देखा नहीं था—जब उन्होंने मेरा एक उपन्यास पढ़कर किसी को पत्र लिखा और उसकी प्रशंसा की और उसने वह पत्र मुझे भेज दिया। वह पत्र आज मुझे मिल नहीं रहा है पर जनेन्द्रजी तो सदा ही बड़े अच्छे मित्र रहे हैं।

चार्ल्स वैश यूजीलैंड के प्रसिद्ध कवि थे, 'लैंडफॉल' के सम्पादक। उनका ६ मार्च १९६४ का लिखा हुआ पत्र मेरे सामने है— 'मैंने 'द स्केलटन ('पिंजर' का अंग्रेजी अनुवाद) पढ़ा है और मैं आपको बताना चाहता हूं कि मैंने इसे कितना मर्म द्रावक पाया। आपने कथा का सहृदयता मितव्ययिता तथा संयम से निर्वाह किया है। आप इस पर सहज गर्व कर सकती हैं।"

साथ ही स्मरण हो आ रहा है कि इसी उपन्यास पिंजर के विरुद्ध मेरे एक समकालीन लेखक ने बड़ा कष्ट उठाकर अनेक पत्र अखबारवालों और रेडियो वालों को भेजे थे, और साथ ही यह मांग की थी कि मेरे गीत रेडियो से प्रसारित न किए जाएं।

फाइल में रखे हुए अनेक प्यारे खत फिर से पढ़ते समय, और जो अपनी भाषा में मेरे साथ होता है उसे स्मरण करते हुए कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे एक ही समय में मैं एक बहुत ठंडी और बहुत गर्म नदी में नहा रही हूं

अग्नि-स्नान

Create an idealized image of yourself and try to resemble it — ये शब्द काजानजाकिस ने अपनी पहली मुलाकात में अपनी प्रेमिका से कहे थे। मुझसे ये किसी ने नहीं कहे पर मैंने सुने थे—अपने अंतर्मन से सुने थे

और फिर अपने होठों से ही अपने कानों को कई बार सुनाती रही—तब भी जब इनके अमल से चूक जाती थी

मैं यह नहीं कहती कि इन शब्दों का तिलिस्म मेरी पकड़ में आ चुका है—केवल यह कि सारी उम्र ये मेरे सहायक रहे हैं। इनका तिलिस्म ही शायद इस बात में है कि अपनी सूरत जब भी अपने कल्पित आपे से कुछ मिलने लगती है—कल्पित आपा और भी सुंदर होकर दूर जाकर खड़ा हो जाता है।

केवल यह कह सकती हूं कि सारी उम्र इस तक पहुंचने के लिए एक जतन करती रही हूं।

जतन अपने आप में एक ढांडस होता है—इसने ही एक बार कुछ ऐसी ढांडस

दी थी कि अठारह वर्ष से एग्जीमे का कष्ट भोगने वाले अपने पति से कह सकी थी आपके मन ने यह तलाक स्वीकार कर लिया है पर आपके मन ने अभी इस गिरह के लागू की गुस्ताख आखों और कैमरे जैसी जोड़ी के सामने इस सच को स्वीकार नहीं किया है। मुझसे अलग होने की घटना लोगों को देख लेने दीजिए। वे चार दिन बोल-बकर कर जब चुप हो जाएंगे, हम अपने भीतर की सच्चाई को उनकी आखों की आग में लगाकर ले जाएंगे—तब इस अग्नि-स्नान के बाद हम निरोग हो जाएंगे।' एक पेशीनगोई सी भी की 'आपका एग्जीमा दूर हो जाएगा। और हमने अलग होने की तारीख निश्चित कर ली—आठ जनवरी। यह १९६३ के सितम्बर की बात है। बरस चढ़ते, जनवरी की आठ तारीख को, अपने निश्चित किए हुए दिन, हम अलग हो गए। और फरवरी में उनका एग्जीमा बिलकुल ठीक हो गया अठारह वर्ष बाद और बिना किसी दवा दारू के।

सोचती हूं—यह सच का सामना करने का साहस था जिसने मन का, और तन को बल दिया।

कुछ इसी तरह की घटना १९६० में भी हुई थी। इमरोज़ की मुहब्बत में सचाई जरूर थी पर उसमें बहुत गहरे कहीं दुविधा भी मिली हुई थी, बहुत हद तक उसकी अपनी दृष्टि से भी ओझल। वह इस दुविधा के पलों को 'काला आदमी' कहा करता था—जो कभी-कभी उसके अन्तर में से उभरता और फिर अन्दर ही कहीं लोप हो जाता था। यह शायद मेरा और उसका चेतन-जतन था कि वह दुविधा कुछ समय के लिए इतनी गहराई में उतर गयी कि फिर सतह पर उसका अस्तित्व कहीं दिखाई नहीं दिया। हमें लगा, हम उससे मुक्त हो गए हैं।/पर इमरोज़ को बुखार आने लगा। ऐक्स रे भी लिये, पर वह' ऐक्स रे में कहीं दिखाई देती थी। बुखार आते हुए दूसरा महीना लग गया—और तब वह अपने आप ही सतह पर आ गयी। मैं जानती हूं उन दिनों के मेरे आंसू मेरे कल्पित आपे की रूपरेखा से मेल नहीं खाते थे मैं उससे बहुत छोटी हो गयी थी पर यह स्पष्ट सा हो गया था कि जब तक वह मुझसे बहुत दूर नहीं हो जाएगा, उसका बुखार नहीं उतरेगा। एक-दूसरे की सरज़मीन को पाने के लिए दूरी के रेगिस्तान से गुज़रना जरूरी था —यह जानने के लिए कि अन्तर की प्यास कितनी है और किसलिए है। जब दूरी का कदम उठा लिया—चाहे वह बहुत कठिन था—तब इमरोज़ का बुखार उतर गया।

यह और बात है कि इस दूरी को हमने पूरे तीन बरस दिये। और बदले में इसने हम आपों को पहचान दी। और इमरोज़ को विश्वास हो गया कि इस दुनिया में मुझे केवल मेरी आवश्यकता है।

पर दो महीने के बुखार के उतरने का चमत्कार—केवल उस हिम्मत के कारण हुआ था कि हम आधा सच नहीं जीएंगे। उठाया हुआ कदम अगर पूरा सच नहीं

हाथ की रेखा जगह-जगह से टूटी हुई है।' इमरोज ने अपना हाथ मेरा हाथ लेकर कहा—'अच्छा है, फिर हम दोनों एक ही रेखा में गुजारा कर लेंगे।'

१९६४ में जब इमरोज ने हौज खास में रहने के लिए पटेलनगर का मकान छोड़ा था तब अपने नौकर की आखिरी तनखाह देकर उसके पास एक सौ और कुछ रुपये बचे थे। पर उन दिनों उसने एक ऐडवर्टाइजिंग फर्म में नौकरी कर ली थी बारह तेरह सौ वेतन था इसलिए उसे कोई चिंता नहीं थी। पर एक दिन दो तीन महीने बाद—उसने लाउड थिंकिंग के तौर पर मुझसे कहा— मेरा जी करता है मेरे पास दस हजार रुपया हो ताकि जब जी में आए नौकरी छोड़ सकूं और अपने मन का कोई तजुर्बा कर सकूं।' महंगाई बढ़ रही थी, पर उसकी कही हुई बात, मेरा जी करता था पूरी हो जाए। जल्दी ही एक साधन भी बन गया— इमरोज को वेतन के अतिरिक्त पांच सौ रुपये मासिक का काम अलग मिल गया। सो खर्च में जितनी कमी कर सकती थी, की और इमरोज के दस हजार रुपये जोड़ने की लगन लगा ली।

लगभग सवा बरस में सचमुच दस हजार रुपया इकट्ठा हो गया, और इमरोज ने एक दिन अचानक नौकरी छोड़ दी। अलग काम का पांच सौ का अलग आसरा था, वह भी अगले महीने अचानक बंद हो गया। मुझे तीन महीने के लिए यूरोप जाना था चली गयी। मेरी अनुपस्थिति में इमरोज ने बाटिक का तजुर्बा करना सोच लिया और उसके लिए अपने भाई को दक्खिन की ओर भेज दिया कि वहां से बाटिक का एक अच्छा कारीगर खोजकर ले आए।

मैं यूरोप से वापस आयी तो पहले से ही इमरोज ने ग्रीन पार्क में तीन सौ रुपये मासिक पर एक मकान किराये पर लिया हुआ था जिसमें दो कारीगर रहते थे, और कड़ाहों में रंग उबालकर नये खरीदे हुए कपड़ों के थानों पर बाटिक का तजुर्बा कर रहे थे। रंग एकसार नहीं आ रहे थे, और इन धब्बेदार कपड़ों का ढेर के ढेर फेंका जा रहा था।

उन दिनों इमरोज का मिजाज दिल्ली के उस मौसम की तरह था जब दोपहर के समय शरीर लू की तपिश में जलने लगता है और शाम पड़ते ही ठंड से सिहरने लगता है। कुछ कहना चाहा—पर सारे शब्द व्यर्थ थे।

ढाई सौ रुपये महीने पर एक दर्जी आ गया जो अच्छे बने कपड़ों को काट काटकर कमीजों की शक्ल में सिलता था।

पर कमीजों की कमर का साइज उर्दू शायरी की हसीना की कमर की तरह था

ऐसी कोई पांच सौ कमीजों का हश्र यह हुआ कि इन्हें बरसों तक संभालकर रखने के लिए एक अलमारी बनवानी पड़ी और एक बड़ा ट्रंक खरीदना पड़ा। एक दिन की बात याद आ जाती है तो आज भी हंसी छूट पड़ती है। एक दिन एक

अमरीकन स्त्री को एक कमीज बहुत पसन्द आयी। वह देख रही थी कि उर्दू शायरी की हसीना की कमर के लिए सिली हुई यह कमीज उसके नहीं आएगी पर उसने एक पर्दे की आड़ में होकर किसी तरह उस कमीज को अपने शरीर पर फंसा लिया। उतारने लगी तो गले से न निकले। हारकर उसने पर्दे के पीछे से आवाज दी—'प्लीज गैट मी आउट ऑफ दिस शर्ट।'

दस हजार बिलकुल खत्म हो गए तो इमरोज ने अपना इकलौता प्लॉट बेच दिया। साढ़े छह हजार में बिका। एक बरस के इस तजुर्बे में, किताबों के इक्का-दुक्का टाइटिल बनाकर उसने जो कमाया था—उसे भी मिलाकर—खर्च का पूरा जोड़ बीस हजार हो गया।

और फिर बातिक से उसका जी भर गया। इस तजुर्बे में सिल्क की एक कमीज और सिल्क की एक साड़ी जो इमरोज ने अपने हाथों से बनाई थी, मेरे पास है। जब भी यह कमीज या साड़ी पहनने लगती हूं बीस हजार का खयाल आ जाता है। और कभी उदास होने लगती हूं तो इमरोज हंसकर कहता है—'इतनी कीमती साड़ी तो किसी मलिका ने भी न पहनी होगी तुम्हें खुश होना चाहिए कि आज तुमने दस हजार की साड़ी पहनी हुई है। सो, मेरी यह साड़ी भी दस हजार की है और कमीज भी दस हजार की।'

मैं सचमुच अमीर हूं—यह इमरोज के उस हौसले की अमीरी है जो बीस हजार रुपये खोकर इस तरह हंस सकता है। और यह बीस हजार भी वह जो उसने न उससे पहले कभी देखे थे न बाद में।

इमरोज को समझना कठिन नहीं। उसमें एक रेखा है जो बराबर चली आ रही है—हथेली पर नहीं, मस्तिष्क के सोचने में। उसके मन में चीजों के वे रूप उभरते हैं जिन्हें कागज पर कपड़े पर या लकड़ी लोहे पर उतारना, उसके वश की बात है। केवल बड़े साधन उसके वश के नहीं हैं।

उसके टक्सटाइल के अत्यन्त सुन्दर डिजाइन बनाए थे। मैं उन्हें देखती थी तो कहती थी—यह अगर सचमुच कागजों से उतरकर दो-दो गज के कपड़ों पर आ जाएं तो सारे हिन्दुस्तान की लड़कियां परियां बन जाएं।

यह डिजाइन कागजों पर बनाना उसके बस में था, उसने बना लिये, पर इन्हें कपड़ा पर उतारने के लिए एक मिल की आवश्यकता थी। हमारे मुल्क की गरीबी यह नहीं है कि उसके पास मिलें नहीं हैं गरीबी यह है कि मिलवालों के पास दृष्टि नहीं है। ये डिजाइन दो बार दो मिल मालिकों को दिखाए थे पर अनुभव यह हुआ कि वे लोग आईन रैंड के उस वाक्य के अनुरूप हैं जो ऐसे लोगों के लिए उसने उनके भाग्य के समान ही लिखा था—पर्फेक्ट ईडियटस।

वास्तव में इसी विवशता के कारण इमरोज ने बातिक का माध्यम सोचा था, कि कुछ डिजाइन मिलों की मोहताजी से मुक्त होकर कपड़ों का शरीर छू सकें।

यह और बात है कि यह काम जब तक कारीगरों के हाथ में रहा, वर्णन-योग्य नहीं था, पर जब अन्त में इमरोज़ ने उसका सारा अमल अपने हाथ में ले लिया, कुछ चीज़ें ऐसी तयार हुई कि आंख हटाए नहीं हटती थी। पर ऐसी चीज़ों के लिए कुछ जापानियों और अमरीकनों के सिवाय कोई खरीदार नहीं था। और साथ ही यह भी था कि यह हुनर जब इस शिखर पर पहुंचा, तो दो गज़ कपड़ा खरीदने के लिए भी पास नहीं रह गए थे।

यह साधारण-सा माध्यम भी पहुंच के बाहर हो गया तो इस तजुर्बे का सिलसिला खत्म हो गया। फिर धीरे धीरे वे तजुर्बे अस्तित्व में आए जिनके लिए एक बार में सौ पचास रुपयों से अधिक की आवश्यकता नहीं होती थी। इमरोज़ ने घड़ियों के डायल डिज़ाइन करने शुरू किए। जब चालीस पचास रुपये इकट्ठे हो जाते वह एक घड़ी खरीद लाता और उसका डायल डिज़ाइन करता। आज भी हमारी एक अलमारी उन घड़ियों से भरी हुई है जिन्हें रोज़ चाबी देना मुमकिन नहीं है—पर कभी-कभी हम वह अलमारी खोलते हैं तो सारी घड़ियों को चाबी देकर उनकी टिक टिक बथोवन की सिम्फनी की तरह सुनते हैं

घड़ियों में सदा 'एक समय' होता है पर इमरोज़ ने 'दो समय' घड़ियों में पकड़ने चाहे। एक तो साधारण समय जो सूइयां बताती हैं और दूसरा वह जो विश्व के कुछ कवि शब्दों में पकड़ते हैं। इसलिए इमरोज़ ने नम्बर वाले डायल निकालकर घड़ियों में वे डायल डाले जिन पर उसने विश्व के कवियों की वे पंक्तियां लिखी थीं जिनमें अनेक पल छिन पकड़े हुए थे।

जो घड़ियां संभालकर रखी हुई हैं उनमें से किसी के डायल पर फ़ैज़ का शेर है किसी पर कासमी का किसी पर वारिस शाह का किसी पर शिवकुमार का

इसी तरह इमरोज़ के कुछ कलेंडर डिज़ाइन हैं। किसी की शक्ल चौबारे मंजे के समान है जिस पर तारीख और वार शतरंज के मोहरों की तरह बिछे हुए हैं। किसी की शक्ल एक वृक्ष के समान है जिस पर तारीख और वार के हरे-हरे पत्ते लगे हुए हैं। किसी की शक्ल एक साज़ के समान है जिसके तार कसने वाली चाबियां बरस के महीने और वार हैं।

यह सब-कुछ अगर अपने देश में और विदेशों में दिखाया जा सकता तो हिंदुस्तान का नाम अमीर हो सकता था। पर किसी सरकारी मशीनरी को चाबी दे सकना न मेरे वश की बात है, न इमरोज़ के।

जब कोई किसी का वर्तमान अपनाता है तो वास्तविक अपनत्व में, उसका और दूसरे का अतीत भी, शामिल हो जाता है—अलग-अलग नहीं रह जाता—भले ही वह आंखों देखा नहीं होता फिर भी वह अपने अस्तित्व का हिस्सा बन जाता है—अपने शरीर के किसी पुराने घाव की भांति।

इमरोज़ जानता है मोहनसिंहजी के प्रति मेरे आदर में मेरी मुहब्बत

शामिल नहीं थी। एक बार जब उसकी किताब जर्द पत्तों का बन कवर डिज़ाइन बना रहा था तो किताब की मुख्य कविता के अनुसार उस टाइटिल के ऊपर दो ताले बनाने थे—मरे हुए बच्चे जो माहलमिह के किनारे मरे हुए पत्तों के ताले थे—पर उसने टाइटिल पर तीन ताले बनाए। कहने लगा—'तीसरा सबसे बड़ा ताला तो मरे बच्चों की माँ थी जो माहलमिह का लिखाई नहीं किया। इसलिए मैंने अधूरी कविता को पूरा करने के लिए दो की जगह तीन ताले बना दिए हैं।

और इमरोज़ जानता है मैं साहिर से मुहब्बत की थी। यह जानकारी अपने आप में बड़ी बात नहीं है, इससे आगे जो सच मुच बड़ा है वह इमरोज़ का मेरी असफलता को अपनी असफलता समझ लेना है।

इमरोज़ जब साहिर की किताब आशा, कोई ख्वाब बुनें का टाइटिल बना रहा था तो कागज़ लिये हुए कमरे के बाहर आ गया। बाहर के कमरे में मैं और देविंदर बैठे हुए थे। उसने टाइटिल दिखाया। देविंदर ही एक दोस्त है जिससे मैं साहिर की बात कर सकती थी इसलिए देविंदर ने कुछ अतीत में उतरकर एक बार टाइटिल की ओर देखा एक बार मेरी ओर। पर मुझसे, और देविंदर से भी कहीं अधिक इमरोज़ ने मेरे अतीत में उतरकर कहा— साला ख्वाब बुनने की बात करता है बनने की नहीं।'

मैं हंस पड़ी— साला जुलाहा सारी उम्र ख्वाब बुनता ही रहा किसी का ख्वाब न बना।

मैं देविंदर इमरोज़ कितनी ही देर तक हंसते रहे—उस दर्द के साथ जो ऐसे अवसर पर सभी हंसी में शामिल होता है।

कभी हैरान हो जाती हूं—इमरोज़ ने मुझे कैसा अपनाया है उस दर्द के समेत जो उसकी अपनी खुशी का मुखालिफ है

एक बार मैंने हंसकर कहा था, ईमू! अगर मुझे साहिर मिल जाता तो फिर तू न मिलता'—और वह मुझसे मुझसे भी आगे अपनाकर कहने लगा, मैं तो तुझे मिलता ही मिलता—भले ही तुझे साहिर के घर नमाज़ पढ़ते हुए ढूंढ लेता।

सोचती हूं—क्या कोई खुदा इस जैसे इन्सान से कहीं अलग होता है

इमरोज़ अगर ऐसा न होता जैसा है तो मैं उसकी ओर देखकर यह शेर कभी न लिख सकती— बाप बेटा और बीवी का तसव्वुर, इस सलीब का कोई नहीं रिश्ता, उम्र जैसा मैं तनू तकिया—सारे अक्षर गूंगे हो गये।[1]

इमरोज़ के पास मेरे कई पत्र हैं पर इनमें से एक मेरे मन का चित्रण करने

---

१ पिता भाई मित्र, और पति—किसी शब्द का कोई रिश्ता नहीं। पर जब तुझे देखा, ये सारे अक्षर गूंगे हो गए।

वाला वह पत्र मिलता है जो मैंने अगस्त, १९६७ में उसे यूगोस्लाविया से लिखा था—

ईमेवा ! यथार्थ की सीमाबद्धी से घबराकर पायी हुई एक वस्तु होती है—फैंटसी ! पर साचनी हू जो स्थिरता से प्राप्त किया जाता है वह फैंटेसी के आगे होता है। इसलिए तेरा जिक्र उससे आगे है—क्रियाण्ड फैंटेसी !

'हेनरी मिलर के शब्दों में सारे आर्ट एक दिन समाप्त हो जाएंगे पर आर्टिस्ट अवश्य रहेंगे और जिन्दगी एक आर्ट' नहीं होगी आर्ट होगी। अगर यह मान लिया जाए कि हेनरी मिलर का यह कल्पित समय एक हजार वर्ष बाद आ जाएगा तो यह कहूगी कि समय से एक हजार साल पहले पैदा हो जाना तेरा कुसूर है। यह हर उस व्यक्ति का कुसूर है जो सिर से पैर तक जीता है। इस दुनिया में अभी लोग इस तरह के नहीं होते। हर व्यक्ति का आधा कुछ जन्म लेता है आधा मां की कोख में ही मर जाता है। हर मनुष्य अभी अपना बहुत-सा भाग कोख की कब्र में दफन करके जन्म लेता है और उसके लिए किसी पूर्ण मनुष्य को देखने से बढ़कर और कोई दुखदायी बात नहीं होती। सो इस दुनिया की तेरे प्रति उदासीनता स्वाभाविक है—या ऐसे कह कि हर वर्तमान की जड़ें केवल अतीत में होती हैं पर तेरी जैसे उस व्यक्ति का क्या हो जिसके वर्तमान की जड़ें केवल भविष्य में हैं। अगर एक हजार साल बाद छपने वाले किसी अखबार की प्रति मैं आज बाजार में खरीद सकूं तो मुझे विश्वास है कि मैं उसमें तेरे कमरे में बन्द पड़ी हुई तेरी कलाकृतियों का विवरण पढ़ सकती हू

पर्फेक्शन' जैसा शब्द तेरे साथ नहीं जोड़ूगी। यह एक ठंडी और ठोस सी वस्तु का आभास देता है और यह आभास भी कि इसमें से न कुछ घटाया जा सकता है न बढ़ाया जा सकता है। पर तू एक विकास है जिससे नित्य कुछ झड़ता है और जिस पर नित्य कुछ उगता है। पर्फेक्शन शब्द एक गिरजाघर की दीवार पर लगे हुए ईसा के चित्र के समान है—जिसके आगे खड़े होने से बात ठहर जाती है। पर तुझसे बात करने से बात चलती है—एक सहजता के साथ—जैसे एक सांस में से दूसरा सांस निकलता है। तू जीती हुई हड्डियों का ईसा !

एक पराये देश से तुझे पत्र लिखते हुए याद आया है कि आज पन्द्रह अगस्त है—हमारे देश की स्वतन्त्रता का दिन। अगर कोई इन्सान किसी दिन का चिह्न बन सकता हो तो कहना चाहूगी कि तू मेरा पन्द्रह अगस्त है, मेरे अस्तित्व की और मेरे मन की अवस्था की स्वतन्त्रता का दिन !

—अमृता

ड्रुगोवनिक (यूगोस्लाविया)

एक सिलसिला

५ फरवरी १९७२ के 'स्टेट्समैन' में मैंने एक लेख लिखा था 'एक रोमानियन कविता में एक कवि पड़ोसियों से कुर्सियां मांगकर ले आता है और खाली कुर्सियों को अपनी कविताएं सुनाता है। सोचता है कि खाली कुर्सियां सबसे अच्छी श्रोता होती हैं। उनमें न उत्साह का छिछोरापन होता है न वे कविताओं को मेयर करती हैं। पर इस प्रकार के अहंसर्वस्व हमारे कितने लेखक हैं जो केवल कुर्सियों के पीछे दौड़ रहे हैं। स्थापना के हाल कमरों में कल्चरल फर्नीचर' बनना उसकी अंतिम मंजिल प्रतीत होती है।' और इसी लेख के आगे के भाग में कुछ पंक्तियां इस प्रकार थीं— पर वास्तविक लेखक अपने पाठकों की रगों में जीता है उनके स्वप्नों में और उनके जीवन के अंधेरे कोनों में '

यह सब-कुछ लिखते समय इसमें एक नयी उदासी यह भी शामिल थी कि साहित्य अकादमी के अवार्ड के लिए एक या दो वोटों के आधार पर रिकमंड हुई एक समकालीन की किताब थी, जिसे पढ़ा तो लगा कि इस किताब को अवार्ड मिलना न लेखक के साथ न्याय होगा न पंजाबी साहित्य के साथ। इसलिए मैंने अपना अंतिम वोट इस किताब को नहीं दिया। और इस कारण से मेरे समकालीन ने मुझसे नाराज होकर चंडीगढ़ में जा पेपर पढ़ा था उसमें मेरे नाविलों को नावलचू कहकर और कविताओं को नकल कहकर जी भरकर निंदा की थी।

पर इस वर्ष के मध्य में इस बात का और भी हास्यास्पद रूप देखने में आया— जब जुलाई के अंतिम सप्ताह में एक और समकालीन के घर बैठकर उस समकालीन शराब का प्याला हाथ में लेकर खुशी से नाचते हुए कहा 'आ गया, बीबी काबू में आ गयी आ गयी, बीबी काबू में आ गयी तीन साल के लिए काबू में आ गयी और उसने सामने बैठे एक और समकालीन को बताया— मैं भारतीय ज्ञानपीठ कमेटी में आ गया हूं अब तीन साल तो बीबी को अवार्ड लेने नहीं देता और पास बैठे एक और मेहरबान समकालीन ने उसके स्वर में स्वर मिलाया— आ गयी बीबी काबू में आ गयी पांच साल के लिए काबू में आ गयी और उसने बताया कि साहित्य अकादमी की एक्जिक्यूटिव में होने का वह अमृता का आखिरी साल है अगले पांच सालों के लिए नया चुनाव होगा, हम अमृता को अकादमी के पास नहीं फटकने देंगे '

मैं वहां होती तो एक से 'अकादमी मुबारक' और दूसरे से 'ज्ञानपीठ की

मेम्बरी मुबारक' कहती पर वहा केवल मोहनसिंह था जिसने इस जैसी बचकाना हरकत को केवल उदासी के साथ देखा और सवेरे मेरे घर आकर मुझे उदासी के साथ सुना गया।

इनामो और रतबो की तेज रोशनी म खडे हुए वे लोग खामखाह हवा म तलवारें मार रहे हैं। मैं वहा नही हू। कभी भी नही थी, न कभी होऊगी। एक ही तमन्ना थी कि मैं अपने दिल और अपने पाठको के दिल के एक कोने म रहू, जहा तक भी जा सकी हू—सिर्फ वहा हू—सिर्फ वहा

इस वर्ष के अन्त म फिर वसे ही दिन आए। चडीगढ से एक समकालीन का टेलीफोन आया—

'इस बार किस किताब को वोट देनी है ?'

जो आपको अवाड के योग्य लगती है, उसे दे दीजिय।

'उस जिसने लेनिन पर किताब लिखी है ?'

लेनिन पर उसकी किताब बहुत घटिया है।'

हा घटिया तो है पर वह बूढ़ा हो गया है उसे अवाड मिल जाना चाहिए। और उसने मुझसे पूछा कि मेरी दृष्टि मे मियार के अनुसार किस अवाड मिलना चाहिए ?

मियार के अनुसार, सामने आयी हुई नौ किताबो म केवल एक किताब थी तीन रातें, जिसके पहले भाग म किस्सा की पुरानी परम्परा को नये सिर से उज्जीवित किया गया था और दूसरे भाग म आज की कहानी और आज के गद्य के उत्तम प्रमाण मिलते थे, इसलिए अपनी राय जिस ईमानदारी से सोची थी, उसी ईमानदारी से बता दी—और मेरे समकालीन का टेलीफोन बन्द हो गया।

फिर औरो से सुना कि तीसरी राय का बन्दोबस्त कर लिया जाएगा और उन दो रायो को मिलाकर मेरी राय को रद्द कर दिया जाएगा।

मियार के सबध म किसी की राय भिन्न हो सकती है पर यहा मियार का प्रश्न नही था यहा जिद का प्रश्न था। सो जिद पूरी की गयी और अवाड का इतजाम कर लिया गया।

पहली जनवरी १९७३ के दिन साहित्य अकादमी की एक्जीक्यूटिव सदस्या के पद से पाच साल के बाद, निवृत्त हुई हू। किसी जिम्मेदारी से निवृत्त होना भले ही 'मुक्ति शब्द के साथ नहीं जोडा जा सकता पर अनुभूति अवश्य मुक्ति के समान ही है, इससे इनकार नही कर सकती।

इन वर्षों म जब सिफारिशो के फोन आते थे, या घर की घटिया बजती थी, हमेशा इमरोज से कहा करती थी सबको यह समझा दो कि पाच बरस के लिए मैं घर पर नही हू।' पर इस अन्तिम वर्ष सिफारिश के साथ किसी के हाथ किसी की धमकी भी आयी कि अगर उसे अकादमी का अवाड नही मिला तो वह जी

भरकर मरे विरुद्ध लिखेगा।

सो समस्या का यह अंतिम वर्ष बीतने के बाद आज पहली जनवरी के लिए शुभेच्छा की अनुभूति हो रही है। आज सब को पहला दिन देख इस स्वतन्त्रता के लिए मुझे 'साल मुबारक' कहा गया है।

ऐसी परंपराओं का सिलसिला बहुत लम्बा है। जब कभी पंजाबी कविता या पंजाबी कहानी का मुआइना करती हुई धर्मवीर आती है— अगर अमुक की कविता या कहानी सम्मिलित न हुई तो अमुक पत्रिका का एक विशेष अंक तुम्हारे विरुद्ध निकाला जाएगा विशेष अंक संभव नहीं हो सकते तो संपादकीय तो हो ही सकते हैं और वे प्रायः छपते रहते हैं

इसी प्रकार पंजाब के अनेक समकालीनों को भ्रम है कि टेलीविजन पर सब कुछ सही सलाह सहाता है मुझसे पूछकर। वे दो चार बार पान करते हैं कि अगली बार उनकी कविताएं होनी चाहिएं। बहाने की कोशिश करती हूं कि मेरा इसमें कोई संबंध नहीं है पर दो-तीन महीनों के बाद पान करने वालों का कोई संदेश हुआ उत्तर आ जाता है या टेलीविजन विभाग की ओर से निर्देशों की लिखी हुई मेरे विरोध की चिट्ठियां सुरक्षित आ जाती हैं।

सबसे बड़ा लम्बा सिलसिला है जिसका संबंध नहीं होता हां मेरी लिखने की पोलोग्राफी वाली पत्रों वाली सिलसिला है। १९७० की एशियन राइटर्स कांग्रेस के अवसर पर मुझे उसकी स्थायी समिति की अध्यक्षा चुनने के बाद कोई ऊपर से दबाव आया या जिसके कारण एक स्वीकृति कभी बना कर मेरी कविताओं में पोलोग्राफी खोजी गयी और मालूम हुआ—१९६८ में मैंने चेकोस्लोवाकिया के बारे में जो कविताएं लिखी थीं वे पोलोग्राफी थीं

पोलोग्राफी की यह व्याख्या शायद विश्व के साहित्य में और कहीं नहीं मिलेगी

अखबारों की अजीब टिप्पणियां

दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से १५ मई १९७३ को डी० लिट्० की ऑनरेरी डिग्री मिली थी। जिन्हें भी मिली थी उन्हें कुछ शब्द कहने थे मैंने भी कहे। पर दूसरे दिन टाइम्स ऑफ इंडिया का एक कमेण्ट बहुत अजीब था—मेरे संबंध में और शुभलक्ष्मी के संबंध में, कि वे दोनों खुशी की उछाल में गा रही थीं। मैंने जो कुछ कहा था अभी याद है अक्षरशः यहां लिख रही हूं—केवल उस कमेण्ट का उत्तर देने के लिए

"कुछ दर हुई एक कविता लिखी थी—अक्षर। उस कविता की कुछ पंक्तियां हैं—

इक्क पत्थरां दा नगर सी
सूरजवंश दे पत्थर
ते चंदर वंश दे पत्थर
उस नगर विच्च रहंदे सन
ते कहंदे हन—
इक्क सी सिला ते इक्क सी पत्थर
ते उहना दा उस नगर विच्च संजोग लिखिया सी
ते उहना ने रल के इक्क वंजत फल चखिया सी
आह खौर चकमाक पत्थर सन—
जो पत्थरां दी सेज ते सुत्ते—
ता पत्थरां दी रगड विच्चों—
मैं अग्ग वांग जम्मी अग्ग दी रत्ते।
फेर वगदीआ पौणा मैंनू जित्थे वी खडदीआ
तत्तिया सुआहवा मेरे पिंडे तों झडदिया।
फेर उहिओ हवा कित्ता दौडदी आयी
ते हत्था दे विच कुझ अक्खर ले आई
ते कहिण लग्गी—
एह लिक्खिया कालिआ लीका ना जाणी
एह लीका दे गुच्छे तेरी अग्ग दे हाणी
ते इस तरहा कहिंदी ओह लघ गयी अग्गे
तेरी अग्ग दी उमरा एहना अक्खरां नू लग्गे।[1]

---

१ एक पत्थरों का नगर था
सूर्यवंश के पत्थर
और चन्द्रवंश के पत्थर
उस नगर में रहते थे—
और कहते हैं
एक थी शिला और एक था पत्थर
और उनका उस नगर में संयोग लिखा था
और उन्होंने मिलकर एक वर्जित फल चखा था
वे न जाने चकमाक पत्थर थे
जो पत्थरों की सेज पर सोए

मैंने जिन्दगी मे अगर कोई तमन्ना की है तो केवल यह कि मेरी आग की उम्र इन अक्षरो को लग जाए। आज आपने दिल्ली यूनिवर्सिटी ने, इन अक्षरो को पहचाना है इनकी आग को पहचाना है, और इस पहचान के लिए मैं अक्षरो की इस आग की ओर से आपका शुक्रिया अदा करती हू।

धर्म-युद्ध

महाभारत का सबसे महान भाग मुझे वह लगता है जहा कौरवो और पाडवो का युद्ध छिडने लगता है तो युधिष्ठिर रणक्षेत्र को अकेले और पैदल पार करके सामने शत्रु-सेना मे खडे हुए अपने सगे सबधियो से युद्ध करने की आज्ञा लेने जाता है।

वह शत्रु-सेना मे खडे हुए भीष्म पितामह को प्रणाम करता है कहता है— मुझे आपसे युद्ध करना है युद्ध की आज्ञा दीजिये, और विजय का आशीर्वाद दीजिये।

भीष्म पितामह उत्तर देते हैं इस युद्ध मे मेरा यह शरीर तो दुर्योधन की ओर ही रहेगा क्योकि उसका अन्न खाया है पर धर्म से युक्त मन तुम्हारी ओर रहेगा तुम्हारी मगल कामना करेगा तुम्हारी विजय की आकाक्षा करेगा।

युधिष्ठिर ने इसी प्रकार गुरु द्रोणाचार्य को भी प्रणाम किया कृपाचार्य को भी। मैंने अपने समकालीनो से अपनी इस आयु जितनी लम्बी जग लडी है अब इस किताब मे उनके सबध मे जो भी लिखने जा रही हू उनकी लेखनियो का आदर

तो पत्थरो की रगडो से
मैं आग की तरह जन्मी आग की ऋतु मे
फिर बहती हवाए मुझे जहा भी ले जाती
गम गम राख भरे शरीर से झडती
फिर वही हवा कही से दौडती आयी
और हाथो मे कुछ अक्षर ले आयी
—और कहने लगी—
इन्हे छोटी काली लकीरें न समझना
यह लकीरो के गुच्छे तेरी आग के समथ हैं—'
और यह कहते हुए वह आग बढ गयी—
तेरी आग की उम्र इन अक्षरो को लग जाए।

करते हुए उन्हीं से इस शुभेच्छा की कामना करती हूं कि सिद्धान्तों की इस जंग का हाल पूरी तरह लिख सकूं।

महाभारत के इसी भाग में युधिष्ठिर ने चारों ओर की सेना के मध्य खड़े होकर कहा था, 'जो बहादुर मेरी सहायता के लिए मेरी सेना में आना चाहता है उसका स्वागत है' और यह सुनकर दुर्योधन का छोटा भाई युयुत्सु आगे बढ़ा था। इतिहास स्वयं को दोहराता है—आज वही शब्द नये लेखकों के लिए दोहराती हूं कि जो भी सिद्धान्तों की लड़ाई लड़ना चाहता है उसका स्वागत है।

यह युद्ध जारी रहेगा—मुझ तक, मेरे बाद भी और केवल आज की ही नहीं, आनेवाली पीढ़ियों में से भी जो कोई लेखनी के सत्य के पक्ष में आना चाहेगा, समय उसका स्वागत करेगा।

मिथक में जैसे अनेक चेहरे अज्ञात चेहरों का रूप धारण करके किसी को छलने पाए जाते हैं जीवन में भी अनेक विश्वास और अनेक आशाएं छलावा बन जाती हैं।

साहित्यिक जगत में सन्तसिंह सेखों के संबंध में मेरी पहले दिन से यह धारणा थी कि एक आलोचक के नाते उनका उत्तरदायित्व और ईमानदारी जैसे बुनियादी मूल्यों से सर्वथा कोई संबंध नहीं है। जैसे जैसे वर्ष बीतते गए, मेरी राय बहुत ही सत्य सिद्ध होती गयी। मोहनसिंहजी के संबंध में मेरी राय थी कि वह अच्छे कवि होने के साथ एक नेक दिल व्यक्ति भी हैं किंतु दुर्बल हैं, मूल्यों मानों के लिए अड़ जाने वाले नहीं हैं। मेरा यह विचार भी कालान्तर में ठीक सिद्ध हुआ। परंतु नवतेजसिंह के संबंध में मेरा लेख मेरा दोस्त मेरा हमदम और करतारसिंह दुग्गल के संबंध में मेरा लेख ठंडा दस्ताना उनके लिए मेरे समकालीन प्रेम को देखते-देखते झूठे सिद्ध हो गए। पहला लेख एक विश्वास से और दूसरा लेख एक आशा के साथ लिखा था, पर मेरा विश्वास भी मुझे छल गया मेरी आशा भी मुझे छल गयी।

हरिभजनसिंह से आस जोड़ी थी पर बहुत नहीं। उसने जब अपने अनुयायियों से मेरे संबंध में घटिया लेख लिखवा लिखवाकर उनमें एक प्रकार का आनंद लेना आरंभ कर दिया मुझे अधिक आश्चर्य नहीं हुआ केवल तरस आया कि वह अपने अंतर के कवि के व्यक्तित्व को अपने हाथों मसल कर रहा है।

और जो साधूसिंह हमदर्द या अन्य कई एक—अपने मन की तंग गलियों में भटकते हुए—जो कुछ भी कर रहे हैं उनसे मेरा कुछ कहीं जुड़ा हुआ नहीं है न कोई विश्वास, न कोई आशा—इसलिए न उसके लिए आश्चर्य होता है, न पीड़ा। गुरुचरनसिंह भुल्लर न मरे और हरिभजनसिंह के विरुद्ध एक कहानी गढ़ी जो सर्वथा झूठ पर आधारित थी, तो इस तमाशे को देखकर केवल ग्लानि से मुंह परे कर लिया। यह कहानी प्रीतलड़ी के मई, १९७३ के अंक में छपी थी।

उसी महीने की १५ तारीख को दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से डी०लिट० की आनरेरी डिग्री मिली थी दाम्ता और पाठकों के पत्र आ रहे थ—और इनम एक पत्र गुरबख्शसिंहजी का भी मिला।

अपन साहित्यिक जीवन के आरभिक वर्षों म मैंने गुरबख्शसिंहजी क साथ आदश जस शब्द को भी जोडा था, और मन के गहरे आदर को भी। और इसक साथ इस आशा का भी कि अब मूल्या माना की रक्षा उनके जिम्मे है। उनक बुजुग हाथ के होत हुए, मुझ जस नय साहित्यकारा को कीचड स भरी गलिया म स गुजरना कुछ आसान हो जाएगा। पर देखा यह कि बहुत शीघ्र ही इस सब कुछ से वे बे-वास्ता हो गए थ। ठीक है—अपने रास्त पर अपन पावों स चलना था इसलिए मन म किसी प्रकार की कोई शिकायत नही आन दी थी—न शिकायत, न आशा—पर उनके लिए कुछ आदर का रिश्ता मैंने अपने मन म सदा बनाए रखा था। उनकी जीवनी म अपने बारे म कुछ अच्छी पक्तिया पढ़कर एक पत्र भी लिखा था— आपकी पक्तिया को मैंने सिरापा के समान धारण किया है,' और उत्तर म उनका भी मीठा सा पत्र आया था।

पर जब 'प्रीतलडी न मरे खिलाफ़ कहानी छापी तो, इमरोज़ को घम की एक जगह दिखाई दी जहा खडे होकर उसन सोचा— हो सकता है कहानी छपन से पहले गुरबख्शसिंह ने न पढी हो। और इसका चुनाव केवल नवतेजसिंह न किया हो।' सो, उसने एक दिन एक पत्र गुरबख्शसिंहजी को लिख दिया

' सिफ सरदार गुरबख्तसिंह के नाम '

मई की 'प्रीतलडी पढी। हैरान हू कि कसवट्टी जसी कहानी आपन कस छाप दी जो कहानी के तौर पर भी बुरी है और जिस नीयत स लिखी गई है वह भी बुरी है। यह झूठी कहानी है। अमृता को इस प्रकार की रचनाओ स कोई अन्तर नही पडता। पर जिस पत्रिका म ऐसी रचना छपती है, उस पत्रिका के बारे म, उसके सपादको के बारे म अपने दृष्टिकोण म अवश्य अन्तर पड जाता है। वस तो पजाबी की बहुत-सी पत्रिकाए हर महीन अक्सर ऐसी रचनाए लिख लिखकर छाप-छापकर कागज और अक्षर मले करती ही रहती हैं। लगता है कि आपने यह कहानी छापने स पहले पढ़ी नही। और अगर सच म नही पढी तो आपने हमारे साथ और अपनी पत्रिका के साथ बुरा किया है। एक बुरी कहानी की सरह। प्रीतलडी' को घटिया और स्कडल्स पत्रिकाओ की पक्ति म खडा करके आपने अपने आपसे भी अच्छा नहीं किया है।

एक शिकायत के साथ एक मान के साथ — आपका

२१ ५ ७२ — इमरोज़

उसी शाम को एक संयोग घटा, कि अवतार जडियालवी को जो लन्दन से आए थे कनाट प्लेस में इमरोज से मिलना था। फोन पर साढे छह का समय लिया हुआ था। मुझे सात बजे हैदराबाद से आयी हुई लेखिका जीलानी बानो से वस्टन काट में मिलना था, इसलिए इमरोज के साथ ही चली गयी। अवतार जडियालवी ठीक समय पर आ गया पर उसके साथ हरिभजनसिंह भी था। अवतार ने चाय पीने के लिए कहा, सो अवतार, हरिभजन, इमरोज और मैं रवल में जाकर ठंडी कॉफी पीने लगे। सब बातें कर रहे थे, पर ऊपरी ऊपरी। बातों का कुछ रुख बदलने के लिए मैंने हरिभजन से कहा, 'इस बार 'प्रतिलिपि' ने बड़े प्यार से आपके ऊपर एक कहानी छापी है।'

हरिभजनसिंह ने सतही हंसी के साथ, वह आपके खिलाफ भी तो है।'

कहा— मेरे तो है ही। पर मुझे तो ऐसी चीज पढ़ने की अब आदत-सी हो गयी है।' और मैंने हरिभजनसिंह की ओर देखा। देखने का अर्थ था—मुझे यह सहनशक्ति की आदत डालने वालों में आप भी शामिल हैं आपका भी शुक्रिया।

कुछ देर बाद हरिभजनसिंह ने कहा— पर नवतेज ने किस ख्याल से छापी? कम से कम कहानी के तौर पर तो अच्छी होती। बेचारे पाठकों का क्या मिला?'

जवाब दिया— बेचारे पाठकों की कीमत पर दो जनों ने स्वाद ले लिया— एक लिखने वाले ने एक छापने वाले ने।'

हरिभजनसिंह ने कुछ देर चुप रहने के बाद अचानक कहा 'सिर्फ दो आदमियों ने ही नहीं, मैंने भी कुछ लज्जत ली है—यह कि भुल्लर अब ऐसी खराब कहानियां लिखने वाला हो गया है।'

पर मुझे इस बात का दुःख है। 'उपरा मंद' जैसी अच्छी कहानी लिखने वाला भुल्लर अब इस जैसी बुरी कहानी लिखने लगा है यह दुःख की बात है। मुझे ऐसा ही लगा था कह दिया।

और फिर रवल से उठकर जब मैं और इमरोज एकान्त में हुए तो इमरोज ने कहा—'बस यही खराब पहलू है हरिभजन का। आज सरल स्वभाव उसने जो कुछ कहा है, उससे वह अपने दोहरे व्यक्तित्व का भेद खोल गया है। एक अच्छे बन रहे लेखक का इस तरह गिर पड़ना उसे लज्जत देता है। उसके मन में यह दर्द नहीं उठता कि एक कहानीकार खत्म हो गया'

एक समय था—जब १९६० में मैं इमरोज का साथ चुनने के समय मन के संकट में थी। उस समय मैंने उस चेहरे का ध्यान किया जिसने मुझे जन्म दिया था पर जो अब संसार में नहीं था इसलिए उस आकृति को गुरबख्शसिंह जी के चेहरे में देखने की चेष्टा की थी। पत्र लिखा था—

जिस हस्ती को दारजी कहकर पुकारती थी, वह आज संसार में

नही है। वह सबोधन आज आपके लिए प्रयोग कर रही हू, आप एक दो दिनो के लिए मेरे पास आइए मैं मन के सकट म हू।

उस पत्र के शब्द अब मुझे ठीक याद नही है पर उसका अभिप्राय बिलकुल यही था। परतु पत्र के उत्तर म गुरबख्शसिहजी नही आए। खर, मेरी उदासी ने ही मुझे बल दिया, और मैं अकेली ही उस सकट से गुजर गयी।

पर जिस बचपन ने किसी व्यक्तित्व के प्रभाव को गहराई से स्वीकार किया हो उसकी जवानी भी उस प्रभाव का कोइ टुकडा गल से लगाकर रखती है। और फिर उसकी बढती हुइ उम्र भी उसे अपने अतीत की कमाई समझकर अपनी किसी जेब म डालकर रखती है। मैंने गुरबख्शसिहजी के इस प्रभाव के कारण उनके पास से आने वाले पत्र की रूपरखा की भी कल्पना कर ली थी। मेरे अनुमान से उसका पत्र इस प्रकार था— प्रिय इमरोज ! मेरी प्रीतलडी म ऐसी फालतू कहानी छपने से भी तुम्हारा मान सम्पूण रहा है मैं तुम्हार इस मान को प्यार भेजता हू और जसे तुम्हें लगा है कि यह कहानी छपने से पहले मैंने इस पढा नही था, वह ठीक लगा है। मुझ पर तुम्हारा विश्वास सच्चा है। यह कहानी अगर मैंने पढी होती तो छपती नही।

पर यह पत्र मेरी कल्पना म फूलो की भाति खिला और इसकी जगह जो पत्र आया उसे पढकर इसका एक एक अक्षर मुरझा गया।

मेरी समझ मे एक लेखक की पहली निष्ठा अपनी लेखनी के मूल्या-माना के प्रति होती है और बेटे बेटिया चाहे कितने ही प्रिय हो उनके प्रति यह जिम्मदारी दूसरे स्थान पर होती है। पर गुरबख्शसिहजी न अपनी लेखनी के प्रति अपनी निष्ठा का हक अदा नही किया। मेरा दद यह था वह कहानी मेरा दद नही थी।

गुरबख्शसिहजी की ओर से इमरोज के पत्र का उत्तर आया, पर उनके इतन कमजोर उत्तर से उनके लिए मरे आदर को भी एक बार शम आ गयी। उनके पत्र म बजाय कुछ अफसोस के लिखा था— मैं सुझाव दूगा कि आप इस कहानी को फिर पढें।

यद्यपि सच यह था कि उस कहानी के लेखक न सपादक को पहले ही पत्र लिखा था कि यह कहानी दो समकालीनो के विरुद्ध है पर यदि हिम्मत है तो छाप दीजिए। और सपादक ने यह हिम्मत कर ली थी।

सो जान बूझकर छापी हुई कहानी के बारे म अब वह कह रहे थे कि वह अमृता के विरुद्ध नही है और उस कहानी को फिर पढन का सुझाव दे रह थे

मैं नही जानती किसी और भाषा मे ऐसा होता है या नही पर पजाबी प्रस म यह निश्चित रूप स अवश्य होता है कि कोई भी खबर जसे चाह गढी जा सकती है। जनवरी १९७५ म नागपुर म विश्व हिन्दी सम्मेलन हुआ था। उसम तीस देशो के सौ से अधिक प्रतिनिधियो न भाग लिया था। उन्ह सम्मान देत हुए इस सम्मेलन

की ओर से भारत की पन्द्रह भाषाओं के पन्द्रह लेखकों को भी सम्मानित किया गया था, जिनमें से एक मैं भी थी, पंजाबी लेखिका होने के नाते। इस समाचार में भ्रम की कोई गुंजाइश नहीं थी पर मेरे समकालीनों की एक पत्रिका ने लिखा, मुझे संबोधन करते हुए—'आपने विश्व हिन्दी सम्मेलन नागपुर में हिन्दी लेखिका के तौर पर सम्मान लिया है जबकि आपकी हिन्दी में प्रकाशित सभी रचनाएं अनुवाद हैं और आपने इस भेद को छिपाकर अपनी भाषा के साथ धोखा किया है।' बड़ी दिलचस्प बात यह है कि इस पत्रिका से जो लेखक संबंधित है वे दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। यदि ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर आसीन लोगों को सत्य की आवश्यकता नहीं है और यदि वे एक सीधे-सादे समाचार को इस प्रकार तोड़ मरोड़ सकते हैं तो साधारण प्रेस से क्या आशा की जा सकती है

कम्यूनिस्ट प्रेस का आम लोगों के प्रेम के स्तर से ऊंचा समझना स्वाभाविक है पर जन-आंदोलन से संबंधित प्रेस, गंभीर और चिंतनशील होने के स्थान पर इस प्रकार का है इसकी एक भयानक मिसाल मेरे सामने है। १ अगस्त १९७५ के दैनिक समाचार पत्र 'लोक लहर' में जिस प्रकार गिरे हुए विचारों का लेख छपा, मेरा खयाल है दुनिया के किसी प्रेस में नहीं छप सकता। मेरी मासिक पत्रिका 'नागमणि' को लचर और अश्लील कहा गया, जिसका कारण यह दिया गया था कि चेकोस्लोवाकिया की दुर्घटना के समय मैंने कविताएं लिखी थीं और मुझे तीन रात नींद नहीं आयी थी और यह लेख जितने भद्दे शब्दों में लिखा गया था वह शायद दुनिया के किसी भी प्रेस में नहीं छप सकता।

सबसे अधिक उदास करने वाली बात यह है कि पंजाबी प्रेस के किसी भी कोने से इस प्रकार के सब कुछ के विरुद्ध आवाज नहीं उठाई जाती

कभी मन भर आता है तो केवल कविता लिख सकती हूं सो लिख लेती हूं, और कुछ भी संभव नहीं है। ऐसे ही किसी क्षण में यह लिखा था—परछावियां नूं पकड़न वालियो ! छाती च बलदी अग्ग दा परछावां नहीं हुंदा।[1]

यह सब कुछ ठीक है पर यही सब कुछ नहीं है। जिस हाथ में भी लेखनी है वह जैसे पृथ्वी की संतान है उसी तरह लेखनी की संतान भी है इसलिए जिनके हाथों में लेखनी है उनका आपस में निकट संबंध है। सती और हरिजन की लेखनी में जो भी शक्ति है वह इसी नाते मुझे अपनी लगती है और इसीलिए उनके प्रति मेरे मन की विरक्ति में एक पीड़ा भी शामिल है एक उदासी भी।

जानती हूं लेखनी के नाते से जन्म मेरे मन के इस अपनत्व को वे लोग

---

१ परछाइयों को पकड़ने वालो ! छाती में जलती हुई आग की परछाईं नहीं होती।

नही समझेंगे। ये मूल्य ये मान उनके मन का हिस्सा नही हैं ये केवल मेरे हैं। यह केवल मैं जानती हू कि केवल वह ही नही, विश्व के किसी भाग म जो कोई भी कलम के धनी हैं वे मेरे हैं—मेरे अतीत का, मेर वतमान का और मेर भविष्य का हिस्सा। मेर मन की अवस्था केवल मरी सीमाओ तक सीमित नही है—न शरीर तक, न काल तक। वह कोई वह भी हो सकते हैं जो मुझसे हजारो साल पहले हुए होंगे, और कोई वह भी जो मुझसे हजारो साल बाद होंगे

देखी, सुनी और बीती घटनाए

जीवन की देखी, सुनी या बीती घटनाए कब और किस प्रकार लेखक की रचना का अश बन जाती हैं—कभी चेतन तौर पर और कभी बिलकुल अचेतन तौर पर—यह किसी हिसाब की पकड म नही आता।

विशेषकर अचेतन तौर पर जो अनुभव किसी रचना का अश बन जाता है, वह कई बार अपनी आखो के लिए भी एक अचभा-सा हो जाता है।

रवीद्रनाथ ठाकुर से जब भेंट हुई थी बहुत छोटी थी। कविताए तब भी लिखती थी पर बचकानी-सी। उन्होंने जब एक कविता सुनाने के लिए कहा तो सकुचाकर सुनायी थी पर उन्होंने जो प्यार और ध्यान दिया था, वह कविता के अनुरूप नही था उनके अपने व्यक्तित्व के अनुरूप था। उसका प्रभाव मुझ पर गहरा हुआ। और फिर जब रवीद्रनाथ ठाकुर की जन्म शताब्दी मनाई जाने वाली थी तब मैंने उन पर एक कविता लिखनी चाही। कुछ पक्तिया लिखी भी, पर तसल्ली नही हुई। फिर मैं मास्को चली गयी (१९६१ म)। वहा जिस होटल म ठहरी थी उसके सामने मायकोस्की का बुत बना हुआ था, और जिस जगह वह होटल था उसका नाम गोर्की स्ट्रीट था।

एक रात की बात—लगभग दस बजे होंगे मैंने होटल की खिडकी से देखा कि एक जनसमूह मायकोस्की के बुत के गिर्द इकट्ठा है। ज्ञात हुआ कि कई नौजवान कवि प्राय रात के समय वहा आकर खडे हो जाते हैं और बुत के चबूतरे पर खडे होकर कभी वे मायकोव्स्की की कोई कविता पढते हैं और कभी अपनी। रास्ता चलते लोग उनके इद गिर्द आकर खडे हो जाते हैं और कविताए सुनते हैं फरमाइशें भी करते हैं और इस प्रकार यह खुला कवि-सम्मलन आधी रात तक चलता रहता है। हवा ठडी लगने लग तो लोग अपने कोटो के कालर ऊपर पलट लेते हैं मेह बरसने लगे तो सिर के ऊपर छतरी तान लेते हैं।

तो मुझे रूसी भाषा का एक भी शब्द समझ म नही आया, पर उनके स्वर की गर्माहट मेरी समझ म जरूर आया। फिर जब मैं अपने कमरे मे लौटी मेर सामने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का चेहरा भी था मायकोव्स्की का भी, और गोर्की का भी— सारे चेहर मिश्रित स हो गए—जस एक हो गए हो—और उस रात रवीन्द्रनाथ ठाकुर वाली कविता पूरी हो गयी —

महरम इलाही हुस्नदी, कासद मनुखी इश्क दी,
एह कलम लाफानी तेरी, सौगात फानी जिस्म दी [१]

'आक के पत्ते' उपन्यास मे उसका मुख्य पात्र जब रोज शाम के समय स्टेशन जाकर आने वाली गाडियो म अपनी खोई हुई बहन का चेहरा ढूढता है तो एक दिन अनायास ही उसके पर उसे अपने गाव वाली गाडी के अन्दर ल जात है। जाडे के दिन, कोई गम कपडा पास नही, वह रात की ठड म गुच्छा-सा बठ जाता है। विचारो म डूबा हुआ उसका मन नीद म भी डूब जाता है। एक स्टेशन पर गाडी रुकती है तो उतरने चढने वाली सवारिया की आहट से वह जाग उठता है। देखता है—उसके एक रजाई लिपटी हुई है एक बडे नम से चेहरे का बूढा आदमी पास की सीट पर बठा हुआ है एक खेस लपटे हुए अपनी रजाई उसे उढाकर। एक दिन अचानक इस उपन्यास का यह अश सामने आया तो याद आया—यह उपन्यास लिखने के चार वष पहले मैं जब रोमानिया से बल्गारिया जा रही थी, रात बहुत ठडी थी पास म अपन कोट के सिवाय कुछ नही था, वही घटने जोडकर ऊपर तान लिया था। फिर भी जब उसे सिर की ओर खीचती थी तो परा को ठिरन लगती थी पैरा पर डालती थी तो सिर और कधा का ठड लगती थी। न जान कब मुझे नीद आ गयी—लगा सारे शरीर म गर्मी आ गयी है। बाकी रात खूब गर्माइश म सोती रही। सवेरे तडके जागी तो देखा—मर डिब्ब म सफर करने वाले एक बल्गारियन आदमी ने अपना ओवरकोट मुझ पर रजाई की तरह डाल दिया था।

यह घटना मैंने चेतन तौर पर इस उपन्यास म नही डाली थी पर लिख चुकने के कितने ही वष बाद जब पढा तो लगा कि उस रात की गर्माइश मेरी रगों म कही एक अमानत की तरह पडी हुई थी।

'यात्री उपन्यास १९५८ मे लिखा था। उसकी एक पात्र सुन्दरा बिलकुल कल्पित थी। मैं उपन्यास के मुख्य पात्र की जन्म-कथा जानती थी, उसके सबध म लिखा भी था— नायक को जानती हू उस दिन से जिस दिन उसे साधुआ के एक

---

१ हमराज दैवी सौन्दय की, सदेशवाहक मानव प्रेम की
यह लखनी अमर तेरी सौगात भगुर देह की

डेरे म चढाया गया था। बहुत बरसो की बात, पर अब भी ध्यान आ जाती है तो बहुत तराश हुए नक्श वाला उसका सावला चेहरा, उसकी सारी उदासी के समेत, आखो के सामने आ जाता है। पर सुन्दरा मेरी कल्पना से निकलकर इस उपन्यास के पृष्ठो म उतरी थी, और मेरी समझ म नही आता था कि सुन्दरा का पात्र चित्रित करते समय मेरी आखें क्या भर भर आती रही थी।

उपन्यास लिखकर सबसे पहले इमरोज को सुनाया था, और सुनाते सुनाते जब सुन्दरा का जिक्र आया, मेरे अपने कलेजे को जैसे किसी ने कचोट लिया। फिर यह उपन्यास हिन्दी म उल्था हुआ। हर अनुवाद छपने से पहले सुना करती हू—इस सुनते समय जब फिर सुन्दरा की बात आयी, मैं बेचैन हो गयी।

उपन्यास हिन्दी म छप गया। तब १९६९ था। पजाबी म दो बरस बाद छपा था—१९७१ म, उसके प्रूफ देखते समय फिर जब सुन्दरा आयी तो मैं व्याकुल हो गयी।

अपने आपको इस अपने दिल म पडने वाली कसक का कुछ पता नही लगता था। पर १९७३ मे जब इस उपन्यास का अग्रेजी म अनुवाद हो रहा था—उस समय जब सुन्दरा सामने आयी तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं स्वय अपनी नब्ज देख रही हू

लेखक के अपने जीवन की घटनाए—उपन्यासो-कहानियो के पात्रो म सदा ढलती हैं छाती के भीतर से उठती हैं कागजो पर जा उतरती हैं। परन्तु यह सुन्दरा उसके विपरीत अनुभव है—यह कागजो म से उठकर मेरी छाती म उतर गयी थी अचानक लगा जैसे घोर अधेरे म एकाएक दीया जल उठे कि यह सुन्दरा मैं हू

मैं को मैंने चेतन तौर पर सुन्दरा म नही ढाला था इसलिए कई बरस तक इसे पहचान नही सकी थी। वह अपना अस्तित्व मुझे भीतर ही भीतर खरोंचता था। मैं मन की तहो को टटोलती थी फिर भी यह पहचान मे नही आता था। पर जब पहचान म आया—तो अपना एक एक विचार तक पहचान म आ गया

सुन्दरा जब मदिर मे जाकर शिव और पार्वती के चरणो पर फूलो की डोली उलटती है ताकि जब वह शिव पार्वती के चरणो पर माथा नवाए तब फूलो के ढेर के नीचे से बाह फैलाकर मूर्तियो के पास खडे हुए अपने प्रिय के पैरो को भी हथेली से छू ले और उसके हाथ पर किसी की नजर भी न पडे तो लगा—यह मैं हू जो अनेक बरस एक चेहरे की इस प्रकार कल्पना करती रही कि अक्षर ही अक्षर फूलो के ढेर की भाति अबार लगा दिए और जिनके नीचे से बाह ले जाकर किसी को इस तरह छू लेना चाहती थी कि ऊपर से किसी देखने वाले को दिखाई न दे।

सुन्दरा बहुत समय तक—चुपचाप—फूल चुनती रही और सबकी चोरी

स अपने प्रिय क पर छूती रही। मैं अनक वर्षों तक कविताओं के अक्षर जोडती रही, और चुपचाप अपने प्रिय के अस्तित्व को छूती रही

सुदरा का प्रिय जीता-जागता था—पत्थर की मूर्ति के समान था, जिसे सुन्दरा के मन का सेंक नही पहुचता था। और मैं भी अनक वर्षों तक सुदरा की जगह पर खडी रही थी—मेरे मन का सेंक भी कही नही पहुचता था एक पत्थर जसा चुप स टकराता था, और सुलगता बुझता फिर मेरे पास ही लौट आता था।

सुन्दरा जब शरीर पर विवाह का जोडा और नाक मे सोने की नथ पहनकर मदिर म अपने प्रिय को अतिम प्रणाम करन क लिए आती है कुछ आसू लुढक-कर उसकी नथ के तार पर अटक जाते हैं—मानो नथ की आखा म आसू भर आए हो—तो यह समूची मैं थी, मेरे हर छाप छल्ल की आखा म इसी तरह आसू भर भर आते थे

आ खुदाया! कभी अपना आप भी अपने से इस तरह छिप छिप जाता है यह अचेतन मन का कैसा खेल है!

पूर ग्यारह वष की नही थी जब मा मर गयी थी। मा की जिन्दगी का आखिरी दिन मुझे पूरी तरह याद है। 'एक सवाल उपन्यास म उपन्यास का नायक जगदीप मरती हुई मा की खाट के पास जिस तरह खडा हुआ है उसी तरह मैं अपनी मरती हुइ मा की खाट के पास खडी हुई थी और मैंने जगदीप की भाति एकाग्र मन होकर ईश्वर से कहा था—'मेरी मा को मत मारो।' और मुझे भी उसी की तरह विश्वास हो गया था कि अब मेरी मा की मृत्यु नही होगी क्योकि ईश्वर बच्चा का कहा नही टालता पर मा की मृत्यु हो गयी, और मेरा भी जगदीप की तरह ईश्वर के ऊपर से विश्वास हट गया।

और जिस तरह जगदीप उस उपन्यास म मा के हाथा की पकाई एक आले म रखी हुई दो सूखी रोटियो को सभालकर अपने पास रख लेता है— इन रोटिया का टुकडे-टुकडे करके कई दिन खाऊगा —उसी प्रकार मैंने उन सूखी हुई रोटिया का पीसकर एक शीशी म रख लिया था

यह सब कुछ मैंने चेतन तौर पर उस उपन्यास म डाला था। पर 'यात्री उपन्यास म महन्त किरपासागर के किसी भी वणन म मैंने चेतन तौर पर अपन पिता की याद को नही डाला था। पर जब बरसो बाद मैंने उस उपन्यास को पढा तो जब महन्त किरपासागर की मृत्यु के बाद उपन्यास का नायक उसकी आवाज का अपन मन म ध्यान करता है तो मुझे लगा—यह मैं स्वय अपन पिता की आवाज का ध्यान कर रही थी— उनकी आवाज म कुछ खास तरह का ऐसा था— नदी क जल क समान, हल्का-सा होत हुए भी बहुत भारी और अपने ही जोर स बहता हुआ। कोई पत्थर ककड पत्ता या हाथा का मैल उसम फेंक दे तो उसस

बेपरवाह उस बहाकर ले जाता या उस परा म फेंककर उसके ऊपर स गुजर जाता। उनकी आवाज एक सीध म चल जाती थी इद गिद की बातें सुनकर कभी रुकती हुई नही लगती थी। साधुआ के डेरा म भी घर-गृहस्थिया की भाति झगडे चमले और नि दा चुगली रचत बसत हैं जान इनक कोना म भी लगत है पर उनकी आवाज नदी के वेग के समान, इस सब-कुछ को बहाकर ल जाती थी और इसकी ओर आख भरकर दखती तक नही थी। यह आवाज दो तरह की थी—एक भारी गहरी और वगवती, दूसरी बहुत सूक्ष्म, उदास और पवन की भाति पवन म मिलती हुई

और उपन्यास म महन्त किरपासागर जिस बात को बार-बार दोहराते हैं याद आया कि वही बोल मरे पिता के हाठा पर हुआ करते थे— मुद्दतें गुजर गयी बेयारो मददगार हुए

महन्त किरपासागर की कहानी का कुछ अश मैंने चेतन तौर पर अपने पिता क एक मित्र साधु के जीवन से लिया था, पर जब महन्त किरपासागर के स्वभाव का वणन किया ता अचेतन तोर पर मुझस अपने ही पिता के स्वभाव का वणन हा गया।

१५ मई १९७३ को जब मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय न डी० लिट० की आनररी डिग्री दी थी मेरे घर लौटने पर देविन्दर ने अपनी जेब म कुछ छिपाते हुए कहा था दीदी ! आज कुछ मन आयी करने को जी कर रहा है, नाराज मत होना। जवाब म मैंने हसकर कहा था 'भाई तुम्हारे मन म जो भी आएगा अच्छा ही होगा'—और दविन्दर न जेब से एक रेशमी रूमाल मिसरी और इक्कीस रुपय निकालकर कहा, दीदी ! तुम्हार पिता या भाई कोई होता ता कुछ न कुछ शगुन करता—यह शगुन उनकी तरफ स

आखें भर आयी और याद आया एक सवाल उपन्यास म जब उपन्यास का नायक अपन पिता की मृत्यु के बाद अपनी भरपूर जवान सौतेली मा का अपने हाथो उसके मन का विवाह करता है और वह जवान लडकी थाली म रोटी डाल कर कहती है— आ ! मा-बेटे साथ खाए' तो वह रोटी का पहला ग्रास तोडते हुए कहता है— पहले यह बताओ कि तुम मेरी मा लगती हो या बहन या बेटी ?
ता उपन्यास का यह अश लिखते समय देविन्दर मरे सामने नही था—पर चौदह बप बाद जब देवि दर न वह रूमाल, वह मिसरी और वे रुपये मरी झोली म डाले, मेरे मन म आया हुआ बोल निरा पूरा वही था—'तुम पहले यह बताओ कि तुम मेरे पिता लगते हा मेरे भाई या मेरे पुत्र ?

एक कहानी पिघलती चट्टान मैंने १९७४ के आरभ मे लिखी थी। तब बिलकुल नही जानती थी कि मेरे अचेतन मन की यह कौन-सी अभिव्यजना है। मैंने इसकी पष्ठभूमि नेपाल के स्वयभू पवत के शिखर पर स्थित एक मदिर

रखा था जहा एक नवयुवती 'राजश्री रात के चौथे पहर म जाती है और वहा पहुचकर दूसरी ओर की ढलान की ओर उतरते हुए वह बसीगा नदी के पथ को पहचान लेती है जिस नदी म कभी दो सौ वर्ष पूर्व उसके वश की एक कुमारी न जीवन से मुक्ति प्राप्त करने का मार्ग खोज लिया था।

राजश्री मन के असमजस म, वही मार्ग चुनती है जो कभी उसके वश की एक कुमारी ने चुना था। साथ ही सोचती है—परा के लिए एक यही रास्ता क्या बना है ?

कहानी आगे बढती है तो राजश्री के मन म एक युग पलटता है। वह स्वय को पहचान जाती है जान जाती है कि किसी एक समय का सत्य हर समय का सत्य नही होता और वह मृत्यु के ढलान की ओर से पैर लौटाकर जीवन की चढाई के रास्ते को पकड लेती है।

पूरे दो वर्ष बीत गए। इस कहानी के पात्र के साथ अपने आपको जोडकर कभी भी नही देखा था कि एक रात को अर्धनिद्रा की अवस्था म, मेरे जीवन का समय चक्र लगभग पतीस बरस पीछे चला गया और मैंने देखा—मैं मुश्किल से कोई बीस बरस की हू गुजरावाला गयी हू, उसी गली उसी घर म जहा कभी मेरी पिता की बहन हाकी तहखाने म उतरकर चालीसा काटते हुए मर गयी थी।

कानो म वही आवाज आयी पतीस बरस पहले की जब मुझे देखकर गली की जीवी' नाम की भक्तिन जो पहले तो भुचे देखती रह गयी थी, फिर अपने चकित चेहरे पर हाथ रखकर बोली थी— हाय, मैं मर गयी! बिलकुल वही,वही हाको वसी की वसी '

उस गली म मेरी बूआ हाकी के समय की यही एक स्त्री थी जो अभी तक जीवित थी। उसने यह कहा तो मैंने शीशे मे अपने चेहरे को देखकर पहली बार हाको के चेहरे की कल्पना की यू तो अपनी बूआ की सूरत से मेरी सूरत का मिल जाना एक स्वाभाविक बात हो सकती थी पर लगा यह प्रकृति का कोई रहस्य है शायद होनी का सकेत। मैं उस समय मन की गहरी परशानी से गुजर रही थी। ब्याह हो चुका था, पर मन उखडा उखडा था। अपने चेहरे म हाको का चेहरा देखा तो आखें भर आयी। लगा हाको का अत ही मेरा अत है

वही दिन थे जब मैंने मरना नही, जीना चाहा। तडपकर सोचा— परा के लिए एक यही रास्ता क्या बना है?' और फिर तडपकर फैसला किया—मैं हाको की तरह मरूगी नही जीऊगी '

जन्मो की बात नही जानती थी पर सोचा जीवी भक्तिन के कहे अनुसार यदि यह सच भी है कि पिछले जन्म म मैं ही हाको थी तब भी इस जन्म म उस तरह मरूगी नही

पर यह आपबीती मुझे १९७४ म कहानी पिघलती चट्टान' लिखते समय

चेतन तौर पर बिलकुल याद नही थी। मेरा अवेतन मन न जाने किस समय ऊपर आकर यह कहानी लिखवा गया और फिर, मेरी आखा से भी अपन आप का चुराता हुआ मन की तहो म उतरकर अलोप हो गया

कुछ घटनाए बहुत ही थोडे समय के बाद रचना का अग बन जाती हैं पर कुछ घटनाओ को कलम तक पहुचन के लिए बरसो का फासला तय करना पडता है। पहली तरह की घटनाओ म मुझे एक याद है जब मैं १९६० म नपाल गयी थी। लगभग पाच दिन तक रोज शाम के समय किसी न किसी घर म कवि सम्मलन होता था जहा कुछ नपाली कवि रोज मिल जाते थे। उनम एक कवि थ चढती जवानी म किन्तु बहुत ही गभीर स्वभाव के। मैंने केवल इतना ही जाना था कि वह रोज धीरे स मेरी एक खास कविता की फरमाइश अवश्य करत थ इसस ज्यादा कुछ नही। पर जिस दिन वापस दिल्ली आना था, और कई कवियो के साथ वह भी एयरपोट आए थे और सयोग था कि उस दिन प्लेन एक घटे लेट था प्रतीक्षा क सारे समय में वह मेरा भारी गम कोट उठाए रहे। फिर प्लेन के आन पर जब मैं उनसे काट लेन लगी तो उन्होने धीरे से कहा— यह जो भार दिखाई देता है यह तो आप ले लीजिए जो नही दिखाई दता वह मैं लिय रहूगा और मैं बस चौंक सी गयी थी। दिल्ली पहुचकर एक कहानी लिखा हुकारा —उनके बारे म नही पर यह वाक्य अनायास ही उस कहानी में आ गया।

अब दूसरे प्रकार की घटना जो कलम तक पहुचने में बरसो लगा देती है—उसका एक उदाहरण मेरी कहानी दो औरतें है जिसम एक औरत शाहनी है और दूसरी एक वेश्या शाह की रखेल। यह सारी घटना लाहौर में आखा क सामने होती हुई देखी थी। वहा एक धना परिवार के लडके का ब्याह था और घर की लडकी वालिया गा बजा रही थी। उस परिवार से मामूली-सा परिचय था। उस समय मैं भी वहा थी जब यह पता चला कि लाहौर की प्रसिद्ध गायिका तमचा जान वहा आ रही है। वह आयी—बडी ही छबीली नाज-नखरे स आयी। उस देखकर एक बार तो घर की मालकिन का रग हल्दी जसा पीला पड गया। पर आखिर वह थी तो लडके की मा—तमचा जान जब गा चुकी तब शाहनी न सौ का नोट निकालकर उसके आचल म खरात की तरह डाल दिया। इस समय नाज नखरे वाली हैसियत मिटन जसी हो आयी पर अपना गरूर कायम रखने के लिए औरता की उस भरी मजलिस में बोली — रहने दो शाहनी ! आग भी तो इस घर का ही खाती है और इस प्रकार शाह से नाता जोडकर जसे उसन शाहनी को छोटा कर दिया। मैंने देखा शाहनी औरतो की उस भरी मजलिस में एक बार खिसियानी सी हई पर फिर सभलकर लापरवाही से नोट का तमचा

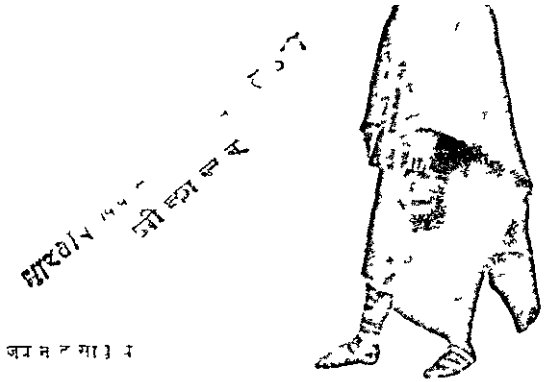

अमृता के पिता जब ब्रह्म समाजी थे

अमृता के पिता सरदार करतारसिंह हितकारी

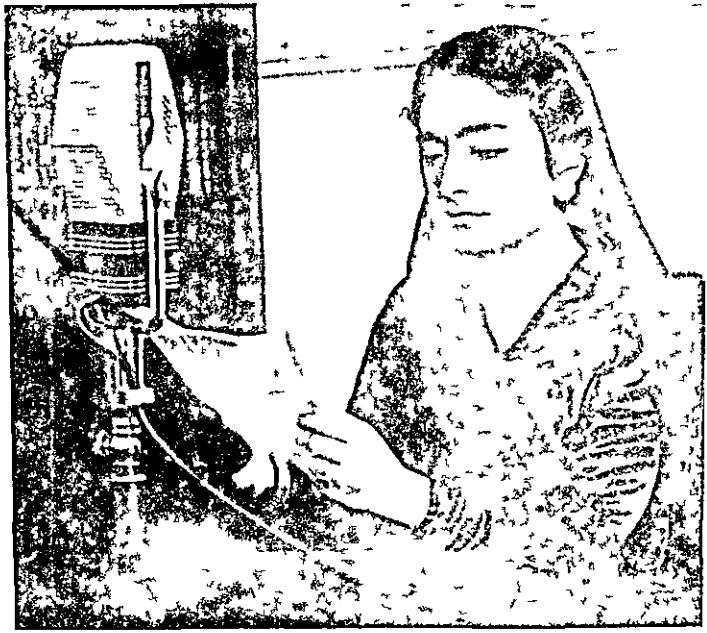

अमृता १९३८ (स्थान आल इण्डिया रेडियो लाहौर का स्टूडियो)

अमृता और पाब्लो नेरूदा की कविता १९४६

यमुना (स्थान[ ]आत रुपिया रुपिया लाहौर का स्टूडियो)

यमुना और एक वर्ष का नवराज १९४८

अमृता (स्थान जाने घर रहिया स्टेशन का स्टूडियो)

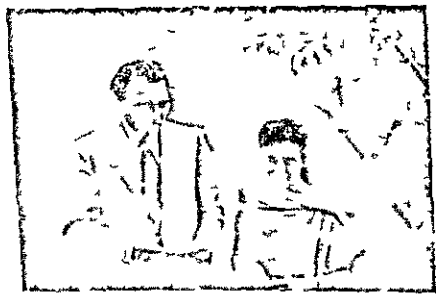

साहिर और अमृता

त्रिवेणी रंडिया के चौदह भाषाओं के पहले कवि सम्मेलन के समय

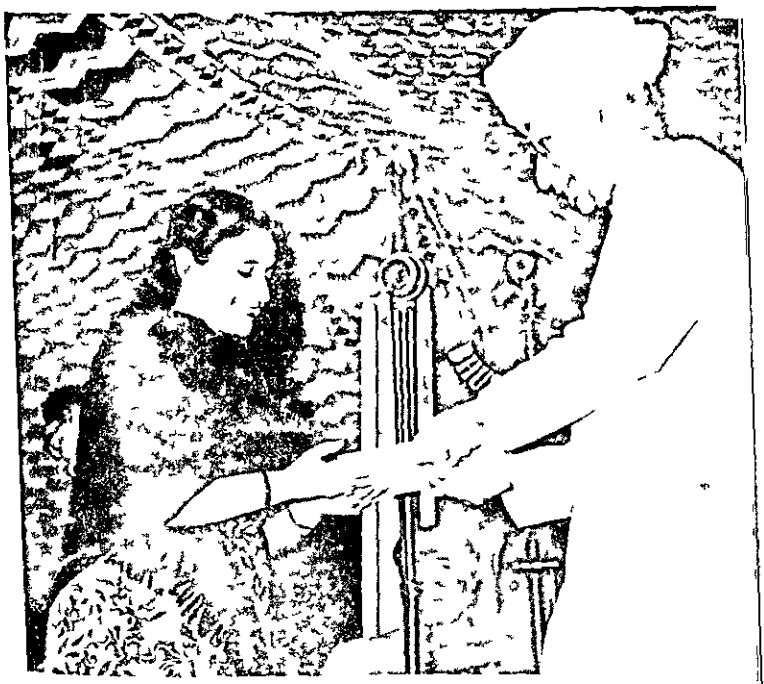

साहित्य अकादमी पुरस्कार के समय १९५६

अमृता (स्थान दिल्ली रडिया स्टेशन का स्टूडियो)

नवराज

अमृता १९८९

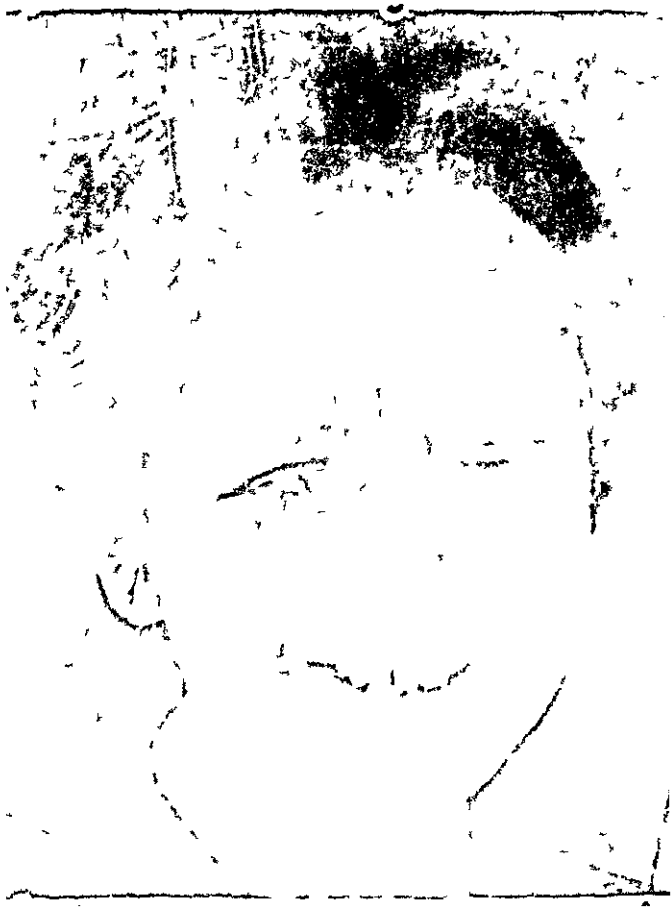

नेपाल में १९६०

उज़बेकिस्तान का फरगाना वाला में १९६१

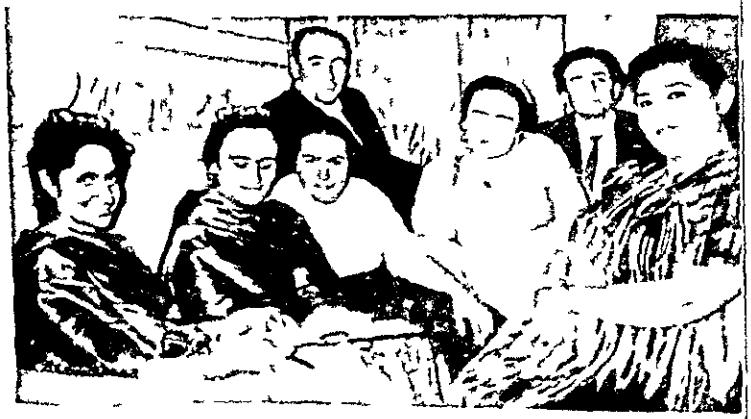

मिर्जा तुमनजाने और अमृता १९६० (स्थान ताजिकिस्तान)
इराकना आया शीन्ज और अमृता १९९६ (स्थान जाजिया का हवाई अड्डा)

यूगाण्डा विधान सभा में आचार्यश्री का अभिनन्दन समारोह १९६७

नगरी म १९७०

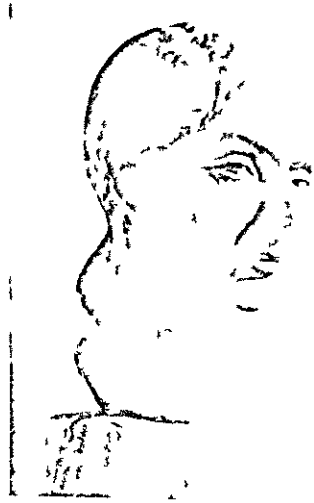

बंगारिया में चित्रकार
एनानिया बाबंदा का
बनाया हुआ
अमृता का चित्र

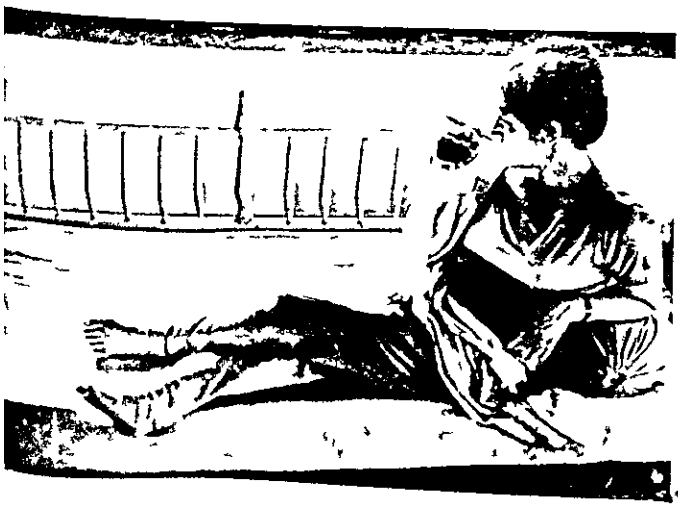

अमृता

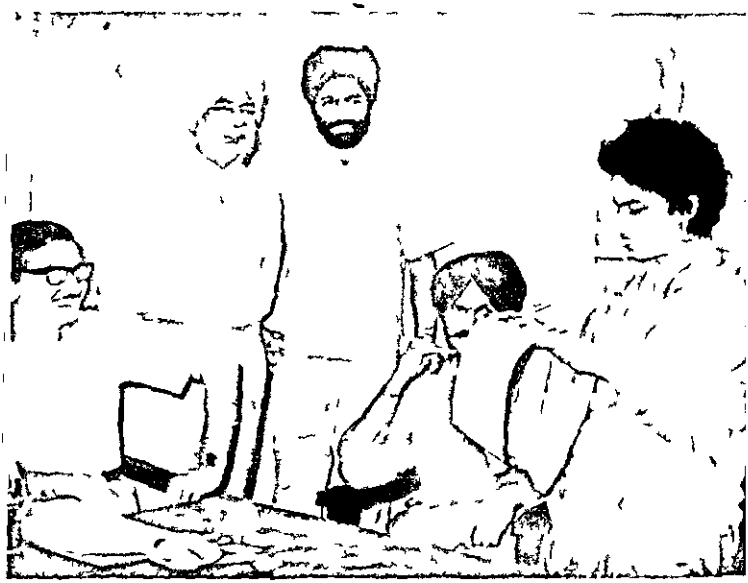

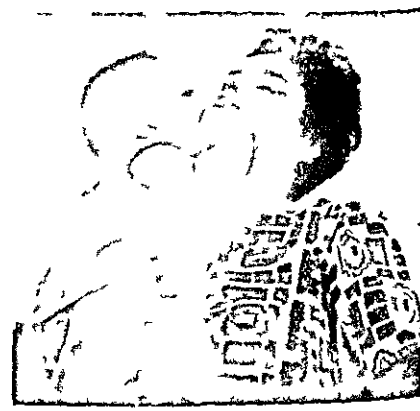

कल्पना और उसका पहला बच्चा कार्तिक

अमृता १९७२

नवराज के विवाह
के अवसर पर
७ फरवरी १९७२

दिल्ली विश्वविद्यालय की आर्ट फैकल्टी के डिग्री के समय
१४ मार्च, १९७३

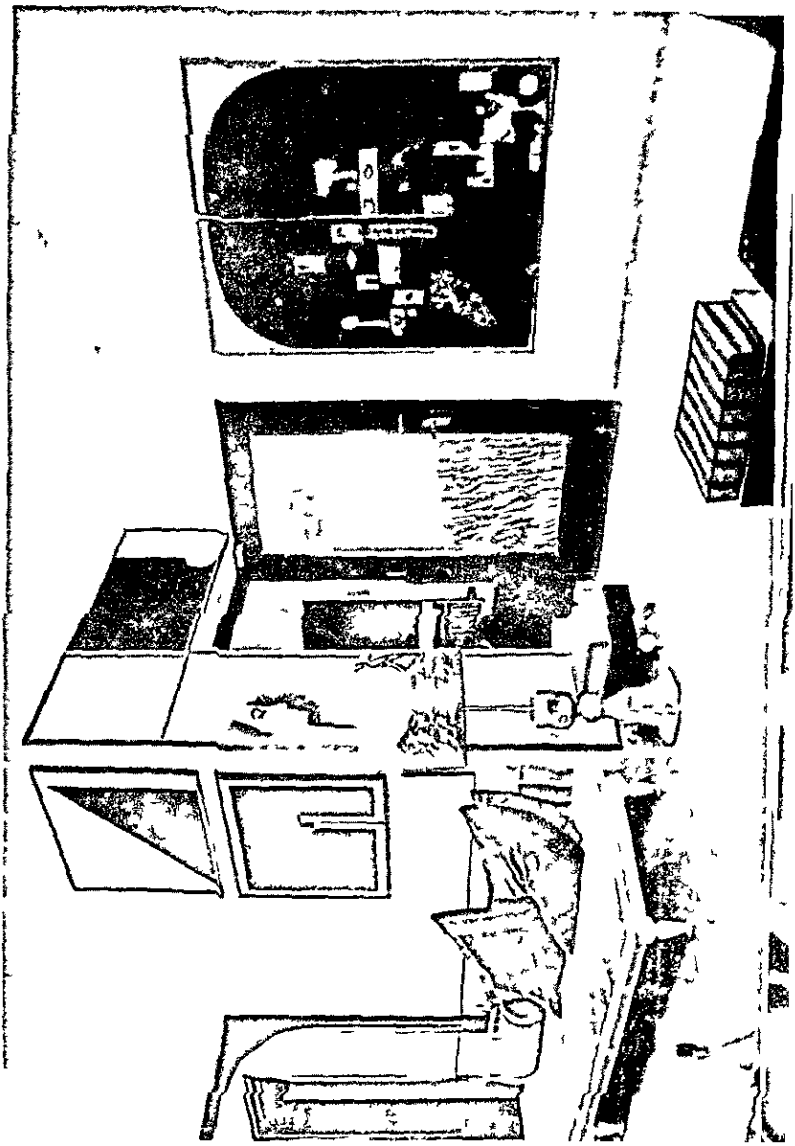

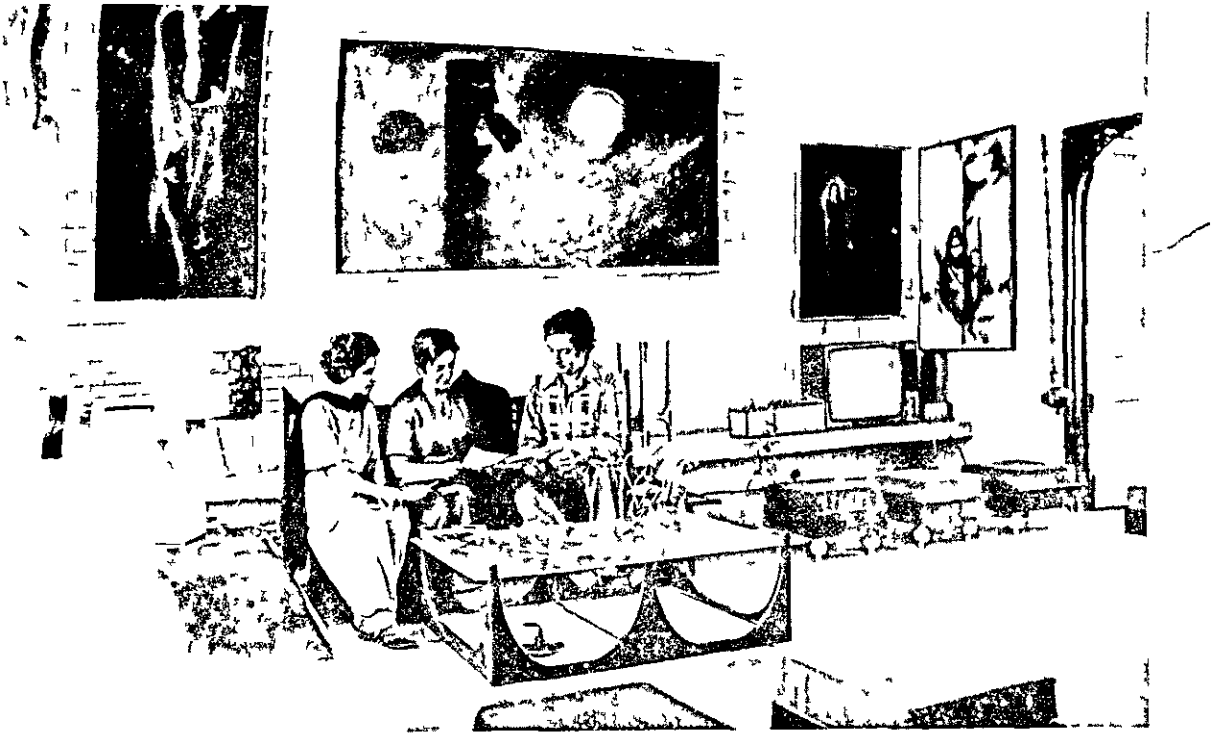

यमुना और यमराज

यह दो औरतों का अजीब टकराव था, जिसकी पृष्ठभूमि में सामाजिक मूल्य थे। उनमें चाह लाख तूफान थी, छबीली थी, कलाकार थी, और शाहनी मानो और दुनिया की आयु की थी और हर प्रकार से उस दूसरी के सामने साधारण थी, उसके पास पत्नी और मां होने का जो मान था, वह बाजार की सुन्दरता पर भारी था

पर यह कहानी मैं पूरे पचीस वर्ष बाद लिख पायी।

१९७५ में मेरे उपन्यास 'धरती सागर और सीपियां' के आधार पर जब कादम्बरी फिल्म बन रही थी तो उसके डायरेक्टर ने मुझसे फिल्म का एक गीत लिखने के लिए कहा। अवसर वह बताया जब चेतना सामाजिक चलन के खयाल को हाथ से परे हटाकर अपने प्रिय को अपने मन में और तन में हासिल कर लेती है। और इस मिलन और दर्द के स्थल पर खड़ी चेतना को सामने रखकर मैं जब गीत लिखने लगी तो अचानक वह गीत सामने आ गया जो मैंने १९६० में इमरोज से पहली बार मिलने पर अपने मन की दशा के बारे में लिखा था। जो दशा मैंने अपने मन पर भोगी थी, लगा, वही अब चेतना को भोगनी है और उस गीत से अच्छा कुछ और नहीं लिखा जा सकता। सो मैं अपने पंजाबी गीत को हिन्दी में अनुवाद करने लगी। तब मुझे लगा जैसे चेतना के रूप में मैं पन्द्रह बरस पहले की वह घड़ी फिर से जी रही हूं—

अम्बर की एक पाक सुराही, बादल का एक जाम उठाकर
घूंट चांदनी पी है हमने, बात कुफ्र की की है हमने
कस इसका बस चुकाए सांस के अपनी मौत के हाथों
यह जो जिन्दगी जी है हमने बात कुफ्र की की है हमने
अपना इसमें कुछ भी नहीं है, रोज़े अज़ल से उसकी अमानत
उसको वही तो दी है हमने बात कुफ्र की की है हमने

नीना मेरे आपने उपन्यास की कल्पित पात्र थी पर उसे लिखते हुए उसके नख-शिख मेरे मन में इस तरह उभर आए थे कि एक दिन वह मेरे सपने में आ गयी। बहुत गुस्से में पहले चुपचाप मेरे पास आकर खड़ी रही फिर तड़पकर कहने लगी तुमने मेरा अन्त इतना दुखान्त क्यों बनाया? क्यों? अगर मैं जीवित रहती तुम्हारा क्या हरज होता? तुमने मुझे क्यों मरने दिया? क्यों? मैं जीना चाहती थी'

उपन्यास में एक जगह नीना कहती है मेरी मां भी सुखी न हो सकी वह शायद मैं ही थी पहले जन्म में और अब मैं सुखी न हो सकी दूसरे जन्म में, शायद अपनी पुत्री के रूप में सुखी होऊंगी—तीसरे जन्म में' यह जन्मों की बात मैंने किसी जन्म में विश्वास के कारण नहीं लिखी थी केवल तीन पीढ़ियों की बात को प्रतीकात्मक रूप में ढाला था। पर यह बात मेरी पाठक लड़कियों में

एक के मन में इतनी गहरी बैठ गयी कि उसने अपने आपको नीना समझ लिया और यह विश्वास भी कर लिया कि वह मरकर तीसरे जन्म में जाएगी तो सुखी होगी वह मुझे पत्र लिखती पर अपने नाम और पते के बिना, केवल इतना ही लिखती मैं आपके उपन्यास की नीना हूं —मैं उस इस वहम से निकालना चाहती थी, कि वह इस कहानी में अपनी किस्मत की परछाइं न देखे। पर कमबख्त ने कभी भी मुझे अपना पता नहीं लिखा। मैं नहीं जानती उसके साथ जिंदगी में फिर क्या हुआ

इसी प्रकार उपन्यासा कहानियों के कई पात्र पाठकों के लिए इतने सजीव हो उठते हैं कि वे पत्रों में मुझे लिखते हैं—वह ऐना वह अलका वह अनीता जहां भी है उसे प्यार देना

'एक थी अनीता' उपन्यास जब उर्दू में छपा तो हैदराबाद से वेश्या घराने की एक औरत ने मुझे पत्र लिखा कि वह उसकी कहानी है। उसकी आत्मा भी उसी प्रकार पवित्र है उसकी जिज्ञासा भी वही है केवल घटनाएं भिन्न हैं। और उसने अपना नाम पता बताकर लिखा कि अगर मैं उसकी कहानी लिखना चाहूं तो वह कुछ दिनों के लिए दिल्ली आ सकती है। मैंने उसे पत्र लिखा पर उसके बाद कभी उसका पत्र नहीं आया न जाने उस इतनी संवेदनशील औरत का क्या हुआ।

हां एरियल नावलेट की मुख्य पात्रा मेरे पास आकर लगभग डेढ़ महीने मेरे घर पर रही थी ताकि मैं उसकी जिन्दगी पर कुछ लिख सकूं। नावलेट लिखकर पहले उसे सुनाया था। इस रीडिंग के समय उसकी आंखों में कई बार संतोष के आंसू आए। इस प्रकार अगर किसी व्यक्ति विशेष पर कहानी या उपन्यास लिखूं तो उस पात्र की तसल्ली मेरे लिए कहानी छपने से अधिक जरूरी होती है। मेरा विश्वास है कि रचना मानव जीवन के अध्ययन के लिए है न कि कुछ लोगों को दुखाने के लिए या उनके बारे में चौंकाने वाली अफवाहें फैलाने के लिए जैसा कि हमारे कुछ पंजाबी लेखक करते हैं।

बुलावा नावलेट मैंने बम्बई के प्रसिद्ध कलाकार फिदा के जीवन पर लिखा था। उन्होंने रेस के घोड़ों पर केवल पैसा ही नहीं लगाया अपना सारा जीवन लगा दिया है। उनकी कला और उनका यह घातक शौक दोनों परस्पर विरोधी दिशाएं हैं। इसी खींच तान में पड़े हुए उनके जीवन के आवारा वर्षों की कथा लिखने की कोशिश की थी। पर लिखकर सबसे पहले यह नॉवलेट उन्हें ही सुनाया और उनकी अनुमति लेकर प्रेस में दिया।

इसी प्रकार कई कहानियां हैं। एक विदेशी देश के राजदूत की बड़ी प्यारी और उदास पत्नी पर लिखी थी जिसे उसके पढ़ने के लिए पहले अंग्रेजी में अनुवाद करवाया और फिर उसकी अनुमति लेकर प्रेस में दिया। दो-तीन कहानियां मैंने अपनी एक बहुत अच्छी दोस्त की जिंदगी पर लिखी हैं उसकी

जिन्दगी के बड़े नाजुक वक्त के बारे में—पर छापने से पहले उसे सुनाई उसके कहने के अनुसार शहरों और पात्रों के नाम भी इस तरह बदले कि कोई उसका नजदीकी रिश्तेदार भी पहचान न सके।

एक कहानी एक विदेशी औरत पर भी लिखी थी—उसमें कहानी का अन्त बदलना पड़ा था। कहानी में उसकी मृत्यु हो जाती है। पर वर्षों बाद मैं उसके देश गयी तो वह दौड़कर गले लगकर मिली। उसके पहले शब्द थे, 'देखो, मैं अभी भी जिन्दा हूं। कहानी की मृत्यु में से गुजरकर भी जिन्दा हूं।' और उस दिन हम दोनों ने साथ-साथ तसवीरें खिंचवाईं। उसने अपने देश में मेरे लिए कई सौगातें खरीदीं।

सच में, मेरे पात्र और उनका मेरे लिए प्यार मेरी असली अमीरी है। मैं नहीं जानती कि जो लेखक अपने पात्रों के दिलों को दुखाकर कहानियां गढ़ते हैं, उन्हें जिन्दगी में क्या हासिल होता है।

उपन्यास 'जेबकतरे' जब लिख रही थी तो उसमें जेल में पड़ा हुआ एक पात्र तनवीर एक कविता लिखकर किसी प्रकार जेल के बाहर भिजवाता है और कविता के नीचे अपने नाम के स्थान पर कैदी नम्बर लिखता है—६८९१९।

मैंने यह नम्बर अचेतन रूप से लिखा तो याद आया कि यह गोर्की का नम्बर था जब वह कैद में था जो मैंने मास्को में उसके स्मारक को देखते समय कभी अपनी डायरी में नोट कर लिया था। फिर आगे उपन्यास की कहानी में मैंने उसे चेतन तौर पर बरत लिया

हां, इस प्रकार कभी यह मालूम नहीं होता कि चेतन और अचेतन रचनाएं कब और कहां मिल जाती हैं।

उपन्यास 'जेबकतरे' मैंने अपने युवा होते हुए पुत्र के जीवन के आधार पर लिखा था। इससे पहले एक कहानी लिखी थी कहानी दर कहानी जिसकी घटना यह थी कि एक बार छुट्टियों में होस्टल से घर आए हुए मेरे बेटे ने अपनी एक बंगालिन दोस्त को पत्र लिखा बड़े एहसास के साथ कि इस समय मेरे कमरे में बेथोवन का संगीत है और मैं तुम्हें पत्र लिख रहा हूं, पर तुम्हें पत्र लिखना ऐसा है जैसे कोई अपने ही घर का दरवाजा खटखटा रहा हो उत्तर में उस लड़की का जो पत्र आया वह बहुत साधारण था। शाम का गहरा अंधेरा था जिस समय वह एक कागज लिये मेरे कमरे में आया। मैं उस समय तक न उस पत्र के बारे में जानती थी जो उसने लिखा था और न उसके बारे में जो उत्तर में आया था। उसने कहा, मामा, मैंने एक लड़की को एक खत लिखा था पर उसका समझ में ही नहीं आया। वह आपको सुनाऊं? और उसने मुझे वह खत सुनाया। खत की रफ कॉपी उसके पास थी। फिर कहने लगा जवाब में जो खत आया है वह ऐसा है जैसे मौसम का हाल लिखा हो। मैंने पूछा अब उस

और खत लिखना चाहोगे ?' तो वह कहने लगा 'नहीं उसका खत इतना साधारण है पढ़कर लगता है जैसे मैं मुख्य दरवाजे से अन्दर गया और पीछे के दरवाजे से बाहर आ गया।' और मैंने कुछ दिनों बाद इसी छोटी सी बात के आधार पर एक कहानी लिखी थी। पर अब जब उपन्यास लिखा तो उसका क्षेत्र बहुत बड़ा था उसमें यूनिवर्सिटी के होस्टल का जो वातावरण है वह मेरे अपने लड़के के दोस्त हैं जवान हो रहे स्वप्नों से चौंकते हुए भूख भय और समय से फटते हुए—जीवन को अपने-अपने कोण से देखते हुए और अपनी अपनी अनुभूति की पीड़ा को झेलते हुए

बुनियादी घटनाएं मेरे पुत्र के और उसके मित्रों के जीवन की हैं। पर यह अपने से आगे की पीढ़ी को समझाने का यत्न था। इसमें मैंने अपने आपको चाहे एक दर्शक के समान रखा था फिर भी अचेतन तौर पर इसके अनेक विचारों में समा जाना स्वाभाविक था। जब मैंने इसे लिखकर अपने बेटे को पढ़ने के लिए दिया तो चाहे उससे भी पहले उसके मित्रों ने इसे पढ़ा वे अपना चेहरा पहचानते रहे और मुझे कम्प्लीमेंट देते रहे पर जब मेरे लड़के ने पढ़ा कई स्थानों पर बहुत कुशलतापूर्वक लिखने पर कम्प्लीमेंट भी दिया पर कहा—अगर यह उपन्यास मैं लिखता तो कुछ और ही तरह लिखता।' यह ठीक है—आखिर मेरे लिए यह एक पूरी पीढ़ी के फासले को लांघने का यत्न था पर फासले को लांघने बाद पैर अपने थे पहली पीढ़ी के इसलिए मेरे समय के आदर्शवाद का उसमें घुल जाना स्वाभाविक था

इस उपन्यास के जिन सविता और रवि का विवाह मैंने विस्तार-सहित लिखा है व उपन्यास छपने के कई वर्ष बाद मेरे पुत्र से मिलने आए मुझसे भी मिले। वे किताब में छपे हुए अपने विवाह के वर्णन को पढ़कर हंसते रहे और मैं अपने पात्रों को देखती रही अब उनके एक प्यारा-सा बच्चा भी था, उनके घबराकर किये हुए विवाह की परिपूर्ति

खैर अपने पात्रों को इस प्रकार देखना जो एक प्यारा अनुभव है, वह एक अलग बात है। मैं उपन्यास के लेखन काल की बात कर रही थी। इसका विचार उस पत्र में बंधा था जो मेरे पुत्र ने मुझे होस्टल से लिखा था। उपन्यास में यह पत्र पांचवें परिच्छेद के आरंभ में है जिसमें उपन्यास का मुख्य पात्र कपिल पत्र को समाचारपत्र का रूप देता उसका नाम 'द टाइम्स ऑफ कपिल' रखता है और समाचारपत्र के जारी होने की वह तारीख लिखता है जो उसके अपने जन्म की तारीख है और इस समाचारपत्र की बिक्री सबसे अधिक जिस शहर में होनी है वहां अपनी मां का एड्रेस लिखता है। फिर समाचारपत्र के छह कॉलम बनाता है जिनमें खबरों की शक्ल में मां को पत्र लिखता है

मेरे लड़के का नाम नवराज है। पर उस प्यार में 'सलो' भी पुकारते हैं। मेरे

पास उसका वह पत्र 'द टाइम्स ऑफ मली' अभी तक रखा हुआ है

वह हास्टल में जब भी छुट्टियों में घर आता था, हास्टल की बहुत सी बातें बड़े विस्तार से सुनाया करता था। उस पत्र के बारे जब वह आया तो मैंने, उपन्यास शुरू करने से पहले उसे पास बिठाकर नोटस लेने शुरू किये

फिर जब उपन्यास शुरू किया, तो एक बार उसने कहा— मामा ! आपने अपनी जिन्दगी का नया मोड़ दिया, पर क्या आप जानती हैं हम दोनों बच्चों ने इसके लिए कितना मुश्किल सफर किया है ?'

घर टूटता है तो मासूम बच्चे टूटते हुए घर के कबाड़ों को किस तरह अपने शरीर पर झेलते हैं इसकी पीड़ा मेरे मन में थी। कहा— जैसे गरीब मां के घर जन्मे बच्चों को मां की गरीबी भुगतनी पड़ती है, उसी तरह मन की पीड़ा में से गुजरती हुई मां के घर जन्मे बच्चों को उसकी पीड़ा भी भुगतनी पड़ती है—मां के मन-नक्शे की तरह '

जानती हूं—इस पीड़ा को मेरे बच्चों ने भुगता है, पर मेरी लड़की ने सारे समय की लम्बाई में कभी भी मेरे साथ हमदर्दी नहीं छोड़ी पर पुत्र ने कुछ समय के लिए जरूर छोड़ दी थी बचपन से लेकर जवान होने तक के समय में। यह शायद एक के लड़का और एक के लड़की होने का अन्तर था। आज भी मेरी नन्हीं सी अनजान-सी बेटी के वे बोल मेरे कानों में हैं। जब नवराज की किसी समय की बेरुखी से मैं उदास हो जाती थी तो कदला कहा करती थी— मामा ! आप बेकार सोचा न करें सभी बड़ा हो जाएगा तो अपने आप ठीक हो जाएगा।'

एक उस दिन मेरे बेटे ने कहा— मामा ! इस उपन्यास में आप उस बच्चे की परेशानी लिख सकती हैं जो मां-बाप का घर टूटने पर वह भुगतता है ?'

हां पूरी जुरअत के साथ —मैंने कहा, और उपन्यास के अंतिम भाग में कपिल के मिड नाइट विजन की शक्ल में उस परेशानी को लिखने की कोशिश की

मेरे मन का केवल उन्होंने दुखाया है जिनका मेरी जिन्दगी से कोई वास्ता नहीं था। उनके साथ केवल एक ही दुर्घटनात्मक संबंध था कि मैं उनकी समकालीन लेखिका थी। वे न मेरे पाठक थे और न वे जिन्होंने इस पीड़ा में से अपनी अपनी मुट्ठी भरनी थी।

कदला ने जिससे विवाह किया है वह मुझे दीदी मां कहकर बुलाता है और उसके मन का यह पहला फैसला था कि वह विवाह के समय दूर पास के लोगों की बारात नहीं जाएगा और न किसी बेतुकी बात या हरकत के लिए किसी को कोई मौका देगा। विवाह की पशकश के समय का उसका एक प्यारा-सा जैस्चर मुझे अभी भी याद है। मेरे सिरहाने के पास एक होम्योपैथिक दवा की शीशी पड़ी हुई थी। उसने उसमें से दो चार मीठी गोलियां खाकर कहा— बस मुंह मीठा

और खत लिखना चाहोगे ?' तो वह कहने लगा 'नहीं, उसका खत इतना साधारण है पढ़कर लगता है जैसे मैं मुख्य दरवाज़े से अन्दर गया और पीछे के दरवाज़े से बाहर आ गया। और मैंने कुछ दिनों बाद इसी छोटी सी बात के आधार पर एक कहानी लिखी थी। पर अब जब उपन्यास लिखा तो उसका क्षेत्र बहुत बड़ा था उसमें यूनिवर्सिटी के होस्टल का जो वातावरण है वह मेरे अपने लड़के के दोस्त हैं, जवान हो रहे स्वप्नों से चौंकते हुए भूख, भय और समय से फनटे करते हुए—जीवन को अपने अपने कोण से देखते हुए और अपनी अपनी अनुभूति की पीड़ा को झेलते हुए

बुनियादी घटनाएं मेरे पुत्र के और उसके मित्रों के जीवन की हैं। पर यह अपने से आगे की पीढ़ी को समझाने का यत्न था। इसमें मैंने अपने आपको चाहे एक दर्शक के समान रखा था फिर भी अचेतन तौर पर इसके अनेक विचारों में समा जाना स्वाभाविक था। जब मैंने इसे लिखकर अपने बेटे को पढ़ने के लिए दिया तो चाहे उससे भी पहले उसके मित्रों ने इसे पढ़ा वे अपना चेहरा पहचानते रहे और मुझे कम्पलीमेंट देते रहे पर जब मेरे लड़के ने पढ़ा कई स्थानों पर बहुत कुशलतापूर्वक लिखने पर कम्पलीमेंट भी दिया पर कहा— अगर यह उपन्यास मैं लिखता तो कुछ और ही तरह लिखता। यह ठीक है—आखिर मेरे लिए यह एक पूरी पीढ़ी के फासले को नापने का यत्न था पर फासले को नापने वाले पर अपने ये पहली पीढ़ी के इसलिए मेरे समय के आदर्शवाद का उसमें घुल जाना स्वाभाविक था

इस उपन्यास के जिन सविता और रवि का विवाह मैंने विस्तार-सहित लिखा है वे उपन्यास छपने के कई वर्ष बाद मेरे पुत्र से मिलने आए मुझसे भी मिले। वे किताब में छपे हुए अपने विवाह के वर्णन को पढ़कर हंसते रहे और मैं अपने पात्रों को देखती रही अब उनके एक प्यारा सा बच्चा भी था, उनके घबराकर किये हुए विवाह की परिपुष्टि

खैर अपने पात्रों को इस प्रकार देखना जो एक प्यारा अनुभव है वह एक अलग बात है। मैं उपन्यास के लेखन-काल की बात कर रही थी। इसका विचार उस पत्र से बंधा था जो मेरे पुत्र ने मुझे होस्टल से लिखा था। उपन्यास में यह पत्र पांचवें परिच्छेद के आरंभ में है जिसमें उपन्यास का मुख्य पात्र कपिल पत्र को समाचारपत्र का रूप देता है उसका नाम 'द टाइम्स ऑफ कपिल' रखता है और समाचारपत्र के छपने की वह तारीख लिखता है जो उसके अपने जन्म की तारीख है और इस समाचारपत्र की प्रिंटें सबसे अधिक जिस शहर में होती हैं, वहां अपनी मां को ऐक्स लिखता है। फिर समाचारपत्र के छह कालम बनाता है, जिनमें खबरों की शक्ल में मां को पत्र लिखता है

मेरे लड़के का नाम नवराज है। पर उसे प्यार से सभी पुकारते हैं। मेरे

पास उसका वह पत्र 'द टाइम्स ऑफ सनी' अभी तक रखा हुआ है

वह हास्टल से जब भी छुट्टियों में घर आता था, हास्टल की बहुत सी बातें बड़े विस्तार से सुनाया करता था। उस पत्र के बाद जब वह आया तो मैंने, उपन्यास शुरू करने से पहले उसे पास बिठाकर नोटस लेने शुरू किये

फिर जब उपन्यास शुरू किया, तो एक बार उसने कहा— मामा ! आपने अपनी जिन्दगी को नया मोड़ दिया, पर क्या आप जानती हैं हम दोनों बच्चों ने इसके लिए कितना मुश्किल सफर किया है ?

घर टूटता है तो मासूम बच्चे टूटते हुए घर के कड़वाहट को किस तरह अपने शरीर पर झेलते हैं इसकी पीड़ा मेरे मन में थी। कहा—'जैसे गरीब मां के घर जन्मे बच्चों को मां की गरीबी भुगतनी पड़ती है, उसी तरह मन की पीड़ा में से गुजरती हुई मां के घर जन्मे बच्चों को उसकी पीड़ा भी भुगतनी पड़ती है—मां के तन नक्शों की तरह'

जानती हूं—इस पीड़ा को मेरे बच्चों ने भुगता है पर मेरी लड़की ने सारे समय की लम्बाई में कभी भी मेरे साथ हमदर्दी नहीं छोड़ी पर पुत्र ने कुछ समय के लिए जरूर छोड़ दी थी, बचपन से लेकर जवान होने तक के समय में। यह शायद एक के लड़का और एक के लड़की होने का अंतर था। आज भी मेरी नन्ही सी अनजान-सी बेटी के वे बोल मेरे कानों में हैं। जब नवराज की किसी समय की बेरुखी से मैं उदास हो जाती थी तो कदला कहा करती थी— मामा ! आप बहुत भोला न करें सनी बड़ा हो जाएगा तो अपने आप ठीक हो जाएगा।'

खैर, उस दिन मेरे बेटे ने कहा— मामा ! इस उपन्यास में आप उस बच्चे की परेशानी लिख सकती हैं जो मां बाप का घर टूटने पर वह भुगतता है ?'

हां पूरी जुरअत के साथ —मैंने कहा और उपन्यास के अंतिम भाग में कपिल के मिड नाइट विजन की शक्ल में उस परेशानी को लिखने की कोशिश की

मेरे मन को केवल उन्होंने दुखाया है जिनका मेरी जिन्दगी से कोई वास्ता नहीं था। उनके साथ केवल एक ही दुःखांत का संबंध था कि मैं उनकी समकालीन लेखिका थी। वे न मेरे पाठक थे और न वे जिन्होंने इस पीड़ा में से अपनी अपनी मुक्ति मांगनी थी।

कदला ने जिससे विवाह किया है वह मुझे 'दीदी मां' कहकर बुलाता है, और उसके मन का यह पहला फैसला था कि वह विवाह के समय दर पास के लोगों का दामन नहीं जोड़ेगा और न किसी बेतुकी बात या हरकत के लिए किसी को याद भी करेगा। विवाह की पशमकश के समय का उसका एक प्यारा सा जुमला मुझे अभी भी याद है। मेरे सिरहाने के पास एक होम्योपैथिक दवा की शीशी पड़ी थी। उसने उसमें से दो चार मीठी गोलियां खाकर कहा— बस मुंह मीठा

हो गया, शगुन हो गया।' और इस तरह उसने अपने और मेरे मन की हो का जश्न मना लिया। विवाह का दिन कदला का जन्मदिन चुना—२३ अप्रैल, और उसके केक पर लिखा—'ए डेट विद लाइफ और कचहरी जाने के बजाय मजिस्ट्रेट को घर पर बुलाकर विवाह का सर्टिफिकेट ले लिया।

मेरे लडके ने एक गुजराती लडकी से विवाह किया है। विश्वविद्यालय से वह आर्कीटेक्चर की डिग्री और अपनी दुल्हन, दोनों जसे एक साथ ले आया था। विवाह से पहले वे दोनो दोस्त थे, और सिफ दोस्त रहने का उन्होंने फसला किया था। लडकी जानती थी कि उसके गुजराती मा-बाप कभी भी किसी पजाबी लडके से उसे विवाह नही करने देंगे, और मेरे लडके का सोचना था— अगर मैं ब्याह करने का फैसला कर लू तो लडकी जरूर करेगी लेकिन मैं फसला नही करूगा। उसके मा बाप बहुत ही अमीर है, और मैं बहुत अमीर लडकी से ब्याह नही करना चाहता।' और वे दोनो सिफ दोस्ती का हक रखते रहे। पर कुछ समय बाद लडकी के पिता गुजर गए और उसके चाचाओं का सलूक इतना बदल गया कि लडकी अपने भविष्य की ओर से घबरा उठी कहने लगी, मैंने जिन्दगी मे एक ही सच्चा दोस्त पाया है उसे घर की किस मर्यादा के पीछे छोड दू ?' और उसने होस्टल से दो दिन के लिए दिल्ली आकर मुझसे कहा कि आप अपने हाथो मेरा विवाह कर लीजिये।'

मेरे पुत्र के भी यह शब्द थ— मामा ! अगर यह लडकी मेरी जिन्दगी से चली गयी, तो सारी जिन्दगी मेरे मन म इसकी याद रह जाएगी।

सोचती हू—उसकी यह मुहब्बत भी एक वह घटना है जो जिन्दगी की उलझनो को समझने मे उसकी सहायक हुई है और जिसने उसके दृष्टिकोण को बहुत विस्तृत कर दिया है।

विवाह की रस्म करनी थी। यह कैसी भी हो सकती थी। मेरे लिए गुरु ग्रन्थ साहब की मौजूदगी भी उतनी ही पवित्र थी जितनी हवन की अग्नि। यह तो वास्तव म सम्पूर्ण मन की उपस्थिति होती है। मेरे पुत्र ने कहा कि उसे हवन की आग खूबसूरत लगती है। सो, वही सही।

दोपहर के समय लडके को जब विवाह की निशानी देने के लिए एक अगूठी खरीदकर दी, तो उस गुजराती बेटी ने कहा—'मामा ! मुझे भी तो उसे अगूठी देनी है। सो, मैं उसकी भी मा थी, और उसके लिए भी वह अगूठी खरीदी जिस उसने मेरे बेटे की उगली मे पहनाना था।

हवन के समय ज्योति के किसी बुजुर्ग की जरूरत थी जो कन्यादान करता इसलिए जब पडित ने पिता की हाजिरी चाही तो इमरोज ने कहा, 'मैं कन्या का पिता हू कन्यादान करता हू '

और नवराज और ज्योति का विवाह हो गया—शायद विश्व के इतिहास म

अपने ढग का यह एक ही विवाह हो !

कोई छह महीने तक गुजराती माता पिता की ओर से चुप बनी रही, फिर लन्दन से भाई का फोन आया, बहन का, मा का—और कोई एक वर्ष बाद लडकी लन्दन जाकर सबसे मिल आयी। दो वर्ष बाद मा हिन्दुस्तान आयी। अपनी बेटी के सुख से वह सचमुच सुखी थी। लगभग पन्द्रह दिन साथ रही। साथ मे भाई भी था जिसने बहन के मनचाहे पति को पहली बार देखा और उसका अच्छा मित्र बन गया।

यह किताबो के नही जिन्दगी के पन्ने हैं पर इन पर लिखा हुआ केवल उन लोगो की समझ म आता है जिन्होंने जिन्दगी के बवडर अपने शरीर पर झेले हैं और जो हाथो की ताकत केवल अपने मन से लेते हैं।

आजकल वासु भट्टाचार्य मेरे और इमरोज के बडे प्यारे दोस्त हैं। वह जब अत्यन्त गरीबी के दौर से गुजर रहे थे जब उन्होंने अपनी जिन्दगी की एक सुन्दर वास्तविकता कमरे म बिठाई हुई थी—अपनी पत्नी रिंकी, फिल्म जगत् के बहुत बडे निर्माता विमल राय की बेटी—जिस वह बगावत के जोर से अपनी पत्नी बनाकर घर ले आए थे—और दरवाजे के बाहर, दहलीज की परली ओर गरीबी को बिठाया हुआ था उन दिनो की बात सुनाते हुए वह कहते हैं— गरीबी थी, पर मैं उसे अन्दर नही आने देता था। वह बाहर बैठी रही। घर मेरा था, मैं अन्दर बुलाता तब वह आती न ऐसे ही कैसे आ जाती ?'

सोचती हू—आज यह जो कुछ अपने मन के भीतर का कागजो पर रखकर दिखा रही हू यह केवल उनके लिए है जो ससार की परम्पराओ और कठिनाइयो और उदासियो को दरवाजे के बाहर बिठाकर, मन के सच को जीने का साहस कर सकते हैं

कल्पना का जादू

जिन्दगी म एक ऐसा समय भी आया था—जब अपने हर विचार पर मैंने अपनी कल्पना का जादू चढते हुए देखा है

जादू शब्द केवल बचपन की सुनी हुई कहानियो म कभी काना म पडा था, पर देखा—एक दिन अचानक वह मेरी कोख म आ गया था, और मेरे ही शरीर के मास की ओट म पलने लगा था

यह उन दिनो की बात है जब मेरा बेटा मेरे शरीर की आस बना था—१९४६ के अन्तिम दिनो की बात।

अखबारों और किताबों में अनेक गर्भनाएं पढ़ी हुई थीं—कि होने वाली मां के कमरे में जिस तरह की तसवीरें हों या जिस रूप की वह मन में कल्पना करती हो, बच्चे की सूरत वैसी ही हो जाती है और मेरी कल्पना ने जन्म दुनिया से छिपकर धीरे से मेरे कान में कहा—अगर मैं साहिर के चेहरे का हर समय ध्यान करूं तो मेरे बच्चे की सूरत उससे मिल जाएगी।

जो जिन्दगी में नहीं पाया था, जानती हूं यह उसे पा लेने का एक चमत्कार जैसा यत्न था

ईश्वर की तरह सृष्टि रचने का यत्न

शरीर का एक स्वतंत्र कर्म

केवल सम्बन्धों से स्वतंत्र नहीं लहू मांस की वास्तविकता से भी स्वतंत्र

दीवानगी के इस आलम में जब २ जुलाई १९४७ को बच्चे का जन्म हुआ पहली बार उसका मुंह देखा अपने ईश्वर होने का यकीन हो गया और बच्चे के पनपते हुए मुंह के साथ यह कल्पना भी पनपती रही कि उसकी सूरत सचमुच साहिर से मिलती है

पर दीवानपन के अन्तिम शिखर पर पैर रखकर सदा नहीं खड़े रहा जा सकता पैरों को बैठने के लिए धरती का टुकड़ा चाहिए इसलिए आने वाले वर्षों में मैं इसका जिक्र एक परी-कथा की तरह करने लगी

एक बार यह बात मैंने साहिर को भी सुनाई अपने आप पर हंसते हुए। उसकी और किसी प्रतिक्रिया का पता नहीं केवल इतना पता है कि वह सुनकर हंसने लगा और उसने सिर्फ इतना कहा— वेरी पूअर टेस्ट !'

साहिर की जिन्दगी का एक सबसे बड़ा कॉम्प्लेक्स है कि वह सुन्दर नहीं है इसी कारण उसने मेरे पूअर टेस्ट की बात कही।

इससे पहले भी एक बात हुई थी। एक दिन उसने मेरी लड़की को गोदी में बैठाकर कहा था— तुम्हें एक कहानी सुनाऊं ? और जब मेरी लड़की कहानी सुनने के लिए तैयार हुई तो वह कहने लगा—'एक लकड़हारा था। वह दिन रात जंगल में लकड़ियां काटता था। फिर एक दिन उसने जंगल में एक राजकुमारी को देखा, बड़ी सुन्दर। लकड़हारे का जी किया कि वह राजकुमारी को लेकर भाग जाए।'

फिर ?' मेरी लड़की कहानियों के हुंकारे भरने की उम्र की थी इसलिए बड़े ध्यान से कहानी सुन रही थी।

मैं केवल हंस रही थी कहानी में दखल नहीं दे रही थी।

वह कह रहा था— पर वह था तो लकड़हारा न वह राजकुमारी को सिर्फ देखता रहा दूर से खड़े-खड़े और फिर उदास होकर लकड़ियां काटने लगा। अच्छी कहानी है न ?

'हा, मैंने भी देखा था।' न जाने बच्ची ने यह क्या कहा।

साहिर हसते हुए मेरी ओर देखने लगा— देख ला, यह भी जानती है' और बच्ची से उसने पूछा तुम वही थी न जगला म ?'

बच्ची ने हा म सिर हिला दिया।

साहिर ने फिर उस गाड़ी म बठी हुई बच्ची से पूछा—'तुमने उस लकड़हार को भी देखा था न ? वह कौन था ?'

बच्ची के ऊपर उस घडी कोई दव वाणी उतरी हुई थी शायद, बोली— आप

साहिर ने फिर पूछा— और वह राजकुमारी कौन थी ?'

'मामा।' बच्ची हसने लगी।

साहिर मुझसे कहने लगा— देखा बच्चे सब कुछ जानते है।'

फिर कई वष बीत गए। १९६० म जब मैं बम्बई गयी तो उन दिना राजेन्द्र सिह बदी बडे मेहरबान दोस्त थ। अकसर मिलते थे। एक शाम बठे बातें कर रहे थ कि अचानक उन्होन पूछा, प्रकाश पडित के मुह से एक बात सुनी थी कि नवराज साहिर का बेटा है

उस शाम मैंने बदी साहब को अपनी दीवानगी का वह आलम सुनाया। कहा— यह कल्पना का सच है हकीकत का सच नही।

उन्ही दिना एक दिन नवराज ने भी पूछा—उसकी उम्र अब कोई तरह बरस की थी, मामा ! एक बात पूछू सच-सच बताओगी ?'

'हा।

'क्या मैं साहिर अकल का बेटा हू ?'

नही।

पर अगर हू तो बता दा ! मुझे साहिर अकल अच्छे लगते है।'

हा बटे ! मुझे भी अच्छे लगते हैं पर अगर यह सच होता मैं तुम्हें जरूर बता दिया होता।

सच का अपना एक बल होता है सो मेरे बच्चे को यकीन आ गया।

सोचती हू—कल्पना का सच छोटा नही था, पर वह केवल मेर लिए था इतना कि वह सच साहिर के लिए भी नही।

लाहौर म जब कभी साहिर मिलने के लिए आता था तो जस मेरी ही खामोशी म से निकला हुआ खामोशी का एक टुकडा कुर्सी पर बठता था और चला जाता था

वह चुपचाप सिफ सिगरट पीता रहता था कई आधा सिगरेट पीकर राखदानी म बुझा देता था फिर नया सिगरेट सुलगा लेता था। और उसके जाने के बाद केवल सिगरटो के बड-बड टुकडे कमरे म रह जाते थे।

कभी एक बार उसके हाथ को छूना चाहती थी, पर मेरे सामने मेरे ही संस्कारों की एक वह दूरी थी जो तय नहीं होती थी

तब भी कल्पना की करामात का सहारा लिया था।

उसके जाने के बाद मैं उसके छोड़े हुए सिगरेटों के टुकड़ों को सभालकर अलमारी में रख लेती थी, और फिर एक एक टुकड़े को अकेले बैठकर जलाती थी और जब उंगलियों के बीच पकड़ती थी तो लगता था जैसे उसका हाथ छू रही हूं

सिगरेट पीने की आदत मुझे तब ही पहली बार पड़ी थी। हर सिगरेट को सुलगाते हुए लगता कि वह पास है। सिगरेट के धुएं में जैसे वह जिन्न की भांति प्रकट हो जाता था

फिर वर्षों बाद अपनी इस अनुभूति को मैंने 'एक थी अनीता' उपन्यास में लिखा। पर साहिर शायद अभी तक मेरे सिगरेट के इस इतिहास को नहीं जानता।

सोचती हूं—कल्पना की यह दुनिया सिर्फ उसकी होती है जो इस सिरजता है और जहां इसे सिरजने वाला ईश्वर भी अकेला होता है।

आखिर जिस मिट्टी से यह तन बना है उस मिट्टी का इतिहास मेरे लहू की हरकत में है—सृष्टि की उत्पत्ति के समय जो आग का एक गोला सा हजारों वर्ष जल में तरता रहा था उसमें हर गुनाह को भस्म करके जो जीव निकला वह अकेला था। उसमें न अकेलेपन का भय था, न अकेलेपन की खुशी। फिर उसने अपने ही शरीर को चीरकर—आधे को पुरुष बना दिया आधे को स्त्री—और इसी में से उसने सृष्टि रची

संसार का यह आदि क्रम मात्र मिथ नहीं है न केवल अतीत का इतिहास —यह हर समय का इतिहास है—चाहे छोटे छोटे मनुष्यों का छोटा छोटा इतिहास

मेरा भी

एक लेखक की ईमानदारी

नेपाल के नेवारी लेखक सायमी धूसवा जब दिल्ली में अपनी एम्बेसी के कल्चरल सेक्रेटरी बनकर आए कुछ ही मुलाकातों में लगा कि उनके अंतर का लेखक उनके डिप्लोमेटिक ओहदे से बड़ा है। उनके अंतर का यह विरोधाभास उनके लिए सुखकर नहीं था—यह और अपनी अन्य निजी उलझनें उन्होंने एक दोस्त की

तरह मेरे साथ बाटी। जब भी परेशान होत मुझसे मिलने चले आते, नही तो फोन जरूर करते। खर एक दिन मैंने उनकी बिलकुल निजी एक उलझन के बारे म एक कहानी लिखी— अदालत'। उन दिनो मैं हिंदी म अपनी कहानिया की एक किताब कम्पाइल कर रही थी 'पजाब से बाहर के पात्र' और मैंने इस किताब के लिए जो अठारह कहानिया चुनी थी, उनम से एक यह 'अदालत' भी थी। किताब प्रेस म चली गयी और मैंन यह खबर भी धूसवा साहब को दे दी। हर कहानी के नीचे उसका पात्र जिस देश का था उस देश का नाम दिया था। सो, 'अदालत' कहानी के नीचे नेपाल का पात्र लिखा हुआ था। धूसवा ने मुझसे कहा कि कहानी के नीचे मैं नेपाल शब्द को काटकर कुछ और लिख दू नही तो एक डिप्लोमट होन के नात उन्हे मुश्किल का सामना करना पडेगा। मैं यह कभी गवारा नही कर सकती थी कि उ ह कोई तकलीफ हो इसलिए उनके कहन के अनुसार नपाल की जगह आसाम लिखवा दिया। किताब छप गयी। उन्होंने भी देखी। और मुझे एक नोट लिखकर दिया कि मैं जब अपनी जीवनी लिखू तब उनका यह नोट उसम जरूर शामिल कर ल। वह नोट है—'यह कहानी धूसवा की है। पर सास्कृतिक सहचारी एक माननीय, इतना बुजदिल और कायर है कि इस कहानी को अजनबी बनाने के लिए अपन दश नेपाल को भारत का एक राज्य आसाम बनाने म उसने हामी भर दी।

१६ ११ ७३ धूसवा सायमी

उस दिन धूसवा मेरी दष्टि म और भी ऊचे हो गए। यह उनके अतर के लेखक की ईमानदारी का आग्रह था। मैंने आदर से सिर झुका लिया।

इस कहानी का उन पर गहरा असर था। उन्होंने अपनी पत्नी को भी यह कहानी सुनायी और अपनी दोस्त लडकी को भी। एक बेचैनी के साथ इस कहानी को बार बार पलटे रहे। जब तीन बार पढ चुके तो उन्हें एक बेचन सपना आया और वह उन्होंने लिखकर मुझे दे दिया। वह सपना था—

'न जाने सबेरा था या सध्या थी आकाश उजाले और अधेरे के मेल म फला हुआ था। मैं एक नदी की ओर खिचा चला जा रहा था। इस नदी को मैं प्रति-दिन पार कर लेता था, पर उस दिन इस नदी के तट पर अपनी एक प्रेमिका को जो विवाहित थी और बच्चो की मा थी देखकर घबरा सा गया। उस नदी को पार करने का मुझे साहस नही हुआ। शायद अचतन मन म, डूब जाने का भय समा गया था। मैं नदी के किनारे किनारे चलन लगा। पर उस समय सब ओर रेत ही रेत दिखाई देन लगी। उस रेतीले स्थल म दो तम्बू लगे हुए थे। मेरी आखो के सामने तम्बू के अदर का दश्य फल गया। मैं देखता हू कि इसम एक पुरुष है, जिस मैं भली भाति पहचानता हू, जिसके भाव और विचार एक यत्न की

भाति मर अदर ट्रान्समिट हो जाते हैं। उसके सामने तीन तरह के वस्त्र पहने हुए पर एक ही चेहरे की तीन युवतिया खडी हुई है। पुरुष परेशान सा हो गया, क्योकि उनमे से एक उसकी प्रेमिका थी। यह कैसी छलना है ? वह इस चिंता मे डूब गया। उसके आश्चर्य को देखकर उनमे से एक की आखो मे कम्पन हुआ, और वह आगे बढकर उस पुरुष की बाहो मे आ गयी। ठीक इसी समय दूसरे तम्बू मे से एक व्यक्ति क्रोध से बोलता हुआ आया और उस लडकी को बुरा भला कहने लगा— तू इस बधन मे क्यो बध रही है ? यह पुरुष तो विवाहित है यह तो एक भवरा है।' लडकी ने तुरन्त उत्तर दिया— मैं यह सब कुछ जानती हू, फिर भी इसे अपना रही हू। इतने मे देखता हू कि दूसरे तम्बू से आए हुए व्यक्ति का सिर धड मे गायब हो गया। पहले पुरुष ने उस लडकी को सोत्साह अपनी बाहो मे कस लिया—और उस समय अचानक मुझे लगा कि मैं जो अदृश्य हू, और वह जो सिरहीन व्यक्ति है और वह पुरुष जो पूर्ण रूप से वहा था तीनो मुझमे समाए जा रहे हैं। अचानक आख खुली तो देखता हू कि अमृता प्रीतम की कहानी सग्रह एक शहर की मौत मेरे पास खुला हुआ पडा है जिसकी एक कहानी अदालत मैं तीसरी बार पढते पढते सो गया था।

१८ ११ ७३ —धूसवा सायमी'

यू तो अपनी हर कहानी के पात्र के साथ मेरा साझा है कहानी लिखते समय मैं उसकी पीडा अपने दिल पर झेलती हू उसकी होनी कुछ देर के लिए मेरी होनी बन जाती है और इस प्रकार यह साझा शाश्वत का एक टुकडा बन जाता है परन्तु धूसवा जैसे पात्र मुझ मे केवल प्यार और सहानुभूति ही नही अपने लिए आदर भी जगा लेते हैं।

घोर काली घटा

अचानक—एक दिन एक कविता लिखी गयी—

अज्ज शल्फ उत्ते जिनिया किताबा सन
त जिनिया अखबारा
ओह इक्क दूजी दे वर्के पाड के जिल्दा उधेड के
कुज्ज ऐस तरहा लडिया
कि मेरिया सोचा दे शीशे काड काड टुटदे रह
मुल्का द नक्शे ते सारिया हददा सरहददा

इक दूजे नू वाहा ते लत्ता धरीक के सुटदे रहे
ते दुनिया दे जिन्ने वी वाद सन एतकाद सन
ओह सारे दे सारे इक दूजे दा मध घुटदे रह
घमसान दी लडाइ अत्ता दा लहू डुलिया
—पर किडडी अचरज घटना
कि कुज्झ किताबा अखबारा, वाद ते नक्शे अजहे सन
जिन्हा दे जिस्म विच्चो—
मुच्च लहू दी थावें इक काला जहर वगदा रिहा [1]

लगा, उदासी बूद-बूद करके इकट्ठी होती रही थी और उस दिन घार काली घटा की भाति मेरे सिर पर छा गयी थी। यह अपने समय की निम्न स्तर की पत्रकारिता और समकालीनो की बतकहिया से लेकर, दूर दूर तक मजहब, समाज और राजनीति की उन हरकता तक फली हुई थी जिनकी नसो मे लाल खून की जगह काला जहर हरकत मे होता है

यह इतनी पीडा भी शायद इसीलिए थी क्योकि यह कागज और यह अक्षर मैंने दुनिया म सबसे ऊची अदब की जगह पर रख हुए हैं यहा तक कि प्रतीत हुआ—७५१ म जब चीन के लागा न समरकन्द पर आक्रमण किया और हार गए, तो उनके कुछ लोग अरबो के युद्ध बन्दी बने। उनम से जो कागज बनान की कला जानते थ उनसे अरबा ने वह कला सीखकर पहली बार कागज बनाया और

---

१ आज शल्क पर जितनी किताबें थी
और जितन अखबार
व एक दूसरे के पन्ने फाडकर जिल्दें उधेडकर
कुछ इस तरह लडे
कि मरे सोचो के शीश करड करड टूटत रहे
मुल्का के नक्शे और सारी हदें-सरहदें
एक दूसर का हाथा और पावा स घसीटकर फेंकते रहे
और दुनिया के जितन भी वाद थे विश्वास थे
वे सब क-सब एक दूसर का गला घोटत रह
घमासान का युद्ध—लहू की नदिया बही
पर कभी अचभे की घटना
कि कुछ किताबें, अखबार, वाद और नक्श एस थे
जिनके शरीर म से—
शुद्ध लहू की जगह एक काला विष बहता रहा

उस पहले कागज पर जिस हाथ ने पहली कविता लिखी थी, उस हाथ का कम्पन आज भी मेरे हाथ में है

ओ खुदाया

एक और कटु अनुभव

मित्रों और परिचितों को धीरे धीरे अपने से दूर होते देखना, या स्वयं उदास होते देखना, एक बहुत कठोर अनुभव है, पर जिन्दगी के इस रास्ते पर भी चलना होता है—चली हूं

जिन समकालीनों से—एक ही ढंग का अनुभव बार-बार हुआ—शाखों के वृक्षों से धीरे धीरे अर्थों के पत्ते झड़ने के समान—दलीप टिवाना उन समकालीनों में नहीं है।

बहुत वर्ष पहले, जब भी मिलती थी लगता था एक खुलूस है—पर साथ ही लगता था भीतर से कुछ लेन देन नहीं होता। फिर कभी छठे छमासे उसका पत्र आने लगा, तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह पत्र कभी मुट्ठी भरकर कुछ दे जाता था मुट्ठी भरकर कुछ ले जाता था। कभी भेंट भी हो जाती थी, पर फिर लगता मन के परों के आगे एक फासला-सा है जो तय नहीं होता और लगता था, यह जहां जो कुछ खड़ा हुआ है शायद सदा खड़ा रहेगा एक दूरी पर।

सोचा करती थी—ठीक है यह भी बहुत है। अगर कोई वस्तु जितनी दूरी पर है उतनी ही दूरी पर रहे टिक सके तब भी बहुत है। पास नहीं आ सकती न सही और दूर जाने से ही बच जाए।

परएक दिन अचानक दलीप का पत्र आया एक रहस्य की गांठ में बांधकर—एक बात है मैं चाहती हूं आज से तीन दिन बाद बुधवार को आप मेरे पास हों। सवेरे की पहली गाड़ी से आ जाइए मैं स्टेशन से ले आऊंगी।' और मैंने पत्र पढ़कर सूटकेस में कपड़े रख लिये। न कुछ पूछने का समय था न पूछने की आवश्यकता शायद उसी प्रकार जैसे उसे कुछ बताने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। और फिर मंगलवार को उसका एक्सप्रेस पत्र आया— अभी आने की आवश्यकता नहीं है। फिर जब होगी लिखूंगी'। और मैंने पत्र पढ़ सूटकेस में से कपड़े निकाल लिये।

फिर किसी पत्र में उसने रहस्य की गांठ नहीं खोली न जाने वह कैसा बुधवार था उस दिन क्या होना था और उसे मेरी आवश्यकता क्या थी। पर अपने मन की इतनी जानकारी ही काफी थी कि उस जैसा बुधवार अगर फिर कभी आ

जाए और वह मुझे फिर पत्र लिखे, तो मैं फिर सूटकेस में कपड़े डाल लूंगी

मुझे दलीप टिवाना की कहानियां कभी खास नहीं लगी थीं। उनमें किया गया मुहब्बत का वर्णन मुझे उस गोल से भले से पेपरवेट जैसा लगता था जिस कुछ कागजों पर रखकर उन्हें बिखरने या गिरने से बचाया जा सकता हो पर जिसकी किसी नोक में चुभने की शक्ति न हो। उन कहानियों में किसी तिकोने पत्थर को गले से नीचे उतारने वाला दर्द नहीं होता था। पर यह विश्वास अवश्य था कि यह जो कुछ दलीप कागजों पर उतारती है यह असली दलीप नहीं है यह उसका सहमा हुआ साया है और मैं एक 'गुच्छा' सी होकर बैठी हुई उसकी आकृति के अंगों का अनुमान सा लगाया करती थी

फिर १९६९ में उसका उपन्यास छपा—'यह हमारा जीवन', तो लगा, मेरा अनुमान गलत नहीं था, सिकुड़कर बैठी हुई दलीप ने इस उपन्यास में अंगड़ाई ली थी और उसके भरपूर जवान एहसास का अंग-अंग चमक उठा था—पैरों की विवशता, आंखों के आंसू छाती का रोष और माथे का चिन्तन

एक दिन अचानक उसका पत्र आया—मरे लिए नहीं, इमरोज के लिए कि उसने कहना 'नागमणि' के टाइटिल पर तुमने जैसी लड़की बनाई है मैं दुआ मांगता हूं कि ईश्वर मुझे अगले जन्म में वैसी ही लड़की बना दे' और पत्र में मैंने दलीप के हाथ फड़कते हुए देखे और देखा—उसके होंठों पर एक हसरत थी जो जमी हुई पपड़ी की तरह टूटना चाहती थी

मुझे उसकी खामोशी भी स्वीकार थी, और उसके बोल भी

फिर एक रात के लिए वह दिल्ली आयी रात अंधेरे से गाढ़ी-सी हो रही थी। वह मेरे एक कमरे में फर्श पर बिस्तर बिछाकर अलसाई सी बैठी हुई थी, और मैंने उसके सामने बैठकर एक रजाई का सहारा लगाया हुआ था कि अचानक उसके मुंह से निकला—'कई लोगों को तो ईश्वर कहीं रखकर भूल जाता है पर मैं खुद ही अपने आपको कहीं रखकर भूल गयी हूं—अब मैं यह भी नहीं जानती कि मैं कहां हूं? जी करता है—कोई हो जो मेरा अपना-आप खोज कर मुझे दे जाए'

उस दिन पहली बार मैंने उसमें बेबाकी देखी, ऐसी बेबाकी, जिसके पीछे विश्वास होता है। लगा, शायद यह विश्वास उसे उसके उपन्यास की सफलता की देन है

वह कह रही थी ईश्वर जब अपना भंडारा बांटने लगा था, तो न जाने मेरे हिस्से की थाली वह मेरे आगे रखनी भूल गया या मेरे आगे रखी हुई थाली को जल्दी से किसी और ने उठा लिया पर मैं भूखी रह गयी बस मैंने यह सोच लिया है कि या तो सदा भूखी रहूंगी, या अपने हिस्से की थाली में खाऊंगी मुझसे कोई निवाला किसी थाली से और कोई किसी थाली से नहीं खाया

जाता '

मैं उसके मुह की ओर देखने लगी तो वह हस पडी— मेरी मा के पाच बेटिया हुइ। सबसे पहली मैं थी। मैं मा से कहा करती हू कि तुमने मुझे जन्म देकर लडकिया बनाने का ढग सीखा, क्योंकि मेरी बाकी चारो बहनें सुन्दर है '

वह हस रही थी पर मुझे हसी नहीं आयी। कहा— पर एक ढग जो उसे सिर्फ पहली बार आया, फिर से उस तरह नही आया।'

मेरा ध्यान उसके मानसिक सौन्दय की ओर था और उसका केवल शारीरिक सुन्दरता की ओर। पर थोडी ही देर बाद उसका ध्यान उधर से हट गया और उसकी आखें अपने अतर की ओर देखने लगी, और वह कहने लगी— अकेली औरत को लोग बे मालिक की खेती के समान समझते है चलो भई ढगर चरा लाए कौन-सा किसी ने कुछ कहना है '

और उसकी हसी म रोष मिश्रित हो गया मुझे कोई तो ऐसा लगता है जसे अभी-अभी लोमडी से आदमी बनकर आया हो और चालाकिया चलाता हो कोई ऐसा लगता है जसे अभी अभी गीदड से आदमी बना हो और मेरे सामने कुछ हो, अपने घरवालो के या घरवाली के सामने कुछ और हो आदमी हैं ही कहा ? एकदम हिप्पोक्रिटस दोस्ती करने के लिए खुशामदें करते है पर साथ ही यह सोचते हैं कि उन्हे कोई सामाजिक मूल्य न देना पडे मैं जूठी थाली म से कुछ नही खा सकती भूखी रह लूगी लेकिन जूठी थाली म से कुछ नही खाऊगी

दलीप के चेहरे पर लाली झलक आयी उसके सिकुडे हुए से सोने उपन्यास म अगडाई ली थी पर उस घडी वह सारी की सारी मन की नदी से नहाकर निकली हुई मालूम पडती थी सुलझे की लपट की तरह उस दिन बात करते और चाय पीते हुए जो रात गुजारी उसे मैंने बाद म फ्री जोन म एक रात के शीर्षक से लिखा।

जानती थी—वह जब छोटी थी तब उसे सपने बुनती हुई के हाथो से जिन्दगी ने गलाडया छीन ली थी और उसके सपने उधड गए थे पर जब १९७२ का साल आया लगा—जिन्दगी अपने कजूस बरसो का उलाहना उतारने के लिए बहुत उदार हो गयी है एक साथ तीन हाथ उसकी ओर बढे उसका हाथ पकडने के लिए। एक शोहरत का हाथ था जिसने उसके कलम को अकादमी का अवार्ड दिया और मुसकरा पडा। और दूसरे—दो मर्दो के हाथ थे जो उसका साथ माग रहे थे।

दलीप ने मुझे पटियाला से आवाज दी, मैं गयी तो देखा जिन्दगी की इस उदारता को हाथो से छूने के लिए उसके कापते हुए हाथ आगे भी बढ रहे थे, और आगे बढने से घबरा भी रहे थे।

उन दोनो म से एक को दलीप बरसो से जानती थी और दूसरे को सिर्फ कुछ

महीनों में। अजीब संजोग था कि जिस वह बहुत जानती थी, उस में भी कुछ जानती थी, और जिसे वह थोड़ा-सा जानती थी उस में बिलकुल नहीं जानती थी—पर उसके हाथ उस ओर बढ़ रहे थे जिधर उसका भी जाना पहचाना नहीं था।

मैंने एक दो बार मन की स्पष्टता के लिए कुछ तर्कों का सहारा लिया, पर देखा—तर्कों से भी आगे कहीं कुछ था जो सोता जागती दलीप को बुला रहा था। बुलावा उसने न जाने कैसे सुना था कि उसके कान मानो मुग्ध से लगते थे—इतने कि तर्क सुनाई नहीं देते थे। मैं चुपचाप उसके पास खड़ी हो गयी उसके साथ। यह समय शायद कुछ कहने का नहीं था यह केवल उसके साथ खड़े होने का था।

उसने कहा— एक छोटी सी रस्म करनी है पर पटियाला में नहीं।'

उत्तर में यही कह सकती थी, कहा—'तुम्हारा घर सिर्फ पटियाला में ही नहीं दिल्ली में भी है।'

उस दिन वह अपने घर से मेरे साथ अपनी यूनिवर्सिटी तक आयी। वहां उस उससे मिलना था जिसके खयालों से वह भरी हुई थी। और फिर वहां से ही मुझे दिल्ली लौटना था

यूनिवर्सिटी के बाहरी गेट के पास पहुंचकर वह मन के सेंक से लाल सी हो गयी, और फिर अचानक कई शंकाएं उसके मन पर काले पंखों की तरह आ घिरीं और वह घबराकर कहने लगी— नहीं, अब मैं ऐसी ही ठीक हूं अब बहुत देर हो गयी है वह मुझसे उम्र में छोटा है '

पर वह जब अंदर कमरे में जाकर उसे बाहर बुला लायी, उसके मन का सेंक फिर एक लाल रंग की तरह उसके चेहरे पर पुत गया।

बालों को वह कसकर संवारती और बांधती है लेकिन उस दिन उसके बौराए हुए से बाल उड़ रहे थे। वह एक हाथ से बालों की लट को संभालती थी, और दूसरे हाथ से जिंदगी के अचम्भे को

वहां से धीरे धीरे गाड़ी चलाते, और बातें करते हम राजपुरा तक आ पहुंचे। इस सारे रास्ते में उस ने दलीप का हाथ अपने हाथ में लिये रखा था इसलिए मैंने हंसकर कहा— इसी तरह बैठे रहो ! अभी चार घंटे में दिल्ली पहुंच जाएंगे।'

दलीप चौंकी— नहीं आज नहीं, दस पंद्रह दिन में जब अवार्ड लेने के लिए दिल्ली जाऊंगी तब '

दोनों वहां राजपुरा उतर गए और मैं दिल्ली आ गयी। दिल्ली में मैं अकेली थी तर्कों का हाथ थामे रखने वाली दलीप मेरे पास नहीं थी, इसलिए सब तर्क मेरे गिर्द घिर गए और घबराकर मेरा जी किया—दलीप को फिर एक बार देखूं सब तर्क दूं।

एक फोन नम्बर मेरे पास था दलीप के पड़ोसियों का। रहा न गया, रात को वह नम्बर मिलाया दलीप को फोन पर बुलाया और कहा— एक बार फिर सोच लो, दलीप! उस दूसरे को।

लगा—मेरी आवाज उसके कानों को छूकर इधर मेरे पास ही लौट रही थी, भले ही उसने तब कहा था—'अच्छा सोचूंगी'। पर जान लिया उसने जो सोच लिया है उससे अलग अब वह कुछ नहीं सोचेगी।

अपने आपको तर्क दिया— उस दूसरे को मैं कुछ जानती हूं शायद इसीलिए मैं इस तरह सोच रही हूं—यह जानना ही शायद वह पासंग है जो उस पलड़े को भारी कर रहा है।

सो मान लिया—जो दलीप चाहती है वही ठीक है।

३० मार्च को दलीप को अवार्ड मिलना था, वही अवार्ड उसके विवाह की सौगात बन गया। संध्या का समय पूजा और हवन की सामग्री से महका हुआ था। कन्यादान के लिए इमरोज ने हाथ आगे किया और भाई की जगह मेरे बेटे ने खड़े होकर दलीप का पल्ला थमाया।

दलीप को वह घटना याद थी—मेरे बेटे के विवाह वाली, जब उसकी गुजराती दुल्हन के कन्यादान के समय उस खाली जगह को भी इमरोज ने भरा था। आज जब दलीप की जिंदगी की खाली जगह पर भी इमरोज खड़ा हो गया तो दलीप ने उसे अजन्मी बेटियों का बाबुल कहकर मन रिश्ते से नहीं सीधे अपने रिश्ते से उससे संबंध जोड़ लिया।

तीन दिन बाद दलीप को उसके पति के साथ भेजते समय मन इस तरह भर आया जैसे सगी मां के या सगी बहन के मन में कुछ घिर आता है। और उस घड़ी मैंने पहली बार 'उसे' एक लगते मर्द के रूप में देखा, जब उसने कहा— अब आप लोग कोई चिंता न करें'—सचमुच उस घड़ी लगता था कि वह दलीप से अधिक आयु का हो गया है।

यह मन की आयु किस हिसाब से घटती-बढ़ती है—पकड़ में नहीं आता। इमरोज भी कई बार मेरे बावन वर्षों के दो को पांच के इधर करके उसे पचीस बना लिया करता था और अपने छियालीस वर्षों के चार और छ को इधर से उधर करके चौंसठ बरस का हो जाया करता था।

दलीप का रूप भी उस दिन ऐसा ही था—मानो वह अपनी आयु के तेतीस अड़तीस बरस माइयें[1] पड़ी रही हो, और अब लाल हरे वस्त्र पहनकर उस लोकगीतों की गौरी के समान रूप चढ़ा हो।

---

१ पंजाब में विवाह की एक रस्म जिसमें विवाह से लगभग पन्द्रह दिन पूर्व लड़की अच्छा कपड़ा नहीं पहनती और न तेल उबटन लगाती है।

फिर अजीब दिन आए। मेरे लिए एक ही नदी में जैसे एक किनारे 'ठंडा ठार' पानी बहता हो और दूसरे किनारे पर गर्म उबलता हुआ। वह जिस दलीप ने अपने साथ के लिए नहीं चुना था—मैंने उसकी दीवानगी का आलम भी देखा उसकी वे कविताएं सुनी जिन्हें केवल मन में जलती हुई आग ही लिखवा सकती है।

उसने अपनी मुहब्बत की तकदीर को स्वीकार कर लिया था, पर वह मन की भीतरी तहों तक वीतराग हो गया था। कभी किसी दिन मुझे उसका पत्र आ जाता जिसमें मरने की कामना से भरी हुई एकाध पंक्ति होती और कुछ नहीं।

मैं उसकी उदासी के कारण उदास थी, पर दलीप को खुश देखना चाहती थी, इसलिए कभी उसकी बात दलीप को नहीं सुनाई। दलीप को खुश देखना उसकी भी लगन थी और उसने दलीप के रास्ते से गुजरना भी छोड़ दिया—यद्यपि अपने जीवन की सभी राहों पर उसे केवल दलीप ही दिखायी देती थी।

जानती हूं—दलीप के मन में वह नहीं था, जो कुछ था उसके अपने ही खयालों का जादू था। पर जादू जादू होता है, जब उसके कलम में उतरता, कविता बन जाता।

मेरे पास उसका एक पत्र अभी तक संभालकर रखा हुआ है—'जबसे दिल्ली से आया हूं आपको कुछ नहीं लिखा। जब भी लिखने को जी करता है मेरी रुलाई निकल जाती है। न जाने क्यों हर समय शराब पीने को जी करता रहता है। आपका उपन्यास 'दिल्ली की गलियां' क्या वहां समाप्त नहीं हो सकता था, जहां कई वर्षों बाद जब सुनील कामिनी के दफ्तर मिलने के लिए आता है चार बजे, और पांच बजे फिर आने के लिए कह जाता है और इस दौरान कामिनी नासिर को फोन करके यह सब-कुछ बता देती है और नासिर कहता है कि तुम्हें जरूर उसके साथ जाना चाहिए जो भी नासिर है वह यही कहता नासिर ने सदा यही कहा है यही कहेगा और नासिर कभी कामिनी का हो नहीं सकेगा पर आपने कहानी में नासिर से क्या कामिनी का दरवाजा खटकवाया? क्या? नासिर को कभी यह नसीब नहीं हुआ। उसकी नियति है कि उसे हर राह पर चलना है, हर रात में जीना है मैं आजकल न पटियाला हूं न चंडीगढ़, न लुधियाना, न गांव। हां, इन शहरों को मिलाने वाली सड़कों पर सफर कर रहा हूं, भटक रहा हूं पर यह कहना शायद इस तरह लगेगा जैसे मैं तरस का पात्र बन गया होऊं आपका अपना जिसका आज कोई एड्रेस नहीं है।'

मैंने यह पत्र दलीप को कभी नहीं सुनाया, पर सुना—उसके घर का पता भी उससे खोया जा रहा है।

दलीप के नहीं, उसकी मां के बाल कानों में पड़े—सब पिछले जन्मों के हिसाब किताब होते हैं बेटी।

दलीप से जब भी पत्र लिखकर पूछा तो वह हर बार जवाब को टाल देती, और कुछ इस तरह की बात लिख देती— आप मेरी चिन्ता न किया करें सांस और शक्ति गरम होती महसूस होती है बुखार आता रहा था पर आप चिन्ता मत करना मौत के निकट आने का एहसास भी अजीब होता है। फिर बुखार चढ़ा लगा है मेरी चिन्ता मत कीजिएगा ।

यह चिन्ता न कीजिए मानो उसका तकिया कलाम बन गया था। हर पत्र में यही वाक्य। पगली ने इतना न सोचा कि वह जब बार-बार कहेगी— चिन्ता न कीजिए तो उसमें कितनी चिन्ता छलेगी ?

केवल एक पत्र में उसने लिखा— आपने कभी एक कविता लिखी थी—फूला था इक काफिला मरुस्थल से गुजरा था। आज मेरा जी चाहता है एक उपन्यास लिखूं जिसका आरम्भ भी इसी से हो और अन्त भी '

यह पत्र बहुत कुछ कह गया बन्द कोठरी से भी। और बाद में तो उसके पत्रों की पंक्तियां और भी कम होती गयीं, और पत्रों का अन्तराल बढ़ता गया

एक बार फिर उसका एक गूंगा-सा पत्र आया—आज 'अजन्मी बेटियों' का बाबुल याद आ गया तो पत्र लिखने बैठ गयी। आपने कहा था न कि अपने दोस्तों पर विश्वास न छोड़ना

और लम्बे अरसे के बाद जब एक बार दलीप मिली तो पूछा—दलीप ! तुम्हारी प्रकाशित हो रही पुस्तक का समर्पण है— इतिहास केवल इतिहास की पुस्तकों में नहीं होता। पुस्तकों में लिखे जाने से बहुत समय पहले इतिहास लोगों के शरीरों पर लिखा जाता है। और यह पुस्तक समर्पित है उन लोगों को जो इतिहास को अपने शरीरों पर लिखा जाना झेलते हैं। सो, एक तरह से यह पुस्तक तुमने अपने आपको समर्पित की है।

वह कहने लगी—आप कहते हैं तो ठीक ही कहती होंगी।

कहा—फिर उस इतिहास की बात करो जिसका शरीर पर लिखा जाना तुमने झेल लिया है।

उसने आवाज दबा ली, बोली—सब बातें शब्दों में नहीं कही जातीं।

पूछा—कभी मैंने लिखकर तुम्हारी बातें की थीं और उन बातों का नाम रखा था 'फ्री जोन में एक रात' पर आज की बात अगर लिखूं तो उनका क्या नाम रखूं ?

कहने लगी—फ्री जोन के उलटे शब्द क्या होते हैं ? जो होते हों वही रख दीजिए।

आंखों में पानी सा भर आया कहा—नहीं, फ्री जोन नहीं

सोचती हूं—यह भी शायद जिन्दगी का एक मोड़ है हो सकता है मोड़ बदलकर जिन्दगी उस फिर उस हंसते हुए रास्ते पर डाल दे जो उसने १९७२

के शुरू में ढूंढा था

पर दोस्तों को क़दम क़दम उदासी के रास्ते पर चलते हुए देखना बहुत कठिन अनुभव है

एक सिजदा

१९७२ का अगस्त, अठारह तारीख। अशोका होटल से फोन आया— मैं पाकिस्तान से सुलह की बातचीत करने के लिए जो डेलीगेशन आया है उसका एक मेम्बर बोल रहा हूं

खाना खा रही थी, हाथ का ग्रास हाथ में रह गया। मन के अन्तर्तम में एक तृप्ति का आभास हुआ। घड़ी की ओर देखा—आधा घंटे में वह फोन वाला भला आदमी मुझे सज्जाद का खत और उसकी भेजी हुई एक किताब देने आ रहा था

आधा घंटे बाद आने वाले को लैंपशेड पर पेंट किया हुआ फैज का शेर दिखाया और लाइब्रेरी की अलमारियों पर पेंट किया हुआ कासमी का शेर दिखलाया। कहा—'इस बार सुलह की बातचीत को पूरा करके जाना उन देशों में आपस में काहे की दुश्मनी जिनके शेर एक-दूसरे के घरों की दीवारों पर बैठे हुए हैं'

प्यारा-सा जवाब मिला— इंशा अल्लाह जरूर सुलह होगी।

और उस भले दूत के जाने के बाद खत खोला अक्षरों का जादू देखा जो काली स्याही में नहाकर, लगता था सुनहरी हो गए हैं—'ऐमी! तुम्हें खत भेजने का मौका गंवाया नहीं जा सकता, जब भी कोई मेहरबान सरहद को चीरने लगता है। मेरा पिछला खत तुम्हें रोम से पोस्ट हुआ था—वह एक उस दोस्त ने किया था जो हमारे पहले प्रेसिडेंट के साथ वहां गया था। मुझे उम्मीद है मिल गया होगा। इस बार एक ऐसा संजोग बना है कि यह खत शायद तुम्हें दस्ती पहुंचाया जा सके। इस लेकर आने वाला मेरा एक प्यारा दोस्त है—वह शायद तुम से मिलना भी मुमकिन कर ले। मैं तुम्हें देखना चाहता हूं—इतना, कि चाहे एक एतवारी दोस्त की आंखों से ही देखूं। मैंने उससे कहा है—फोन कर, पूछे कि मुलाकात मुमकिन हो सकती है? अगर हो जाए तो वह जब वापस आएगा मैं उससे कितनी देर तक कितने ही सवाल पूछता रहूंगा—वह कैसी लगती है? वह किस कपड़े पहने हुए थी? क्या वह हंसी थी? मेरे बारे में उसने क्या कहा था? वह अभी भी उसी तरह में है?—एक सौ सवाल। वह खुशनसीब है—मैं एक

उडते हुए पल की मुलाकात के लिए तरसा हुआ हू '

खलील जिब्रान ने जब कहा था— जिन्दगी का मकसद जिन्दगी के भेदा तक पहुचना है—और दीवानगी इसका एकमात्र रास्ता है।' मैं सोचन लगी—तब मेरे सज्जाद का नाम खलील जिब्रान था

मुझे अपनी दीवानगी पर गव है—पर आज वह भी सज्जाद की दीवानगी के सामन सिजदे मे झुकी हुई है।

ईश्वर-जसा भरोसा

जिन्दगी म बहुत से ऐस दिन आये हैं जब हाथ म थामे हुए कलम को गले से लगा-कर रोयी हू —

'ईश्वर जैसा भरोसा तेरा न जाने कब और कौन किसी का यह बन जाता है

यह कलम मेरे लिए सदा हाजिर नाजिर खुदा के समान रहा है—इसे आखा से देख सकती हू हाथा से छू सकती हू और एक सून कागज की तरह इसके गले लग सकती हू

इसका और अपना रिश्ता कुछ 'अक्षर' कविता म डाल सकी थी[1]—

फेर ओहियो हवा जिहने झोली' च खिडाया
ते जिहने मेरी मा दी मा दी मा नू जाया
कितो दौड के आयी—
ते हत्था दे विच्च कुज्झ अक्खर ले आयी
'एह निक्किया कालिया लीका ना जाणी
एह लीका दे गुच्छे तेरी अग्ग दे हाणी '
त ऐस तरहा कह दी ओह लघ गई अग्गे
तेरी अग्ग दी उमरा ऐना अक्खरा नू लग्गे ।'

---

१ फिर वही हवा जिसन गोदी म खिलाया
और जिसने मरी मा की मा को मा को जाया
कहा से दौडकर आयी—
और हाथो म कुछ अक्षर ले आयी
इन्हे नन्ही काली लकीरें न समझना

आधी शताब्दी के इस अरसे में कुछ और शौक भी लग गए थे—सबसे पहले फोटोग्राफ़ी का था। पिताजी ने घर में डार्क रूम बनाया हुआ था, इसलिए फिल्म धोते और नेगटिव से पाज़िटिव बनाते समय—खाली कागज़ पर उभरते चमकते चेहरे—एक संसार रचने के समान लगते थे। कुछ अरसे तक इस शौक ने मन को पकड़े रखा। फिर डांसिंग ने मन और ध्यान खींच लिया। लाहौर में तारा चौधरी से कोई छह-आठ महीने सीखा, पर जब तारा ने स्टेज पर अपने साथ काम करने का बुलावा दिया तो घर से इजाज़त नहीं मिली। शौक मुरझा गया। यह सूखे पत्ते की तरह जमीन पर गिरा तो एक नये बीज के रूप में अंकुरित हुआ—सितार बजाने का शौक। हिंदुस्तान के विभाजन के समय तक यह शौक बहुत खिले हुए रूप में था। लाहौर रेडियो स्टेशन से कई बार सितार बजाया—मास्टर राम रखा, सिराज अहमद और पीना सितारिया मेरे उस्ताद रहे थे। इसके साथ-साथ टेनिस खेलने की भी ललक थी। लाहौर के लारेंस गार्डन में पीछे की तरफ के लान पर रोज जाकर टैनिस सीखती थी। परदेश का विभाजन होते ही ये सब शौक मेरे लिए अजनबी हो गये। इनके लिए जैसी फुरसत और जैसी सहूलियतों की आवश्यकता थी उनके लिए जीवन में कोई स्थान नहीं रह गया, इसलिए ये शौक बेमानी हो गये।

सामने—गमे रोज़गार था। अचानक एम एस रंधावा से १९४८ में मुलाकात हुई तो उन्होंने दिल्ली रेडियो स्टेशन के डाइरेक्टर को पत्र लिखकर मुझे नौकरी दिलवा दी। बारह बरस यह नौकरी की।

इस नौकरी के पहले कुछ वर्षों में कांट्रेक्ट रोज़ाना के हिसाब से था, पांच रुपए रोज के हिसाब। जिस दिन बीमार हो जाऊं या छुट्टी ले लूं, उस दिन के पांच रुपये काट लिये जाते थे। इसलिए बीमार होने का शरीर को अधिकार नहीं दे सकती थी। कभी-कभी बुखार और जुकाम से आवाज़ रुक जाती तो मुश्किल आ पड़ती थी। आज याद आ रहा है—मेरे सेक्शन का मेरा एक कलीग कुमार हुआ करता था। ऐसे में वह मेरे स्थान पर अनाउंस कर दिया करता था—लम्बी अनाउंसमेंट वह कर देता था बहुत छोटी मुझसे करवा देता था ताकि उस दिन की रिपोर्ट में ग़लत भी कुछ न लिखना पड़े और उस दिन के पांच रुपये भी मुझे मिल जाएं।

देखा—ज़िंदगी के हर उतार चढ़ाव के समय जो मेरे साथ रही थी वह मेरी लगनी थी। चाहे कोई घटना मुझ अकेली पर घटी चाहे देश के विभाजन

में लकीरों के गुच्छे तेरी आग के साथी
और इस तरह कहते कहते वह बन गयी आग—
तेरी आग की उम्र इन अक्षरों को लग जाए।

जसा कोई कांड लोगों के साथ हो जाता यह लेखनी मेरे अंगों के समान मेरा एक अंग बनकर रहती थी। सो कवल यही जिंदगी का फैसला था। अन्य सब लोग जैसे खाद बनकर इसके रेशे रेशे में समा गए।

न जाने जिंदगी में कौन सी सुगंध के लिए क्या क्या खाद बन जाता है साहिर और सज्जाद की दोस्ती भी लगता है इमरोज की दोस्ती के खिले हुए फूल में कहीं शामिल है भले ही खाद बनकर उस उर्वर बनाने के रूप में।

इधर दो-तीन बरस हुए साहिर से मुलाकात हुई तो उसका तरोताजा ऐसा खूबसूरत था, दो दिन उसके घर रही। वापस आकर दो कविताएं लिखीं — कई बरसों के पिछों अचानक इक मुलाकात, तो दोहों की जिद इक नज्म बन गई"[1]

पर इस कांपती हुई खूबसूरती के बावजूद वह हालत मैंने सिर्फ इमरोज के साथ देखी है जिसमें उसके यह कहने पर मैं १९६० का तुम्हारा कुमूरबार हूं यह १९६० का बरस मेरा बचपन था मेरा कुमूर था —और चाहे मैंने उसके कुमूर की पीड़ा में से 'जनम जनी जसी कई कविताएं लिखी थीं पर आज सहज मन से यह कह सकती हूं— तुम्हारे और मेरे कुमूर क्या अलग-अलग हैं ?'

यह आज है। न जाने कितने 'कल इसकी खाद बने हैं

यह आज मेरी उम्र जितना लम्बा हो, यह चाह सकती हूं पर अगर किसी दिन यह आने वाला कल न बनना चाहे तो भी लगता है, कह सकूंगी— हमारे कुमूर अलग-अलग नहीं।

इस 'आज की कोई भी कल न हो तब भी इसके अर्थ कम नहीं होते।

इमरोज मुझसे साढ़े छह बरस छोटा है। मुझसे अब धूप और महनत नहीं सहे जाते पर उसे इनसे कोई फर्क नहीं पड़ता। कई बार हंसकर कहती हूं—खुदा एक जवानी तो सबको देता है, पर मुझे उसने दो दी हैं—मेरी खत्म हो गयी तो दूसरी उसने मुझे इमरोज की सूरत में दे दी। जिसके हिस्से में दो जवानियां आएं उसके आज को कल का क्या अरमान हो सकता है !

जब 'रोजी' कविता लिखी थी जोई कमाणा सोई खाणा, ना कोई किणका कल दा बचया ना कोई भोरा भलक वास्ते[2] तब उस 'आज की आंखों में पीड़ा के लाल डोरे थे। इस तकदीर को स्वीकार किया था, पर दांतों तले होठ दबाकर

आज यह तकदीर मन की सहज अवस्था है

अब—जिस घड़ी भी सब कुछ से विदा होना पड़े तो सहज मन से विदा हो

---

१ कई बरसों के बाद अचानक एक मुलाकात और दोनों एक नज्म की तरह कांप गए

२ जो कमाना वही खाना न कोई टुकड़ा कल का बचा, न तिल मात्र कल के लिए

सकती हू। केवल चाहती हू—जिनका मेरे होन मेरे जीने से कोई वास्ता नहीं था उनका मेरी मौत से भी कोई वास्ता न हो। ऐसे अवसरा पर प्राय वे लोग इ गिद आकर खडे हो जात हैं जो कभी पल का भी साथ नही होत केवल भीड होत हैं। भीड का मेरी जिन्दगी स भी वास्ता नहीं था। चाहती हू इसका मरी मौत से भी वास्ता न हो। राह रस्म कभी भी मेरी कुछ नही लगती थी। व लोग किसी 'भोग या शोक-सभा के रूप म तब भी कुछ झूठ सच बोलन का कष्ट न करें।

पजाबी का कोई अखबार रिसाला ऐसा नही था जिस खालते हुए मुझे यह मालूम नही होता था कि इसम किसन क्या मेरे विरुद्ध उगला होगा (कई जो मुझ स पहले इमरोज के हाथ आ जाते थे वह उन्हें मुझसे छिपाकर फाड देता था। इसका कुछ वणन मरे उपन्यास दिल्ली की गलिया मे आया था। उसमे इमरोज नासिर के रूप म था)—और मेरी मौत के बाद उन्ही अखबारो के 'शोक' एक बहुत बडा झूठ होंगे। और मैं समझती हू—किसी भी लाश के पास अगर कोई फूल पत्ता नही रख सकता तो उसे झूठ जैसी वस्तु रखन का भी कोई अधिकार नही है। इमरोज ने यथाशक्ति मुझे जीती को भी इन झूठों से बचाया था उससे ही कह सकती हू—कि वह किसी झूठ को मेरी लाश के पास न फटकने दे

मेरी मिट्टी को सिफ मेरे बच्चो के, और इमरोज के हाथ काफी है। सिफ काफी नहीं, गनीमत हैं।

मरी हुई मिट्टी के पास किसी जमाने मे लोग पानी के घडे या सोने-चादी की वस्तुए रखा करत थ। ऐसी किसी आवश्यकता मे मरी कोई आस्था नही है—पर हर चीज के पीछे आस्था का होना आवश्यक नही होता—चाहती हू इमरोज मरी मिट्टी के पास मेरा कलम रख दे।

एरिक हाफर क शब्दा म मनुष्य खुदा की एक अधूरी रचना है और उसका प्रत्येक सघष खुदा के अधूरे छोडे काम को पूरा करने का प्रयत्न होता है। कभी अपने 'यात्री उपन्यास के सबध म कुछ पक्तिया लिखते हुए मैंने लिखा था—यह अपन स आगे अपने तक पहुचने की यात्रा है।' आज एरिक हाफर को पढ़ते हुए लगा—यह अपने से आगे अपने तक पहुचन का प्रयत्न कदाचित अधूरे-स्वय को कुछ न कुछ पूण करने का ही प्रयत्न है इसीलिए जो लेखनी इस सम्पूण रास्ते म मर साथ रही, चाहती हू—मास क मिट्टी हो जाने की सीमा तक मेरे साथ रह।

रोज सवेरे पेड पौधा को पानी देना मेरे सबसे प्यारे कामा मे शुमार है। रोज सवेरे जितनी देर पानी देती हू इमरोज हाथ मे सवरे का अखबार लिये साथ-साथ मुझे खबरें सुनाता है। पहले अगले आगन म फिर पिछले और फिर बीच के आगन म। एक दिन पेडो के इद गिद लगाया हुआ मनी प्लाट इमरोज का दिखाया और कहा— देखो यह मनी प्लाट कसा बेलो की तरफ बढ गया है ता उसने उत्तर दिया— तुमने तो पानी द देकर वारिस शाह की बेल का भी बढा दिया है, यह ता सिफ मनी प्लाट है।'

कभी-कभी खुशी और उदासी एक साथ आ जाती है, कहा—'वारिस शाह की बेल को दिल का पानी दिया था, दिल का भी आसुओ का भी पर याद है तुम्ह वह समय जब तुमस पहली बार मिली थी तो यह खबर चारा तरफ फल गयी थी। तभी जब जालधर म किसी समागम के प्रधान पद के लिए मेरा नाम प्रस्तावित हुआ तो कम्यूनिस्ट पार्टी क एक नता न कहा था—नही हम उस नही बुलाएगे, उसकी बदनामी क कारण हमारी सभा बदनाम हो जाएगी।'

उसी शाम को दिल्ली के खालसा कॉलेज न मुझे रिसप्शन दिया था—दिल्ली यूनिवर्सिटी से डी० लिट० की डिग्री मिलने क सिलसिले म। मन म वही सवर का माहौल था उनका शुक्रिया अदा करके कहा— लेखक हर हाल म लेखक है, मौसम चाहे शोहरत का हो चाहे गुमनामी का चाहे बदनामी का

अब—समय बीत जान पर शोहरत को गुमनामी को और बदनामी को जिन्दगी के मौसम कह सकती हू। तसल्ली भी है कि सब मौसम देखे हैं। पर पहले—कई बरस पहल—इन मौसमा मे गुजरना बहुत कठिन लगता था।

जिन्दगी, इमरोज के साथ मे कोई समतल वस्तु नही है यह अति की ऊचाइयो और निचाइयो से भरी हुई है। इसम दो व्यक्तित्व मिलते है और टकराते हैं—नदियो के पानियो की भाति मिलते हैं और दो चट्टानो की भाति टकराते हैं। पर चौन्ह बरस (राम वनवास जितने बरस) के अनुभव के बाद कह सकती हू कि इस राह की निचाइया छोटा सच हैं और इस राह की ऊचाइया बडा सच हैं।

इमरोज का व्यक्तित्व दरिया के प्रवाह के समान है। जसे दरिया एक सीमा स्वीकार करता है पर नहर जसी पक्की बधी हुइ सीमा नही चाहे तो अपने प्रवाह का रुख भी बदल सकता है। इमरोज के लिए कोई रिश्ता केवल तब तक रिश्ता है जब तक वह बधन नही है। रिश्त अक्सर अपन स्वाभाविक स्वतत्र रूप म नही होते—कभी उनकी नकेल कानून के हाथ म होती है तो कभी सामाजिक कर्तव्य के पर इमरोज के शब्दा म— अगर राह अपनी है ता राहदारी की क्या जरूरत

है ?' हर कानून राहदारी' होता है। इमरोज को यह राहदारी अपनी राह की तौहीन लगती है।

मुझ पर उसकी पहली मुलाकात का असर—मेरे शरीर के ताप के रूप में हुआ था। मन में कुछ घिर आया, और तेज बुखार चढ़ गया। उस दिन—उस शाम उसने पहली बार अपने हाथ से मेरा माथा छुआ था— बहुत बुखार है ?' इन शब्दों के बाद उसके मुंह से केवल एक ही वाक्य निकला था— आज एक दिन में मैं कई साल बड़ा हो गया हूं।

इमरोज मुझसे साढ़े छह बरस छोटा है। पर उस दिन उस पहली मुलाकात के दिन—वह जब अचानक कई बरस बड़ा हो गया तो इतना बड़ा हो गया कि अपने और मेरे अकेलेपन को नापकर वह अक्सर कहने लगा— नहीं और कोई नहीं, और कोई भी नहीं, तुम मेरी बेटी हो मैं तुम्हारा पुत्र हूं।'

और जहां तक उसी दोस्ती की राह में आने वाली निचाइयों का प्रश्न है— उनके कारण बहुत ही छोटे होते हैं, पर उनसे पनपने वाला उसका गुस्सा और मेरी उदासी—कोई तीन घंटे के लिए बहुत गहरे हो जाते हैं—इतने गहरे कि अकेलापन 'आखिरी सच' लगने लगता है। ये कारण होते हैं—ड्राइंग रूम की एक गद्दी उलटी क्यों पड़ी हुई है ? सिगरेट का खाली पैकिट दीवान पर क्या गिरा हुआ है ? गोद की शीशी जिस मेज पर से उठाई थी, उस पर न रखकर उसे दूसरे कमरे की मेज पर क्यों रख दिया ? अगर कार बाहर निकली थी तो गरेज का शटर क्या नहीं बन्द किया ? और नौबत यह आ जाती है—हाथ का ग्रास हाथ में और सामने प्लेट में पड़ी हुई रोटी प्लेट में रह जाती है। घड़ी की सुई एक ही जगह पर अटक जाती है। एक खामोशी छा जाती है—जिसमें केवल एक खटका बहुत जोर से एक बार सुनाई देता है—और उसके कमरे का दरवाजा एक ठहाके से बन्द हो जाता है।

लगभग तीन घंटे इस तरह बीत जाते हैं जैसे समय का ऊपर का सांस ऊपर, नीचे का सांस नीचे रह गया हो। फिर इमरोज के एक हसीनतर फिक्रे से यह खामोशी टूटती है— मैं तुम्हारा शीर्षासन तुम मेरा प्राणायाम !

इसीलिए इन सब निचाइयों को छोटा सच कह सकती हूं और इमरोज के अस्तित्व को बड़ा सच।

हिन्दी कवि कलाश वाजपेयी को ज्योतिष का गहरा ज्ञान है। एक दिन कलाश ने कहा— अमृता ! तुम्हारे जन्म के समय चन्द्रमा तुम्हारे भाग्य के घर में बैठा हुआ था। मैं हंस रही थी— पर वह तो ढाई घड़ी बैठकर चला गया होगा ' कि पास से ही हंसकर इमरोज ने कहा— वह कोई इमरोज थोड़े ही था जो फिर और कहीं न जाता, वह सिर्फ चन्द्रमा था आया, बैठा और फिर उठकर टहल दिया चन्द्रमा का तो घर घर जाना होता है न

याद आ रहा है—एक दिन बीमारी की हालत में मैंने इमरोज से कहा—मैं इस दुनिया से चली गयी तो तुम अकेले मत रहना दुनिया का हुस्न भी देखना और जवानी भी। तो इमरोज ने बच्चे की तरह रूठकर कहा—मैं पारसी नहीं हूं जिनकी लाश को गिद्धों के हवाले कर दिया जाता है। तुम मेरे साथ और दस बरस जीने का इकरार करो—मेरी एक हसरत अभी बाकी है मैं एक अच्छी फिल्म बना लूं बस वह बनाकर फिर एक साथ दुनिया से जाएंगे।'

ये शब्द जिस घड़ी कहे गए उस घड़ी इससे बड़ा सच और कोई नहीं था। इसीलिए कहती हूं—जिन्दगी की सारी कठिनाइयां छोटा सच हैं, और इमरोज का साथ बड़ा सच।

यह बड़ा सच—हंसी मजाक की रौ में भी कभी छोटा नहीं हुआ। एक बार मुझे और इमरोज को चाय पीने की इच्छा हुई। इमरोज ने कहा—अच्छा तुम गैस पर चाय का पानी रखो आज मैं चाय बनाऊंगा।' मैं बिस्तर में बैठी हुई थी उठने को जी नहीं कर रहा था। कहा—'मेरे तो अब थोड़े से दिन रहते हैं जीने के, पर जितने भी बाकी रहते हैं अब मैं इस तरह जीना चाहती हूं मानो ईश्वर के विवाह में आयी हुई होऊं। इमरोज कोई मिनट भर के लिए चुप रहा, फिर कहने लगा—पर मैं भी तो ईश्वर के ब्याह में आया हुआ हूं!' मुझे हंसी आ गयी—हां हां, पर तुम लड़की वाले की तरफ से हो, मैं लड़के वाले की तरफ से। उस दिन से रोज एक मजाक सा चल गया कि बातों बातों में इमरोज कह देता—अच्छा जी! यह काम भी हम ही करे देते हैं हम लड़की वाले की तरफ से जो हुए—आप बैठे रहें लड़के वाले!

सच—इमरोज की दोस्ती में जैसे मैंने सचमुच ईश्वर का विवाह देखा हो विवाहों पर होने वाले बिरादरी वालों के झगड़े भी देखे हैं और विवाह भी

रसोइया कभी मेरे लिए जरूरी होता था इतना कि अगर उसे बुखार चढ़ता हुआ मालूम हो तो घबराकर सोचती थी—हाय ईश्वर, मुझे बुखार चढ़ जाए पर रसोइये को न चढ़े नहीं तो रोटी मुझे बनानी पड़ेगी पर पिछले सोलह सतरह बरसों से रसोइया मेरे लिए जरूरी नहीं रहा। (अपने हाथ से रोटी पकाने की आदत मुझे अन्दरेटे जाकर पड़ी थी। मैं और इमरोज कांगड़ा वैली प्रसिद्ध चित्रकार सोभासिंहजी से मिलने गए थे, पर हमारे खाने का सारा झंझट जब सोभासिंहजी की पत्नी पर पड़ गया तो अच्छा नहीं लगा। मैंने कोशिश की तो मुझसे लकड़ियों की आग नहीं जलायी गयी। पर जब इमरोज ने फूंकें मार कर आग जलाने का जिम्मा ले लिया तो मैंने रोटी बनाने का जिम्मा ले लिया। और फिर वापस आने पर नौकर एक दखल अन्दाजी मालूम होने लगा।) सो पिछले सोलह-सतरह बरसों से रोटी अपने हाथ से बनाती हूं। कमरों और बरतनों की सफाई मंजाई के लिए पार्ट टाइम प्रबन्ध है। इससे ज्यादा मुझे

किसी नौकर की आवश्यकता नही पडती। पर अगर यह पाट टाइम वाला कभी बीमार हो या छुट्टी पर हो तो बरतन भी खुद साफ कर लेती हू। ऐसे समय म मैं बरतन माजती हू और इमरोज पास खडे होकर मुझे गम पानी दिए जाता है, मैं बरतन धोए जाती हू। और जब कभी वह स्टडिया म पेंट कर रहा होता है मैं उसे उठने नही देती खुद ही बरतनो का काम खत्म करके आवाज दे देती हू—'लो, लडकी वालो ! आज तो लडके वालो न बरतन भी माज दिए है।'— और फिर जसे यह मजाक हमारी जिन्दगी का एक हिस्सा बन गया है उसी तरह एक उत्साह भी हमने अपने लिए सुरक्षित रखा हुआ है। इमरोज का व्यवसाय बहुत महगा है रग भी। कभी उसके पास नया कनवस खरीदने के लिए पसे न हो तो कहती हू— तुम्हारी पहली पेंटिंग मैंने खरीद ली यह लो पस—तुम नया कनवस खरीद लो और पेंट कर लो।' और जब कभी मुझे अपनी किताबो स पसे न मिल रहे हो और मैं उदास होऊ तो वह कहता है— चलो ! आज मैंन तुम्हारी अमुक कहानी पर फिल्म बनान का अधिकार खरीद लिया, यह ला साइनिंग एमाउन्ट और इसका फिल्मी अधिकार मुझे बेच दो।'

जानती हू, पसे उसक पास हो या मेरे पास, रहत उतन के उतने ही हैं—पर हम मौका आन पर उस दिन का उत्साह अवश्य कमा लेते है और इस तरह हर कठिन दिन को आसान बना लेते है। और यह सब कुछ इतना बडा सच बन जाता है कि पसा की कमी छोटा सच हो जाती है।

मैं केवल मन म नही ट्रको-अलमारियो म कई छोटी छोटी चीजें सभाल-कर रख लेती हू। किसी के जन्मदिन पर कोई सौगात देनी हो, मेरे ट्रको और अलमारियो म स कुछ न कुछ जरूर निकल आता है। अचानक कुछ खरीदना पड जाए बक के किसी न किसी एकाउन्ट म स उसके लिए रकम भी मिल जाती है। बे-समय भूख लग आए तो फ्रिज म स कुछ न कुछ खाने के लिए भी मिल जाता है। इमरोज इस बात पर बहुत हसता है। एक बार हसते हुए कहन लगा — तुमने मरा भी कुछ हिस्सा कही बचाकर जरूर रखा होगा ताकि अगले जन्म म काम आए '

अगल जन्म का पता नही पर लगता है पिछले जन्म का जरूर कुछ बचा-कर रखा हुआ था जिस इस जन्म म मैं दुगम रगिस्तान म पानी के कटोरे के समान पी सकी हू। और सोचती हू—ईश्वर कर उसकी बात भी ठीक हो जाए और मैं उस, कुछ कही मे अपने अगले जन्म के लिए भी बचाकर रख सकू

एक कविता की व्याख्या

५ सितम्बर १९७३ की रात थी। साढ़े दस बजे थे। मैं काजानजाकिस की किताब 'राक गाडन' पढ रही थी कि टेलीफोन आया—एक यूनिवर्सिटी के वाइस चासलर कह रहे थ— सवर सीनट की मीटिंग है जिसम तुम्हारी कहानी एक शहर की मौत के खिलाफ रेजोल्यूशन पास होना है। मैं तुम्हारे पिताजी का दोस्त हुआ करता था, उनकी इज्जत करता था इसलिए तुम्ह फान कर रहा हू कि तुम्हारी कहानी एक शहर की मौत' क साथ तुम्हारे लेखन की मौत हो गयी है।'

मैंने यह मौत की खबर सुनी। वाइस चासलर साहब सचमुच इस मौत का अफसोस कर रहे थ इसलिए उनकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद करके पूछा— आपन यह कहानी पढी है ?'

नही। मैं लिटरचर के बारे म ज्यादा नही जानता, मैं तो साइस का आदमी हू।

आपको लिटरचर के बार म मालूम नही तब भी आपकी विद्वता पर भरोसा करके कहना चाहती हू—आप खुद इस कहानी को एक बार जरूर पढें

मेरे पास इसके सिनाप्सिस आए हैं वे बहुत बुरे हैं।

'सिनाप्सिस, हो सकता है ठीक न हो।'

सिनाप्सिस कस गलत हो सकते हैं ?

'काई प्रेजुडिम्ड माइड लिख तो वे गलत हो सकत हैं।

'हा यह ठीक है पर

जब कहानी मौजूद है ता उसे पढने का कष्ट किया जा सकता है।'

हमारा कोई आदमी शायद रजिस्ट्रार, अगर दिल्ली आए तो उस समय दे देना, उसस कहानी डिसकस कर लेना '

'अगर आप खुद पढना चाहें तो मुझ फोन कीजिएगा, मैं कहानी को आपसे डिसक्स कर सकती हू।

अच्छा, अगल हफ्ते फोन करूगा। आज मैंने बे-समय फान किया है। असल मे मैं तुम्हारे पिताजी की इज्जत करता था वह बहुत ऊच विचारो के थे, तुम्हारी इज्जत भी करना चाहता हू।

पर वह मुझ पढे बिना नही हो सकती।'

तुम ऐसा लिखा कि हम तुम्हारी इज्जत करें।

फिक्र न कीजिए जब तक मेरी नजरो मे मेरी इज्जत है मेरी इज्जत को ठेस नही पहुचती '

मेरी तरह मेरी इज्जत भी सारी उम्र किसी पर आश्रित नहीं रही। फोन बन्द हो गया तो वह भी मेरी तरह हस रही थी। चार कदम पर खडा हुआ इमरोज फोन की बात सुन रहा था, जोर से हस पडा, कहने लगा— रेजोल्यूशन कामों के निर्माण के लिए बने थे, इन लोगों ने रेजोल्यूशनों को किस काम में लगा दिया ? ये ऐसे रेजोल्यूशन पास करेंगे तो रेजोल्यूशन शब्द की हतक करेंगे तुम्हें क्या ?'

उन्हीं दिनों उस कहानी का सुरेश कोहली एक उस किताब के लिए अंग्रेजी में अनुवाद कर रहे थे जिसमें हिन्दुस्तान की कुछ चुनी हुई कहानियों का संग्रह छपना था। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से मेरे सिलेक्टिड वर्क्स छप रहे थे—उसमें भी यह कहानी चुनी गयी थी—और राजपाल एण्ड संस की ओर से मेरी कहानियों की पंजाब से बाहर के पाठ जो किताब छप रही थी, उसकी मुख्य कहानी यही थी। पर यह सब कुछ न भी होता तो भी मुझे मालूम था कि यह कहानी मेरी अच्छी कहानियों में से है—और इसके लिख सकने की मेरी तमन्ना को किसी यूनिवर्सिटी का रेजोल्यूशन कम नहीं कर सकता।

उदासी यह नहीं थी—पर मन उदास था। उदासियों का एक लम्बा सिलसिला था, जो जिस दिन हाथ में कलम लिया था उसी दिन से मेरे साथ चलने लगा था—और फिर सदा मेरे साथ चलता रहा था।

फिर उन्हीं दिनों देवेन्द्र सत्यार्थी साहब का सदा की भांति मेरे संबंध में एक स्कैंडल्स लेख छपा। सत्यार्थी साहब जिन्दगी में कभी भी मेरे बहुत परिचित नहीं रहे, पर वह जब भी कभी मेरे बारे में लिखते रहे न जाने मन के किस संकट में फंसकर लिखते रहे। खैर पंजाबी में कई देवेन्द्र सत्यार्थी हैं जिन्हें किसी की रूह की पाकीजगी से कोई वास्ता नहीं है। सो इस लेख का असर भी था, केवल इस लेख का नहीं था पर यह उपरामता के सिलसिले को चलाए रखने वाली एक छोटी सी कडी जरूर थी—सो उपरामता और लम्बी हो गयी और उदासियों के इस सिलसिले से तंग आकर मैंने एक कविता लिखी—अलविदा।

किसी कविता की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं होती पर सोचती हूं यह कविता एक व्याख्या की मांग करती है क्योंकि यह कविता इतनी इनडायरेक्ट है कि बाहर से केवल एक व्यक्ति से जुड़ी हुई प्रतीत होती है पर इसके भीतर का चेहरा एक व्यक्ति का नहीं, पूरे पंजाब का चेहरा है।

पंजाब का चेहरा मेरे लिए महबूब का चेहरा है पर उस महबूब का जो गैरों की महफिल में बैठा हो।

लिखा—

खुदा ! तेरी नज़्म जिन्नी तनू उमर देवे !
मैं एस नज़्म दा मिसरा नहीं,
जु होर मिसरेयां दे नाल चलदी रह या,
ते तनू इक्क काफ़िये दी तरहां मिलदी रह वा।
मैं तेरी ज़िन्दगी चों निक्ली हां—
चुपचाप—इस तरहां—
ज्यां लफ़्जां दे विच्चों अर्थ निक्लदे।
ते वदनसीब अर्थां दा की—
ओहना दा होणा वी ओहना दे निक्लण जिहा।
ते जीवण अज्ज इक्क अर्थ निक्लेया
कल नूं कोई नामुराद होर अर्थ निक्लेगा
पर नज़्म इस जग ते सलामत रहवे
ते खुदा तेरी नज़्म जिन्नी तनू उमर देवे।[1]

अपने अस्तित्व पर मुझे मान है—अगर पंजाब की धरती पंजाब की एक नज़्म है—तो मैं उस नज़्म के अर्थों के समान हूं। अर्थ निकाले जाते हैं—आज और अर्थ कल को कुछ और अर्थ।

पंजाब में इस समय जैसी समझ और अदबी सियासत है, मैं सचमुच उसमें से, चुपचाप उसके अर्थों की तरह, निकल जाना चाहती हूं। और कल मुझे

---

१ खुदा तेरी नज़्म जितनी तुझे उम्र दे !
मैं इस नज़्म का मिसरा नहीं
जो और मिसरों के साथ चलती रहूं
और तुमसे एक काफ़िये की तरह मिलती रहूं।
मैं तुम्हारी ज़िन्दगी से निकली हूं
चुपचाप—इस तरह—
जैसे शब्दों से अर्थ निकलते हैं !
और बदनसीब अर्थों का क्या—
उनका होना भी उनके निकलने जैसा
और जिस तरह आज एक अर्थ निकला है
कल कोई नामुराद और अर्थ निकलेगा
पर नज़्म इस जग पर सलामत रहे
और खुदा तेरी नज़्म जितनी तुझे उम्र दे।

मालूम है मेरी तरह, उसके अर्थों के समान और साहित्यिक भी उसम से निकलेंगे, निकाले जाएग।

नज्म जैसी धरती सलामत रहे, पजाब सलामत रहे मेरी तमन्ना सिफ चुपचाप उसमें स निकल जान की है इसीलिए यह अलविदा' नज्म लिखी है।

ककनूसी नस्ल

इतिहास बताता है—फीनिक्स (ककनूस) से अपने आपको पहचानन वाली नस्ल ने अपना नाम फिनीशियन रखा था। ककनूस बार-बार अपनी राख म से जन्म लेता है—मनुष्या की जिस नस्ल ने हर विनाश मे से गुजर सकने की अपनी शक्ति को पहचाना अपना नाम जल मरनेवाले और अपनी राख म से फिर पैदा हो उठने वाले ककनूस स जोड लिया।

यह फीनिक्स सूरज की पूजा से सबधित है, सूरज जो रोज डूबता है और रोज चढता है। और य फिनीशियन्ज, जिनका उदगम-स्थान आज तक इतिहास को ज्ञात नहीं—यद्यपि इनके सबध समर और हिंदुस्तान से पाए जात हैं—सदा सूरज की पूजा करत थे। आन सूरज का एक नाम था इसीलिए फिनीशियन्ज न जब यूरोप म नयी धरती की खोज की, उसका नाम ऐल ओन-डोन (सूरज का शहर) रखा जो आज लदन है।

इजराईल के जब बारह कबील बिखर गए थे प्रतीत होता है कि उनम से भी कुछ लोग फिनीशियन्ज से जा मिले थे क्योंकि शब्द इग्लैंड की जडें हिब्रू भाषा म हैं। जोजफ कबील का चिह्न बल होता था। बैल के लिए हिब्रू भाषा म ऐंगल शब्द है। नयी खोजी हुई धरती को उन लोगो ने ऐंगल-लैंड का नाम दिया जो आज इग्लड है।

मेरे खयाल का इतिहास से केवल इतना सबध है कि उस नस्ल का फीनिक्स से अपना सबध जोडना मुझे बडा अपना-सा और पहचाना हुआ लगता है। फिनीशियन नस्ल को मैं अपनी भाषा मे ककनूसी नस्ल कह सकती हू। दुनिया के सब सच्चे लेखक मुझे ककनूसी नस्ल के प्रतीत होते हैं रचनात्मक क्रिया की आग म जलत और फिर अपनी राख म से रचना के रूप म जन्म लेते हुए।

बहुत वष हुए—'सूरज और जाडा' शीषक लेख म मैंने लिखा था—सूरज के डूबने से मेरा कुछ रोज डूब जाता है और इसके फिर आकाश पर चढने के साथ ही मेरा कुछ रोज आकाश पर चढ जाता है। रात मेरे लिए सदा अधेरे की एक घिनाव-सी रही है—जिस रोज इसलिए तरकर पार करना होता है कि

उसके दूसर पार सूरज है और लिखा था, 'यह सब-कुछ चेतन तौर पर नहीं हुआ। कब हुआ ? क्या हुआ ? पता नहीं। मैंने सिर्फ इस चेतन तौर पर समझने का प्रयत्न किया है। याद है—बहुत छोटी थी जब सूरज के डूबने के समय अचानक रोने लगती थी। मा कभी प्यार करती, कभी झिडक देती, और कभी मुझे थपक-कर सुलाते हुए कहती— बस आखें मीची सूरज आया। उसस रोज मेरा प्रश्न होता था— पर सूरज डूबा क्या ?

सूरज का जिक्र बार-बार मेरी कविताओ म आता रहा। केवल १९७३ म मैंने चेतन तौर पर पुरानी रचनाए खोजी, देखा कि यह जिक्र कस-कस आता रहा

१९४७ म देश के विभाजन के समय जबदस्ती उठाकर ले जायी गयी औरता की कोख स जन्मे 'मजबूर बच्चे की जबानी एक कविता लिखी थी—मेरा खयाल है सूरज का पहला और सशक्त वणन उसम आया था

धिक्कार हू मैं वह जो इन्सान पर पड रही
पदाइश हू उस वक्त की, जब टूट रहे थे तारे
जब बुझ गया था सूरज

उसी वष देश की स्वतत्रता के साथ बहुत स सपन जोडकर एक कविता लिखी थी मैं हिन्द का इतिहास हू और आजादी के जश्न के लिए कहा था

चन्द्रमा जो अम्बर से झुका है इसे प्रणाम करने को
और सूरज जो नत हुआ है इस सलाम करने को।

निजी मुहब्बत की भरपूर तीक्ष्णता मैंने १९५३ म देखी थी—उस समय की कविताओ म सूरज का वणन इस प्रकार हुआ है

चन्द्रमा से भी श्वेत शरीर पृथ्वी का
सब किरणें सूरज में से किरमची रग ढाकर लायी

हमने सूरज को घोलकर धरती का रग लिया
पूरब ने कुछ पाया है कौन से अम्बर को टटोलकर
जसे हाथ मे दूध का कटोरा, उसम केसर घोल दिया है

सूरज ने आज मेहदी घोली—

हथलिया पर आज दोना तक्दीरें रग गयी

इस सूरज को, केसर वाल दूध के कटोर के रूप म, और इसकी लाली को मेहदी के रूप मे, मैंने केवल तब ही देखा था। फिर इसका वणन उदास होता गया

पच्छिम म लहर उठी सूरज की नाव डोल गयी
गठरी पाटली उठाए अब साझ हमारी ओर आ रही है

बरसा तक सूरज जलाए, बरसा तक चाद जलाए,
आकाशों से जाकर चादी रग के तारे माग लायी
किसी ने आकर दीया न जलाया
घोर कालख प्राणा से लिपटी रही
जसे बरसा की बाती से राशनी बिछुडी रही

पूरब से आधी उठी, अबर पर छा गयी
और चढते सूरज को जैसे उसने छुन दिया
सूरज सरकडे-सा, काल कामा चलते हुए,
धूप न जाने कहा गयी
सूरज सरकडे सा पडा है किरनें मूज जैसी

पूरब न चूल्हा जलाया, पवन फूकें मार रही,
किरनें ऊची हुइ जस आग की लपटें !

सूरज ने हाडी चढाई, धूप आटा गूधने लगी
खना की हरियाली जस बिछावन बिछाया हो
आज तो आ जा, ओ परदेसी ! कल की कौन जान

सूरज की पीठ की
फागुन न उठते हुए सब गठरी पोटली बाध ली
ये भी तीन सौ पैंसठ दिन यू ही चले गए

हमारी आग हमे मुबारक, सूरज हमारे द्वारे आया
और उसने आज एक कोयला मागकर अपनी आग सुलगायी

दिलो के नाजुक पोरा म
किरनो न सूइया चुभाइ जा आरपार हो गयी—
यह यादो का दावानल !
लाख पल्ले को बचाया, पर किनारा छू गया

आज चाद सूरज प्राणा का वाणिज्य करत हैं
और उजाले से भरे साव दोना उलटते हैं
फिर हमे क्यो तेरी दहलीज याद आ गयो
आज लाखो खयाल सीढिया चढत-उतरते है

उम्र के द्वार मत भेडो, चलना अभी बहुत बाकी है
अभी सूरज का उबटन धरती अगो पर मल रही है

नीद के होठा से जसे सपने की महक आती है
पहली किरन रात के माथे पर तिलक लगाती है
हसरत के धागे जोडकर शालू-सा हम बुनते रहे
विरह की हिचकी मे भी हम शहनाई को सुनते रहे

रात की भट्ठी को किसन जलाया
सूरज की देग कैसे खौलती है
बात है दुनिया की, ऐ दुनिया वालो !
इश्क को फिर देग म बठना है

सूरज का पेड खडा था, किरना का किसी ने तोड लिया,
और चाद का गाटा अम्बर स उधेड दिया

सूरज का घोडा हिनहिनाया, रोशनी की काठी गिर गयी
उम्रा क फासले तय करता हुआ धरती का पथिक रो उठा

अम्बर के आले मे सूरज जलाकर रख दू
पर मन की ऊची ममटी पर दीया कसे रखू

आखा पर धुध का गिलाफ लिये किसकी पग धलि चूमने,
सूरज की परिक्रमा करती ठहर गयी धरती

नजर के आसमान से है चल दिया सूरज कहीं
पर चाद म अभी भी उसकी खुशबू है आ रही

सूरज न कुछ घबराकर आज
राशनी की एक खिडकी खोली
बादल की एक खिडकी बन्द की
और अधेरे की सीढिया उतर गया

अम्बर एक आशिक, निढाल सा बैठा, धुआ का हुक्का पी रहा
और सूरज के कोयले से रेखाए खीचता, किसी की राह देख रहा

आज पूरब की खटिया खाली है सुबह बठन को नही आयी
बावरा अबर उसे धरती की खाई म है खोज रहा

मुह म निवाला नही निवाले की बातें रह गयी
आसमा पर रातें काली चीला की तरह उड रही

सूरज एक नाव है जो पच्छिम की लहर स डूब गयी सूरज रूई का एक गाला है जिस गहरी आधी ने धुन दिया सूरज एक हरा जगल है जो सूखकर सरकडा बन गया है सूरज दिल की आग स खाली है इसने मेरे दिल की आग से कोयला मागकर अपनी आग सुलगायी थी सूरज सूइयो की एक पोटली है जो मेरे पारा के आर पार हो गयी है सूरज एक खौलती हुई देग है जिसम आज मरे इश्क को बठना है सूरज एक पेड है जिस पर से किसी ने किरनें तोड ली हैं सूरज एक घडा है जिसके ऊपर से उजाले की काठी उतर गयी है सूरज एक दीया है जिसे अबर के आले मे रखकर जलाया जा सकता है सूरज मेरे दिल की तरह है जो घबराकर अधेरे की सीढिया उतर जाता है सूरज एक बुझा हुआ कायला है जिससे अबर लकीरें खीचकर किसी की राह देखता है सूरज एक उम्मीद है जिसके बिना रातें काली चीलो की तरह आसमान मे उड रही है

सूरज के ये अनेक रूप देख रही हू—और इनम चेतना का रूप भी है

दिन के आगन म रात उतर आयी, इस दाग को कस सुलाऊ
दिल की छत पर सूरज चल आया इस दाग को कैसे छिपाऊ

अभी भोर हुई है
छाती को चीरकर छाती म सूरज की किरन पडी है

जिन्दगी जो सूरज से शुरू होती है सब ग्रह पार कर अत मे फिर सूरज की ओर लौटती है। यह क्रिया भी अचेतन तौर पर लिखी गयी थी। आज उसे चेतन तौर पर देख रही हू

दिल के पानी म लहर उठी लहर के परा से सफर बधा हुआ,
आज किरनें हम बुलाने आयी, चलो अब सूरज के घर चलना है

निजी मुहब्बत की कविताओ के अतिरिक्त, सूरज और कविताओ मे भी बलात् आता रहा—जैसे मैंने हो ची मिन्ह से हुई अपनी मुलाक़ात पर कविता लिखी थी

वियतनाम की धरती से पवन भी आज पूछ रही है
इतिहास के गालो पर स आसू किसने पोछा
धरती को आज गयी रात एक हरियाला सपना आया
अम्बर के खेतो म जाकर सूरज किसने बोया !

और जग की भयानक आवाजो से मुक्त हुई धरती की आकाक्षा म जो कविताए लिखी

धरती ने आज पुछवाया है
भविष्य की लोरी कौन लिखेगा
कहते हैं—एक आशा किरनो की कोख मे आयी है

पूरब ने एक पालना बिछाया, जद्दी पुश्तनी एक पालना,
सुना है, सूरज रात की कोख म है

अरज करे धरती की दाई
रात कभी भी बाझ न हो, पीडा कभी भी बाझ न हो

ये सारी कविताए वे हैं—जो १९४७ और १९५९ के बीच के वर्षों म लिखी थी। इसके बाद के तरह वष और हैं। दख रही हू इनम भी सूरज का उल्लेख है

मुझे वह समय याद है
जब एक टुकडा धूप का, सूरज की उगली पकडकर
अधेरे का मेला देखता, भीडा म खो गया

गलिया की कीचड पार कर अगर तू आज कही आए
मैं तेरे पैर धो दू
तेरी सूरजी आकृति
मैं कवल का किनारा उठाकर हड्डिया की ठिरन दूर कर लू
एक कटोरी धूप की मैं एक घूट म पी लू
और एक टुकडा धूप का मैं अपनी कोख म रख लू
मैं कोठरी दर कोठरी—रोज सूरज को जम देती
मैं रोज सूरज को जम देती और रोज सूरज यतीम होता

इस नगर म भी सपने आते हैं
कितना विचारो के द्वार बद करो फिर भी भीतर आ जाते है
कही सगमरमर की घाटी है उसकी बात कह जाते हैं
और सारा नगर उनके कहन से, नींद म चल देता है
फिर रास्त म उसे सूरज की एक ठोकर लग जाती है

डेढ घटे की मुलाकात—
जसे बादल का एक टुकडा आज सूरज के साथ टका हो
उधेड थकी हू, पर कुछ नही बनता, और लगता है—
कि सूरज के लाल कुरते मे यह बादल किसी ने बुन दिया है

सूरज को सारे खून माफ हैं
दुनिया के हर इसान का—वह
रोज 'एक दिन' कत्ल करता है

अधेरे के समुद्र म मैंने जाल डाला था
कुछ किरनें कुछ मछलिया पकडने के लिए
कि जाल म पूरे-का पूरा सूरज आ गया

इस समय की लेनिन और गुरु नानक जसे व्यक्तियो के सबध म लिखी कविताओ म भी सूरज का उल्लेख है

तू मेरे इतिहास का कसा पात्र है ?
मेरे दीवार के कैलेंडर से निकलकर
तू रोज उसकी तारीख बदलता है
और मुझे एक नये दिन की तरह मिलता है।
कैलेंडर से बाहर आकर
तू सडक पर निकलकर चलता है
तो एक धूप निकल आती है
कच्चे गर्भ के दिन है मेरा जी नही ठहरता
दूध बिलौने बठी, लगा मक्खन आ गया है
मैंने हाडी म हाथ डाला, तो सूरज का पेडा निकल आया

गुरु नानक की पत्नी सुलखनी की ओर स जो कविता लिखी वह सारी-की सारी सूरज से भरी हुई है

मैं एक छाया थी—एक छाया हू
मैंने सूरज की यात्रा के साथ यात्रा की है
सूरज की धूप पी है
और धूप की एक नदी मे नहायी हू
यह सूरज परीक्षा का समय था
और सूरज परीक्षा का अन्त नही था
छाया की इस कोख को एक हुक्म था
कि अपने अधेरे मे से उस किरनो को जन्म देना है
किरनो की जन्म पीडा सहनी है
और छाया की छाती मे से
किरना को दूध पिलाना है
और जब सूरज चतुर्दिक घूमेगा
बहुत दूर जाएगा
तो छाया न पीछे रहकर
उन बिलखती हुई किरनो को बहलाना है

सूरज की मैंने अनेक रूपा म कल्पना की है—वहा उसके साथ भोग तक की भी कल्पना की

एक कटोरी धूप की मैं एक घूट में ही पी लू
और एक टुकडा धूप का मैं अपनी कोख में रख लू

और सूरज से धारण किए गर्भ में से सूरज के पैदा होने तक यह जिक्र पहुचा कोठरी दर कोठरी मैं रोज सूरज को जन्म देती

पूजा के रूप में मैंने कभी सूरज की पूजा नहीं की, पर यह उसके लिए कमी रही है कि उसके अस्तित्व को अपनी कोख के अंधेरे तक भी ले गयी हू

और इसी विचार को सुनखनी के विचार में भी डाल लिया

ऐसा लगता है कि मुझ जैसे कुछ लोग, चाहे किसी भी देश में हो या किसी भी शताब्दी में, ककनूमी नस्ल के ही होते हैं।

कहते हैं—ककनूम पक्षी चील की लम्बाई चौडाई का होता है। इसके पख चमकीले किरमिची और सुनहरे होते हैं। इसके स्वर में संगीत होता है और यह सदा एक ही अकेला होता है। इसकी आयु कम-से-कम पाच सौ वर्ष होती है। कुछ इतिहासकार इसकी आयु एक हजार चार सौ इकसठ वर्ष मानते हैं। इसकी आयु का अनुमान सत्तानवे हजार दो सौ वर्ष भी है। इसकी आयु की अवधी जब शेष होने लगती है यह सुगधित वृक्षों की टहनियां इकट्ठी करके एक घोसला बनाता है और उसमें बैठकर गाता है जिसमें आग पैदा होती है और यह घोसले सहित उसमें जल जाता है। इसकी राख में से एक नया ककनूस जन्म लेता है जो सारी सुगधित राख को समेटकर सूरज के मंदिर की ओर जाता है और वह राख सूरज के सामने चढा देता है।

कुछ इतिहासकार इसकी मृत्यु का वर्णन इस प्रकार करते हैं—कि जब इस जीवन के अंतिम समय के आने का आभास हो जाता है, यह स्वयं उडकर सूरज के मंदिर में पहुच जाता है और पूजा की आग में बैठ जाता है। यह जब आग में बिलकुल राख हो जाता है तो इसकी राख में से नया ककनूस जन्म लेता है।

मिश्र के पुरातन इतिहास के पक्षी का घर उधर बताया जाता है जिधर सूरज उदय होता है। इसलिए इतिहासकार इस पक्षी का मूल स्थान अरब या हिंदुस्तान मानते हैं—हिंदुस्तान अधिक क्योंकि सुगंधित वृक्षों की टहनियां हिंदुस्तान की भूमि के साथ जुडती हैं।

लटिन के एक कवि ने ककनूस को रोमन राज्य में संबंधित किया है। कुछ पादरियों ने इसे क्राइस्ट की मृत्यु और उसके पुनर्जीवित होने की वार्ता से संबंधित किया है और कुछ लोग इस कुवारी मां की कोख से जन्मे क्राइस्ट के जन्म से जोडते हैं। पर मैं इस हर सच्चे लेखक के अस्तित्व से जोडना चाहती हू—चाहे वह किसी देश का हो चाहे वह किसी शताब्दी का हो।

एक डायरी की कतरनें

डायरी लिखने की मुझे आदत नहीं है। अनेक बार कोशिश की पर दो चार दिन से अधिक उसका नियम मुझसे सहा न गया। शायद इसकी एक उदास पृष्ठ भूमि थी—जो चेतन तौर पर नहीं पर अचेतन तौर पर सदा मेरे सामने आकर खड़ी हो जाती थी पता नहीं।

पृष्ठभूमि याद है—तब छोटी थी, जब डायरी लिखती थी तो सदा ताले में रखती थी। पर अलमारी के अंदर खाने की उस चाबी को शायद ऐसे सँभाल सँभालकर रखती थी कि उसकी सँभाल किसी की निगाह में आ गयी। (यह विवाह के बाद की बात है)। एक दिन मेरी चोरी से उस अलमारी का वह खाना खोला गया और डायरी को पढ़ा गया। और फिर मुझसे कई पंक्तियों की विस्तारपूर्ण व्याख्या माँगी गयी। उस दिन को भुगतकर मैंने वह डायरी फाड़ दी, और बाद में कभी डायरी न लिखने का अपने आपसे इकरार कर लिया।

फिर और बड़ी हुई तो अपना ही इकरार अपने आपको बचकाना-सा लगने लगा। उस इकरार को तोड़कर फिर डायरी लिखने के लिए मन पक्का किया। कुछ समय तक लिखती रही। और फिर अचानक वह डायरी मेरे कमरे से चोरी हो गयी। यह स्पष्ट था कि एक साधारण चोर की आवश्यकताओं में यह आवश्यकता नहीं हो सकती थी, यह किसी विशिष्ट व्यक्ति की ही आवश्यकता हो सकती थी। कई बरस तक मुझे उसका पश्चाताप रहा। आज भी उसकी कसक-सी बनी हुई है। जिस 'शांति बीबी' पर मुझे उस डायरी की चोरी का संदेह है अब चाहूँ भी तो उसका कुछ नहीं हो सकता।

ये दो घटनाएँ थीं—जिनके कारण शायद मैं फिर नियमित रूप से कभी डायरी नहीं लिख सकी। हाँ, कभी-कभी एक जरूरत सा उठता है बरस छमाही कुछ पंक्तियाँ लिख लेती हूँ आज उन बिखरी हुई पंक्तियों को बिखरी हुई तारीखों के नीचे ढूँढने चली हूँ तो वे भी बहुत नहीं मिलीं। जो कुछ मिली हैं वे इस प्रकार हैं

बहुत समकालीन हैं केवल एक मैं
मेरा समकालीन नहीं

यह कविता की प्रथम पंक्ति थी पर अभी आगे कुछ नहीं लिखा था। वैसे यह जानती थी कि यह सारी उपरामता स्वयं से स्वयं तक की बात थी। इसी से

मेल खाती हुई कुछ पक्तिया थी, अभी कागज पर नही उतारी थी पर छाती म हिल रही थी

मैं बिना मरा जनम
पुण्य की थाली म अपराध का एक शगुन है '

कि आखें अखबार के पहले पन्ने पर कापने लगी—'सोवियत ट्रूप्स ऑकुपाई चेकोस्लोवाकिया सरप्राइज इनवजन टु स्मश लिबरेशन ड्राइव फेट आफ दुबचेक अनसटन ' और अभी जो स्वय' केवल अपना था, न जान किस किस का 'स्वय बन गया है—फासिज्म की भयानकता भुगती नही है, केवल सुनी है, या उसको जिन देशो ने भुगता है उनमे घूमते हुए उसके कुछ चिह्न दखे है। तब भी उसकी कल्पना भयानक है। इसीलिए समाजवाद से सपने जुडते है। उसने जिन देशा मे जो कुछ हासिल कर लिया है उससे इनकार नही, पर उसके आगे जो कुछ हासिल करने के इधर ही वह खडा हो गया है पीडा केवल उसे लेकर है

उसका पिघला हुआ चेहरा कभी अचानक बडा शासक जैसा कसा हुआ दिखाई देता है और मास के होठा पर जो शब्द आते है वे खुदकुशी करत प्रतीत होते हैं। और लगता है अगर वे खुदकुशी से बचते हैं, कागज पर उतरते है, ता कत्ल होते हैं।

कविता मेरे इद गिद एक चक्कर-सा लगाती हुई न जाने कहा चली गयी है—कहा की कहा। कागज पर सिफ अपने पगो के निशान छोड गयी है—

बन्दूक की गोली
अगर एक बार मुझे हनोई म लगती है
तो दूसरी बार प्राग मे लगती है
और एक धुआ हवा म तरता है
और मेरा मैं अठमासे बच्चे की तरह मरता है

—२२ अगस्त १९६८

' Mr Cernik said Go away and urge the best brains of the country to get out whilst they can ' यह समाचार आज मरे जन्मदिन पर दुनिया की ओर से किस प्रकार की सौगात है ?

आथर कामलर न अपनी जन्मपत्री बनाने के लिए अपने जन्म के दिन छपे हुए समाचारपत्र ढूढे थे और देखने लगा कि जिस दिन उसका जन्म हुआ उस दिन दुनिया म कौन-कौन-सी घटनाए हुई था—कौन-सा जहाज डूबा था किस

बहुत स मिट्टी धूल म लिबड़े हुए होत हैं और कभी कभी वह हड्डी पा जात है जिसे व सारे दिन चचाडते रहत ह

कई खुजली से खाए हुए शरीर वाले है जा सारे दिन अपनी एक टाग से अपने शरीर को खुजलात रहत हैं।

सब के सब जार जोर स भोकते है। केवल झुग्गिया और झोपडिया न ह न हे पिल्ला की भाति काटन को नही दौडत केवल टाय टाय करते रहते हैं

और रोज जब रात होती है—सब मोहल्ले अपनी-अपनी जीभ से अपने अपने घाव चाटते है

हा सच—ये सब एक दूसरे को काट खाने को पडते है, कभी कभी पूछ भी हिलात है खासकर चुनावा क दिना म जब इनके आगे कोई बासी बची हुइ रोटिया के टुकडे फेंक देता है या खयाली पुलाव के कुछ निवाले

जन्मी गुजरावाला मे थी पर उम्र दा शहरो म गुजारी है—आधी लाहौर म आधी दिल्ली म—आधी गुलाम हिन्दुस्तान म आधी आजाद हिन्दुस्तान म।

पर जिस पक्ष स किसी शहर की पार्टेट का सवाल होता है, यह ऊपरी पोट्रेट जसी लाहौर की देखी थी वसी ही दिल्ली की देखी।

—२१ अगस्त, १९७०

बहुत सिगरेट पीती हू—और कभी किसी दिन मुझे ह्विस्की भी अच्छी लगती है। इसे रोज आदत के तौर पर नही पी सकती, पर किसी दिन अचानक इसकी तलब होती है। जानती हू—ये दोना चीजें जब किसी औरत के साथ जुडकर एक जिक्र बनती हैं तो यह जिक्र उस औरत की शख्सियत को गभीरता शब्द से नही जोडता।

इसके लिए एक अजीब तुलना मेरे सामने आयी है। आखिर सिख घरान म जन्मी हू तुलना के लिए उसी मजहब के किसी चिह्न का सामने आ जाना स्वाभाविक भी है। लगता है—जसे मीठा हलवा बनाकर जब गुरु ग्रन्थ के सामने रखा जाता है और हलव की परात म तलवार फेर दी जाती है तो वह साधारण हलव के स्थान पर उसी क्षण कडाह प्रसाद' बन जाता है, उसी प्रकार मेरे हाथ मे लिया हुआ सिगरेट या ह्विस्की का गिलास जब मेरे माथ के 'सोच' को छू लेता है वह कुछ और हो जाता है पावनता सरीखा अनुभूति की तीव्रता और विशालता उसमे से तलवार की तरह गुजर जाती है तो वह साधारण हलवे की तरह उसी क्षण प्रसाद बन जाता है।

—३१ अगस्त १९७२

आज का समाचारपत्र कह रहा है—रामधारीसिह दिनकर नही रहे।

एक ही सप्ताह हुआ है—आज २८ तारीख है और उस दिन १९ तारीख थी —स्टार वुक्स के समारोह के अवसर पर दिनकर मिले थे। मैं हॉल से बाहर आ रही थी और वह बाहर आकर अपनी कार में बैठ चुके थे। दूर से देखकर हाथ के इशारे से उन्होंने पास बुलाया। देविन्दर भी मेरे साथ था। मैं उनकी कार के शीशे के पास पहुंची तो शीशे को नीचे उतारकर अपनी बांह बाहर निकालकर मेरा हाथ पकड़कर कहने लगे— देखो ! मर न जाना ! तुम मर गयी तो इस देश की हरियाली मर जाएगी।' जानती थी वह बीमार रहते हैं मन भर आया। कहा—'पर आप जीवित रहें यह बात कहने के लिए। आपके सिवाय यह बात और कोई नहीं कह सकता '

मेरा मन हिल ही गया था पास खड़े हुए देविन्दर का मन हिल गया। कहने लगा— दीदी ! हमारी भाषा में ऐसे लोग पैदा क्यों नहीं होते ?

आज दिनकर चले गए हैं—केवल हिन्दी भाषा के पास से ही नहीं, हिन्दुस्तान से भी खो गए हैं आखें भर भर आ रही हैं

—२५ अप्रैल, १९७४

आज 'सारिका' के कमलेश्वर का पत्र आया है कि कई वर्ष पहले सारिका में छपे मेरा हमदम मेरा दोस्त लेखों का वह पुस्तक रूप में एक संग्रह करना चाहता है और उसने मेरे लेख को संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति मांगी है। यह लेख मैंने कई वर्ष हुए नवतेजसिंह के संबंध में लिखा था पर तब का सच आज का सच नहीं है वह समय के साथ एक भुलावा सिद्ध हुआ है। मैंने कमलेश्वर को अभी पत्र लिख दिया है कि वह मेरा लेख इस संग्रह में सम्मिलित न करें, क्योंकि अब न कोई मेरा हमदम है न दोस्त। इस पुस्तक में यह लेख सम्मिलित हो जाता तो एक सौ रुपया मिलता पर यह झूठ की कमाई होती। नहीं सौ रुपया नहीं चाहिए, झूठ की कमाई नहीं चाहिए।

—९ मई १९७४

एक रात

कई बिलकुल बेगानी बातें न जाने कैसे बिलकुल अपनी हो जाती है और अपने रक्त मांस में भीग जाती है। एक बार रात को महाभारत पढ़ते पढ़ते सो गयी—सपने में देखा, एक कबूतर उड़ता हुआ आया और उसने मेरी गोद में शरण ली। देखा—उसके पीछे उड़ता हुआ एक बाज भी था और वह मुझसे

उस कबूतर को माग रहा था। कबूतर अपनी जान की रक्षा की माग करते हुए कसकर मेरे साथ चिपट गया था, कि बाज ने कहा—अगर कबूतर नहा दती तो इसके बदले म अपने शरीर का मास तोलकर दे दें। मैंन अपन शरीर से मास काटकर उसके बराबर वजन का तोलना चाहा पर कबूतर और भारी, इतना भारी कि मैं सारी-की सारी उसके बदले म मरन को तयार हो गयी एक हसी काना म गूज गयी और इसके साथ ही सारे शरीर म महसस हुआ कि यह कबूतर मेरी लेखनी का प्रतीक है, और एक विरोध इस जान से मार देने क लिए इसके पीछे पडा हुआ है।

मैंने कबूतर को और भी जोर से अपने शरीर से चिपटा लिया कि इतन म मरी आखें खुल गयी सामने महाभारत का वह पन्ना खुला हुआ था जिसके बारहवें अध्याय म अग्नि देवता कबूतर का वेश बदलकर राजा उशीनर स शरण मागने आता है और उशीनर उसकी जगह अपने शरीर का मास देने के लिए तैयार हो जाता है। पर उसके पीछे पडे हुए बाज को वह कबूतर नही देता

इस घटना से मैंने अपने मन की शिद्दत को केवल पहचाना ही नही—एक रात जस आखा से देख लिया।

एक दिन

वह भी एक दिन था—जब मैंन अपन सबध म विस्तार से लिखने की जगह सोचा था—कभी जब मैं अपनी आत्मकथा लिखूगी केवल दस पक्तिया लिखूगी और वे पक्तिया मैंने कागज पर लिखकर रख ली थी। व पक्तिया आज भी मेरे सामन हैं और आज भी वे उतनी ही सच हैं जितनी उस दिन लिखत समय थी। वे पक्तिया हैं

मेरी सारी रचना—क्या कविता और क्या कहानी और उपन्यास—मैं जानती हू एक गर-कानूनी बच्चे की तरह है।

मेरी दुनिया की हकीकत ने मेरे मन के सपने स इश्क किया और उनके वर्जित मल से यह सब रचना पदा हुई।

जानती हू—एक गैर-कानूनी बच्चे की किस्मत इसकी किस्मत है और इस सारी उम्र अपने साहित्यिक समाज के माथे के बल भुगतने हैं।

मन का सपना क्या था कौन था इसकी व्याख्या म जाने की आवश्यकता नही है। वह कमबख्त बहुत हसीन होगा निजी जिन्दगी से लेकर कुल आलम की बेहतरी तक की बातें करता होगा तब भी हकीकत अपनी औकात को भूलकर

उससे इश्क कर बैठी। और जो रचना पैदा हुई—हमेशा कुछ कागजों में लावारिस भटकती रही

और आज भी मेरा यकीन है—ये दस पंक्तियां मेरी पूरी और लम्बी आत्मकथा हैं

एक कविता

चक नं० छत्तीस उपन्यास मैंने १९६३ में लिखा था, १९६४ में छपा तो अफवाह फैल गयी कि पंजाब सरकार इसे 'बैन' कर रही है पर हुआ कुछ नहीं। यह १९६५ में हिंदी में भी छपा, और १९६६ में उर्दू में भी।

इस उपन्यास को फिल्म के लिए सोचा तो रेवतीसरन शर्मा ने कहा—नहीं यह उपन्यास समय से एक शताब्दी पहले लिखा गया है हिंदुस्तान अभी इसे समझ नहीं सकता'—और बासु भट्टाचार्य के शब्द थे—'इस उपन्यास पर जब फिल्म बनेगी, वह हिंदुस्तान में पहली ऐडल्ट फिल्म होगी।' और इस उपन्यास का जब मेरी दोस्त कृष्णा ने १९७४ में अंग्रेजी में अनुवाद किया तो उसकी रीडिंग के लिए मैंने जब इसे दोबारा पढ़ा तो इसकी पात्र 'अलका' मुझ पर इस तरह छा गयी जिस तरह शायद उपन्यास लिखते समय भी नहीं छायी थी

इसका पात्र कुमार' जब 'अलका' को बताता है कि वह शरीर की भूख मिटाने के लिए कुछ दिन एक ऐसी औरत के पास जाता रहा था जो रोज के बीस रुपये लेती थी और जब 'अलका कहती है— सोच रही हूं कि वह औरत भी मैं होती जिसके पास आप रोज बीस रुपये देकर जाते थे ' तो बहुत पुराना इस उपन्यास का स्रोत याद आया—एक बार इमरोज ने कहा था कि जिस्म की भूख के हाथों पीड़ित होकर मैंने एक बार बाजार की किसी औरत के पास जाना चाहा था, तो सहज मन मेरे मुंह से निकला था—'अगर तुम ऐसी औरत के पास जाते, तो मेरा जी करता है वह औरत भी मैं ही होती '

पहचान आयी—ये शब्द जो अलका' ने कहे यह केवल अमृता ही कह सकती थी और कोई औरत नहीं अस्वाभाविक हालत की स्वाभाविकता शायद और किसी औरत के लिए संभव नहीं हो सकती अलका उफ अमृता

भले ही रचनों के हर पात्र के साथ लेखक का गहरा साझा होता है पर एक दूरी हर साझे का हिस्सा होती है। अलका को पढ़ते हुए लगा—वह दूरी कहीं नहीं है उस रात (७ सितम्बर, १९६४ की रात) मैंने अलका को संबोधित करके एक कविता लिखी—'पहचान

कई हजार चाबिया मेरे पास थी
और एक एक चाबी एक एक दरवाजे को खोल देती थी
दरवाजे के अन्दर—किसी की बैठक भी होती थी
और मोटे पर्दे म लिपटा किसी का सोने का कमरा भी
और घरवाला के दु ख
जो उनके ही होते थे पर किसी समय मेर भी होत थे
मेरी छाती की पीडा की तरह
पीडा जो दिन के समय जागू तो जाग पडती थी
और रात के समय सपना म उतर जाती थी
पर फिर भी
परो के आगे रक्षा की रेखा जसी एक लक्ष्मण रखा होती थी
और जिसकी बदौलत मैं जब चाहती थी
घरवालो के दु ख घरवाला को देकर
उस रेखा स लौट जाती थी
और आत समय लोगो के आसू लोगा को सौप आती थी
देख ! जितनी कहानिया और उनके पात्र हैं
उतनी ही चाबिया मेरे पास थी
और जिनके पीछे
हजारो ही घर जो मेर नही पर मेरे भी थ
शायद वे कही अब भी हैं
पर आज एक चाबी का कौतुक
मैंन तेरे घर को खोला तो देखा
वह लक्ष्मण रेखा मेरे परो के आगे नहीं, पीछे है
और सामन, तेर सोने के कमर म तू नहीं—मैं हू
यह मेरी एकमात्र ऐसी कविता है जो अपने ही रचे पात्र को सबोधित करके मैंन लिखी है।

एक त्योरी

आज भी सामने देख सकती हू—एक त्योरी है, मर पिता के माथे पर पडी हुई नही, माथे पर ठहरकर चालीस वर्षों से मुझे देख रही है मेरी निगहबान, मेरी नजर सानी कर रही है।

१९३६ के आरम्भ की बात है जब मेरी पहली किताब छपी थी। महाराजा कपूरथला ने मेरी किताब को एक बुजुर्गाना प्यार देते हुए दो सौ रुपये मेरे नाम भेजे थे। और फिर थोड़े दिनों बाद महारानी नाभा ने (वह कभी मेरे पिताजी की शिष्या रही थी) मुझे एक साड़ी का पासल उस किताब की प्रशंसा व्यक्त करते हुए भेजा था। ये दोनों चीजें डाक द्वारा आयी थीं। और फिर एक दिन, जब डाकिये ने घर का दरवाजा खटखटाया, मेरे बाल-मन ने उसी तरह के एक और मनीआर्डर या पासल की आस कर ली, मुंह से निकला—'आज फिर कोई इनाम आया है।'—और मुझे आज तक, अपने शरीर के कम्पन सहित, उसी तरह वह त्यौरी याद है जो मेरी ओर देखकर मेरे पिता के माथे पर पड़ गयी थी।

उस दिन इतना नहीं समझा था कि मेरे पिता मुझ में जैसा व्यक्तित्व देखना चाहते थे मैं अपने उस एक वाक्य से उससे बहुत छोटी हो गयी थी, बस इतना समझा था कि ऐसी आशा या ऐसी कामना गलत बात है। यह क्या शै है और यह किस जगह से एक लेखक को छोटा कर जाती है यह बहुत समय बाद जाना।

और जब जाना—तब मेरे पिता के माथे के स्थान पर मेरा अपना माथा मेरा निगहबान बन गया। उसने मेरे खयालों की ऐसी रक्षा की कि फिर कभी मुझे अचेतन तौर पर भी ऐसा खयाल नहीं आया।

आज सोचती हूं—दुनिया से कुछ भी लेने के खयाल से वह एक त्यौरी मुझे कैसे सदा के लिए मुक्त कर गयी, स्वतन्त्र कर गयी तो उस त्यौरी पर प्यार आ जाता है। हो सकता है—उस दिन वह मेरे पिता के माथे पर न पड़ती, तो मैं कभी उस जैसे विचार से जिन्दगी में अपना अपमान कर लेती। पर खुश हूं मुझे उस पिता का माथा नसीब हुआ था जिस पर वह त्यौरी पड़ सकती थी।

एक और रात की बात

यह भी एक रात की बात है—आज से कोई चालीस बरस पहले की एक रात—मेरे विवाह की रात जब मैं मकान की छत पर जाकर अंधेरे में बहुत रोयी थी। मन में केवल एक ही बात आती थी—अगर मैं किसी तरह मर सकूं। पिताजी को मेरे मन की दशा ज्ञात थी इसलिए ढूंढते हुए छत पर आए। मैंने एक ही मिन्नत की—मैं विवाह नहीं करूंगी।

बरात आ चुकी थी रात का खाना हो चुका था कि पिताजी का एक संदेशा मिला कि अगर कोई रिश्तेदार पूछे तो कह देना कि आपने इतने हजार रुपया

नकद भी दहेज म दिया है।

इस विवाह से भर पिताजी को गहरा सन्ताप था, मुझे भी। पर इस सदेश को पिताजी न एक इशारा समझा। उनके पास इतना नकद रुपया हाथ म नही था इसलिए घबरा गय। मुझसे कहा। बस उसी के कारण मरे मन म विचार उठता था—अगर मैं आज रात मर सकू।

कई घटा की हमारी इस घबराहट को उस रात मेहमान के तौर पर आयी हुई मरी मृत मा की एक सहेली न कुछ भाप लिया और अकेल म होकर अपने हाथ की सारी सोन की चूडिया उतारकर उसन भर पिताजी के सामन रख दी। पिताजी की आखें भर आयी। पर यह सब कुछ देखना मुझे मरने स भी कठिन लगा

फिर मालूम हुआ—यह सन्देशा किसी प्रकार का इशारा नही था उन्होंने नकद रुपया नही चाहा था सिफ कुछ रिश्तेदारा की तसल्ली करने के लिए यह बात फैलायी थी। मा की सहेली न व चूडिया फिर हाथा म पहन ली पर ऐसा प्रतीत होता है—चूडिया उतारने का वह क्षण दुनिया की अच्छाई का प्रतीक बनकर सदा के लिए कही ठहर गया है विश्वास टूटते हुए दखती हू परन्तु निराशा मन के अन्त तक नही पहुचती इधर ही राह म कही रुक जाती है। और उसके आगे मन के अन्तिम छोर के निकट दुनिया की अच्छाई पर विश्वास बचा रह जाता है

अन्तिम पक्तिया

बहुत समय हुआ ग्रीक पैशन' म एक गडरिय लडके की वार्ता पढी थी जो क्राइस्ट का नाटक खलने के लिए क्राइस्ट चुना जाता है। पर इस पात्र की भूमिका अदा करन के लिए वह साधना करते करत पात्र के अस्तित्व म विलीन हो जाता है इतना कि सार गाव का विरोध सहन कर भी उसकी दृष्टि म जो न्याय है जब वह उसके लिए लडता है तो गाववाल उस सचमुच पत्थर मार मारकर मार देते हैं। एक एसा व्यक्ति जिसने उसका अ तर-बाह्य पहचान लिया था उसे एक पहाडी पर दफन करत समय कहता है— आज उसका नाम बफ के ऊपर लिखा गया है। बफ पिघलेगी तो उसका नाम नदी नाला के पानियो पर लिखा हुआ होगा।

इसी बात को अगर अपने लिए कहू तो कहना चाहूगी— मर पास जो कुछ था अगर आज बफ स दब गया है तो यह बफ जब पिघलेगी इसके नदी नाले

वे होंगे जो एक ईमान से, हाथ में नया कलम थामेंगे, और उन कलमों की शिद्दत में मेरा वह कुछ भी सम्मिलित होगा जो आज चुप की वर्फ के नीचे दबा हुआ है।

यथार्थ से यथार्थ तक

आत्मकथा को प्राय चमकती-दमकती एकांगी सच्चाई समझा जाता है—आत्म-आराधना का कलात्मक माध्यम। पर बुनियादी सच्चाई को लेखक की अपनी आवश्यकता मानकर मैं कहना चाहूंगी—'यह यथार्थ से यथार्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया है।'

एक कुछ वह होता है जो बिना कोई चेष्टा किये सामने दिखाई पड़ जाता है और एक केवल गौर से देखने पर दिखाई देता है, और एक विचारों की मिट्टी को छान छानकर मिलता है। यथार्थ वह भी होता है वह भी और वह भी।

हर कला निर्माण में से प्रति निर्माण का नाम है। यह यथार्थ का प्रति-निर्माण भी यथार्थ है—सच्चाई की कोख में पड़कर फिर उस कोख में से निकली हुई सच्चाई। यथार्थ का प्रति निर्माण यथार्थ से यथार्थ तक पहुंचने की प्रक्रिया है।

उपन्यास-कहानी का पाठक—पात्रों के चेहरों की कल्पना करता है उनके दिलों की हलचल से उनके नख-शिख चित्रवता है पर किसी की आत्मकथा का पाठक अपना सारा ध्यान एक ही जाने हुए चेहरे पर केन्द्रित करता है। इसमें लेखक और पाठक परस्पर सम्मुख होते हैं। यह लेखक का अपने घर में पाठक को निजी बुलावा होता है—संकोच की ड्योढ़ी के भीतर की ओर। और यह केवल तब संभव होता है जब लेखक का साहस उसके किसी सच की अपेक्षा कम न हो। इसमें कोई झूठ मेहमान का नहीं मेजबान का अपना अपमान होता है।

लेखक दो प्रकार के होते हैं—एक जो लेखक होते हैं और दूसरे जो लेखक दिखना चाहते हैं। जो है दिखने का यत्न उनकी आवश्यकता नहीं होता, वह है। और उनके अपने अस्तित्व की सच्चाई सच्चाई से कुछ भी कम स्वीकार नहीं कर सकती।

केवल उस पार के किनारे का यथार्थ जिस कला की नदी को चीरकर उस पार के किनारे का यथार्थ बनता है वह प्रक्रिया इस आत्मकथा में भी है। यह रचना की अपनी प्रक्रिया है।

यू तो यह शीषक मैंने अपनी उस लेखमाला का रखा हुआ है जो आजकल प्रधान-मत्री इन्दिरा गाधी पर बन रही फिल्म के बारे म लिखती हू। यह फिल्म बासु भट्टाचाय बना रहे हैं। मैं सिफ इस फिल्म की रचनात्मक क्रिया लिखती हू। इन्दिरा-जी की शूटिंग के समय साथ साथ रहती हू। उनस दश की हालत के बार मे जो बातचीत होती है वह तो लिखती ही हू पर साथ ही शाट कसे और क्या सोचकर लिये जात है इन्दिराजी के यक्तित्व के गभीर पहलू आम साधारण बाता म से भी कैसे उभरते हैं या कुछ वे बातें जो फिल्म का हिस्सा नही बनती पर बड महत्त्व की होती हैं उन्ह भी जितनी वे पकड म आ सकें लिखन का यतन करती हू। उदाहरण के तौर पर—उनके कमरे की एक दीवार पर नहरूजी और मोती-लालजी के कुछ चित्र हैं। बासु दा न उनके शाट लेते समय इन्दिराजी से कहा— इन तसवीरा को देखते हुए जस अचानक उन पर कुछ धूल पडी हुई दिखाई द और आप अपनी धोती के पल्ले स उसे पाछ रही हा। स्पष्ट है कि बासु दा इस शाट म इन्दराजी को समय की धल पोछत हुए दिखाना चाहत थे। पर इन्दरा जी ने निश्चित स्वर मे 'नहीं' कह दिया। कहन लगी डस्टर लेकर पाछ सकती हू पर अपनी धोती के पल्ल से नही तसवीर चाह किसी भी खास व्यक्ति की हो यह सवाल नही है जो अच्छे लगते हैं व हर समय खयाला मे रहते हैं तसवीरा म नहीं। धोती के पल्ले से पोछू तो मुझे धोती बदलनी पडेगी मुझे धूल स कार्य प्यार या श्रद्धा नही है '

ठीक है जो उन्के विचार म नही है वह किसी शॉट म नही आना चाहिए। उ होन डस्टर से तसवीरें पोछी और बासु दा ने शाट ल लिया। पर यह उनका दष्टिकोण फिल्म म नही आएगा, और बहुत कुछ जो फिल्म म नही आ सकता उसे समझने और जानन मे मैं इस फिल्म का माहौल और इसकी तयारी के समय का हाल लिखती हू।

इसकी एक शूटिंग के समय मैंने उनस पछा था इन्दराजी ! आप औरत है, क्या कभी इस बात को लेकर लोगो ने आपक रास्ते म रुकावट पदा की है ? तो उनका जवाब था, 'इसके कुछ एडवा टेजिज भी होतेहैं कुछ डिसएडवा टेजिज भी। पर मैंने कभी इस बात पर गौर नही किया। औरत-मद के फक म न पडकर मैंने

अपने आपको हमेशा इंसान सोचा है। शुरू से जानती थी—मैं हर चीज के काबिल हूं। कोई समस्या हो मर्दों से ज्यादा अच्छी तरह सुलझा सकती हूं—सिवाय इसके कि जिम्मानी तौर पर बहुत बजन नहीं उठा सकती और हर बात में हर तरह काबिल हूं। इसलिए मैंने अपने औरत होने का कभी किसी कमी के पहलू से नहीं सोचा। जिन्होंने शुरू में मुझे सिर्फ औरत समझा था मेरी ताकत को नहीं पहचाना था वह उनका समझना था मेरा नहीं लोग कुछ बातें करते होंगे, बहुत सी तो मुझ तक पहुंचती ही नहीं। जो पहुंचती हैं उनका मैं कोई महत्त्व नहीं समझती।'

दृष्टिकोण मेरा भी यही था। पर इन्दिराजी के लिए जो मन की सहज अवस्था है मेरे जैसे साधारण इंसान के लिए एक उसमजिल की तरह थी जिसका रास्ता बड़ा दुर्गम हो। ठीक है अब उतना कठिन नहीं पर मेरी यह जंग अभी भी जारी है इस शीर्षक को मैंने इन्दिराजी की राजनीतिक जद्दोजहद के सिलसिले में इस्तेमाल किया था पर यहां अपने निजी जीवन के संबंध में इस्तेमाल कर रही हूं चाहे उसके मुकाबले में इसका महत्त्व बहुत कम है।

बहुत पुरानी बात है जब पटेलनगर के मकान में अभी बिजली नहीं लगी थी, और मैं दिल्ली रेडियो में नौकरी करती थी। पड़ोसी के घर में एक रेडियो था जो बैटरी से चलता था और मेरे दोनों छोटे छोटे बच्चे वहां चले जाते थे शाम को मेरी आवाज सुनने के लिए। पर एक दिन मैं रात को जब घर आयी तो मेरा बेटा मुझसे कहने लगा— मामा! एक बात मानेंगी? आप भोलू के रेडियो पर मत बोला करें।'

मालूम हुआ कि मेरे बंटे से भोलू की लड़ाई हो गयी थी—और जिसके घर वह नहीं जा सकता था वहां मेरी आवाज भी नहीं जानी चाहिए थी।

तब अपने चार बरस के बेटे की इस बात पर हंस दी थी पर आज यह बात याद आयी है तो हंस नहीं सकती। सोचती हूं—काश, मेरी यह किताब भी उनके हाथों में न जाए जिन्होंने इसके एक एक अक्षर को मिट्टी में लथेड़ना है।

कुछ दोस्तों की सलाह है – मैं इस किताब को दूसरी भाषाओं में छपवा लूं पर पंजाबी में नहीं। पर जानती हूं मेरी भाषा के गंभीर पाठक यह नहीं चाहेंगे, इसलिए मैं, किसी भी मूल्य पर अपनी भाषा को और उसके पाठकों को छोटा नहीं करना चाहूंगी।

सो मूल्य चुकाने के लिए तैयार हूं।

क्या यह क्यामत का दिन है ?

ज़िन्दगी के कई वे पल जो वक्त की क
स जन्म और वक्त की कब्र में गिर ग
आज मरे सामने खड़े हैं

यह सब कर्मों के फल खुद ? और ?
पल जीत जागते कब्रों से कैसे निक
यह जरूर क्यामत का दिन है